लड़खड़ाती दुनिया

मूल लेखक

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

भूमिका-लेखक

आचार्य नरेन्द्रदेव

हिन्दी सम्पादक

सुधीन्द्र एम्. ए., साहित्य-रत्न

सर्वोदय साहित्य-माला : १०२वाँ ग्रन्थ

सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली

शाखाएँ

दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर : वर्धा : कलकत्ता : इलाहाबाद

२६ जनवरी १९४१ : २०००
६ अप्रैल १९४२ : ३०००

मूल्य
चौदह आना

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नयी दिल्ली

मुद्रक
देवीप्रसाद शर्मा
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नयी दिल्ली

दो शब्द

इस पुस्तक में जो मजमून जमा किये गये हैं उनको मैंने पिछले तीन-चार बरस के अन्दर लिखा था। इस तेजी से बदलती हुई दुनिया में वह काफी पुराने हो गये। लेकिन फिर भी आज के सवालों के समझने में शायद मदद करें। यह किताब पारसाल निकली थी जब मैं जेल में था। अक्सर लोगों ने उसपर इनायत की नजर से देखा और जितनी कापियाँ छपी थी वह खतम हो गयीं। इसलिए फिर से छपाने की आवश्यकता हुई।

इसके लेख चाहे पुराने हों या नये, किताब का नाम 'लड़खड़ाती दुनिया' बहुत मौजूं और उचित है। अजीब दुनिया में हम आजकल रहते हैं जिसकी सब पुरानी बुनियाद ढीली पड़ गयी और फिर से कहीं जमती नहीं। कभी-न-कभी फिर जमेगी लेकिन वह कोई दूसरी दुनिया होगी क्योंकि आजकल का ज़माना अपने आखिरी दिन देख रहा है। हमारे सामने बड़े साम्राज्य गिरे और गिर रहे हैं। रोज तस्वीर बदलती है। लेकिन सवाल तो यह है कि हम भी इस तमाशे में हिस्सा ले रहे हैं या खाली दर्शक हैं? दर्शकों की जगहें तो अब कहीं रही नहीं और जो बचना भी चाहते हैं वह भी कहीं जा नहीं सकते। बचें कहाँ और किसलिए? काम हमारा तो इस समय, इस जगह पर है।

आश्चर्य इस बात पर होता है कि किस तरह से इंग्लैण्ड और फ्रांस ने अपनी जड़ खोदी। चीन में, स्पेन में और म्यूनिक के समझौते से उन्होंने अपने को बदनाम किया और कमजोर भी हुए। उस समय भी जो हम लोग कांग्रेस की ओर से इन विदेशी प्रश्नों पर कहते थे वह ठीक निकला और अब इंग्लैण्डवाले पछताते हैं कि क्यों गलती की। पुरानी गलतियाँ तो कभी-कभी समझ में आजाती हैं लेकिन फिर भी नयी

ग़लतियाँ होती जाती हैं। उनसे छुटकारा नहीं मिल सकता जबतक दिमाग़ न बदले।

हिन्दुस्तान इन पुरानी और नयी ग़लतियों का नमूना है। अंग्रेजी साम्राज्य तो यहाँ ख़तम हो रहा है—उसको तो ख़तम होना ही है—लेकिन ख़तम होते-होते हमको कितनी बीमारियाँ देकर जा रहा है। काफ़ी मुसीबतें हमको घेर रही हैं, काफ़ी मुश्किल सवाल हमको चिमटे हैं। लेकिन यह तो इस लड़खड़ाती दुनिया में होना ही था। तब हम शिकायत क्यों करें? क्रान्ति और इन्क़िलाब के नारे हमने उठाये—अब वह क्रांति हमारे पास आयी। कुछ रूप अच्छा है, कुछ बुरा, कुछ डरावना, जैसा कि क्रान्ति का हमेशा होता है। हम उसका स्वागत कैसे करें? हिम्मत और वीरता और एकता से और अपने छोटे झगड़ों और बहसों को भूलकर हम अपना कद ऊँचा करके बड़े आदमी बनें और फिर बड़े सवालों को लेकर उनको हल करें।

इलाहाबाद,
८ मार्च, १९४२

जवाहरलाल नेहरू

पहले संस्करण की भूमिका

आज हम एक मोड़ पर खड़े हैं। जिस रास्ते पर अबतक दुनिया चलती थी उसे छोड़कर अब उसे दूसरी राह अख्तियार करनी पड़ेगी। पुराने आचार-विचार पुरानी परम्पराएँ और संघटन टूटेंगे और नये उनकी जगह लेंगे। यह नयी राह राहत की होगी या आज से भी ज्यादा कठिन और मुसीबत की होगी यह कहना मुश्किल है, किन्तु इसमें कुछ शक नहीं कि एक नये युग का प्रवर्तन होने जा रहा है। १९१४–१८ के रक्त-स्नान के बाद भी दुनिया न सँभली। आज वह पुराना इतिहास फिर से दुहराया जा रहा है। मानव-सभ्यता आज फिर खतरे में है। चारों ओर पाशविकता का राज्य है, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में किसी बात का लिहाज और संकोच नहीं रह गया है और जीवन के ऊँचे आदर्श लुप्त-प्राय हो रहे हैं। अगर दुनिया बदलती है, तो हमारा देश भी इन बड़ी तब्दीलियों से अछूता न रह जायेगा। अगर दुनिया पर तबाही आयी, तो हम भी तबाही से बच न सकेंगे और यदि दुनिया में नया उजाला हुआ और एक ऐसा सामाजिक और आर्थिक सिलसिला कायम हुआ, जिससे मानवता की प्यास बुझनेवाली है, जिसके ज़रिये जनता की आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक ज़रूरतें पूरी होनेवाली हैं, तो हम भी इस तरक्की में साझेदार होंगे। अत: दुनिया में आज क्या हो रहा है, इसके प्रति हम उदासीन नहीं रह सकते। अन्तर्राष्ट्रीय जीवन की धार से अलग रहकर न हम जिन्दा ही रह सकते हैं और न तरक्की ही कर सकते हैं, इसलिए हमको इस बात के विचारने की ज़रूरत है कि दुनिया पर यह संकट क्यों आया और इसका अन्त कैसे हो सकता है? समाजशास्त्र ही इस सवाल का सन्तोषप्रद जवाब दे सकता है। युद्ध इसीलिए होते हैं कि मुट्ठीभर धन-कुबेर समाज की सम्पत्ति पैदा करने-वाले समुदाय का आर्थिक शोषण करना चाहते हैं। उनको अपने मुनाफ़े से मतलब। वे अपने वर्ग के स्वार्थ को देश के स्वार्थ पर भी तरजीह देने को तैयार हैं, न उनकी कोई मातृभूमि है, न पितृभूमि। मुनाफ़ा

कमाने के लिए वे राष्ट्रों को लड़वा देंगे और लाखों देशवासियों की हत्या का पाप अपने ऊपर लेने से न हिचकिचायेंगे। मुनाफ़ा उनके लिए सर्वोपरि है, वही उनका ईश्वर और धर्म है। यह अमिट सत्य है कि जब तक पूंजीवादी प्रथा क़ायम है तबतक संसार में भीषण युद्ध होते रहेंगे।

आज चारों ओर निराशा छायी हुई है, फ़ैसिज़्म और साम्राज्यवाद का बोलबाला है, तिसपर भी मानवता की अन्तर्वेदना और मार्मिक पीड़ा की कराह सुननेवालों को सुनाई पड़ ही जाती है। प्रगतिशील शक्तियाँ आज दबा दी गयी हैं लेकिन समय आते ही वह उभरेंगी और इतिहास का बदला चुकायेंगी। यदि हम अपने राष्ट्रीय जीवन को पुष्ट करना चाहते हैं, तो हमारी जगह इन्हीं शक्तियों के साथ है। माना, आज ये शक्तियाँ क्षीण और दुर्बल हैं, लेकिन यह युगधर्म के अनुकूल हैं और इन्हींका भविष्य उज्ज्वल है। आज की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का अध्ययन करके हमको निश्चय कर लेना है कि हमारे सच्चे सहयोगी कौन हैं?

'लड़खड़ाती दुनिया' में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है, इस संग्रह से परिस्थिति को समझने और अपना मार्ग स्थिर करने में काफ़ी मदद मिलती है। पं० जवाहरलाल नेहरू अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के एक बड़े विद्वान् हैं। हमारे राजनीतिज्ञों में इस विषय में उनका मुक़ाबिला कोई नहीं कर सकता। उन्होंने इस विषय का केवल अच्छा अध्ययन ही नहीं किया है, बल्कि विभिन्न देशों के प्रगतिशील व्यक्तियों और संस्थाओं के निकट संपर्क में भी वह आये हैं। भारत के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहानुभूति हासिल करने में उनका खासा हाथ है। हिन्दुस्तान के सवालों पर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करना उन्हींसे हमने सीखा है, हमारे अन्य नेता इस ओर सदा उदासीन रहे और अन्तर्राष्ट्रीय बातों की चर्चा करने के लिए जवाहरलालजी का मज़ाक उड़ाते रहे। जवाहरलालजी ने ही सबसे पहले हमको आनेवाले युद्ध के खतरे से आगाह किया था। उस समय बहुत लोग यह समझते थे कि जवाहरलालजी का यह एक खब्त है। अबीसीनिया, स्पेन और

चीन के साथ जब उन्होंने सहानुभूति दिखायी और भारत की सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए खतरों की परवा न कर स्पेन और चीन की यात्रा की, तब भी लोग मजाक करने से बाज न रहे। यह कहा गया कि जिसके साथ जवाहरलालजी सहानुभूति दिखाते हैं वही हार जाता है। यह भी तोहमत लगायी गयी कि वह यथार्थवादी नहीं हैं, महज हवा में उड़ते हैं। जीतती हुई ताकत का साथ तो सब देते हैं। संकट के आदर्श और सिद्धान्त को भुलाकर प्रायः लोग अवसरवादिता की शरण लेते हैं, पर विरले ही ऐसे धीरचित्त होते हैं, जो ऐसे कठिन समय में भी आदर्शों को ठुकराते नहीं और अपने मार्ग से विचलित नहीं होते। संसार उन्हीं की पूजा करता है, वही मानवता के सच्चे आधार हैं, लेकिन अगर हम यथार्थवाद की दृष्टि से भी देखें तो भी हमारी रक्षा इसी में है कि हम उन्हीं ताकतों का साथ दें, जो आज भले ही कमजोर हों, पर भविष्य जिनके साथ है।

हमारा मुल्क एक अरसे से साम्राज्यवाद का शिकार रहा है। हमारे देश के करोड़ों आदमी बेकार और भूखे हैं। यदि हमको आजाद होना है और देश की गरीबी को मिटाना है, तो यह काम उन ताकतों की मदद से नहीं हो सकता जो दुनिया का शोषण करती हैं और सबको गुलाम बनाती फिरती हैं। उदाहरण के लिए हिन्दुस्तान जापान की मदद से आजाद नहीं हो सकता। जापान एक फ़ौजी और फ़ासिस्ट ताकत है। वह पूर्वी एशिया में अपना आधिपत्य जमाना चाहता है। यदि यह उद्देश्य सफल हुआ, तो हिन्दुस्तान भी एक दिन उसका शिकार बनेगा। आज अगर चीन जापान के आक्रमण को न रोके और जापान से युद्ध करले, तो पूर्वीय एशिया के लिए एक बड़ा संकट खड़ा होजावे। क्या हम नहीं देखते कि चीन जापान का मुकाबला कर एक ऐसा मज़-बूत बाँध तैयार किये हुए हैं जो जापानी फ़ैसिज्म को एशिया में बढ़ने से रोकता है? चीन इस तरह भारत तथा पूर्वी एशिया के अन्य देशों के लिए भी लड़ रहा है, इस कारण भी हमारा कर्तव्य है कि चीन से हम अपना नाता जोड़ें। जवाहरलालजी चीन को — के बहुत निकट

ले आये हैं। यूरोप की घटनाओं का प्रभाव हमपर पड़ेगा ही, पर उससे भी कहीं अधिक हमारे पड़ोसी राष्ट्रों की हलचल का प्रभाव हमपर पड़नेवाला है। यदि हम अपने पड़ोसी राष्ट्रों के साथ सद्भाव और मैत्री क़ायम कर सके तो, हम अपने चारों ओर ऐसी अभेद्य दीवारें खड़ी कर लेंगे जो हिमालय की तरह सन्तरी का काम देंगी। जहाँ यूरोप के राष्ट्र अपने अस्त्र-शस्त्र के भरोसे अपनी रक्षा में तत्पर हैं, वहाँ निःशस्त्र भारत अपनी सहृदयता और आदर्शवादिता के भरोसे अपनी और अपने पड़ोसियों की मिल-जुलकर रक्षा करेगा। आनेवाले दिन हम सबके लिए बड़े संकट के हैं. केवल परस्पर सहयोग और सद्भाव द्वारा हम विस्तार पा सकेंगे। चीन की मैत्री हमारे बड़े काम की चीज़ होगी। क्या अच्छा होता यदि जवाहरलालजी स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्रों में भी एक चक्कर लगाकर इस शुभ काम को पूरा कर देते, उनके काम का महत्त्व आने-वाले युग में ही ठीक-ठीक आँका जा सकेगा।

स्पेन की यात्रा करके जनक्रान्ति का जो अनुभव उन्होंने प्राप्त किया है, वह वक़्त आने पर हमारे काम आयेगा। बार्सिलोना और केटोलोनिया के निहत्थे और रणशिक्षा से वंचित मजदूरों ने अपने प्राणों को होमकर दुश्मन की मशीनगनों को बेकार करके जिस असाधारण शौर्य का परिचय दिया था, वह पद-दलित जनता के लिए एक गर्व की वस्तु है। क्या यह उन आलोचकों को मुँहतोड़ जवाब नहीं है, जो बराबर हमको याद दिलाया करते हैं कि अपढ़ जनता से कुछ हो नहीं सकता ?

जवाहरलालजी के इन लेखों से पाठकों को वस्तुस्थिति का प्रामाणिक ज्ञान ही न होगा, बल्कि वे भविष्य का मार्ग भी स्थिर कर सकेंगे। उनकी अधिकारयुक्त वाणी रहस्य का उद्घाटन करके पथ-प्रदर्शक का काम करती है।

फ़ैज़ाबाद,
२९-१२-४०

नरेन्द्रदेव

सूची

चीन

स्पेन

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

दोनों में फ़र्क ढूंढने की कोशिश किया करते हैं। वे साम्राज्यवादी विचार को बहुत अच्छा तो नहीं समझते; लेकिन समझते हैं कि शायद हम एक अर्से तक उसे निभा सकें, हालाँकि फ़ासिज़्म से हमारा काम चलना मुमकिन नहीं है। मैं चाहता हूँ कि आप इस परिषद् में इसपर विचार करेंगे और इस बात का पता लगाने की कोशिश करेंगे कि आखिर हम किस हदतक इन दोनों में फ़र्क समझें ?

हो सकता है कि चूँकि मैं ऐसे देश से आया हूँ जो साम्राज्यवाद के अधीन है, इसलिए साम्राज्य के इस सवाल को बहुत ज्यादा महत्त्व दे रहा हूँ। लेकिन इस बात को जाने दीजिए तो भी मुझे ऐसा लगता है कि आप फ़ासिज़्म और 'साम्राज्यवाद' नाम की दोनों धारणाओं में फ़र्क नहीं पा सकते और फ़ासिज़्म असल में साम्राज्यवाद का ही तीव्र रूप है। इसलिए अगर आप फ़ासिज़्म से लड़ना चाहते हैं तो आपका साम्राज्य-वाद से लड़ना लाजमी है।

उस वक़्त जबकि फ़ासिस्ट प्रतिक्रियावादी फौजें लड़ने के लिए खड़ी होकर दुनिया को आतंकित करती हों, और दूसरी साम्राज्यवादी सरकारें अक्सर उनको बढ़ावा और मदद देती हों, तब हमें बड़ी विकट और जटिल परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। आज, जबकि दुनिया की प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ इकट्ठी होकर संगठित हो रही हैं, उनका सामना करने और उन्हें रोकने के लिए हमें भी अपने तुच्छ भेद-भावों को भूलकर संगठित हो जाना होगा।

हम देखते हैं कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों में और दूसरे देशों में फ़ासिज़्म फैल रहा है और उसके पक्ष में सब तरह का प्रोपेगेण्डा भी चल रहा है। शायद आप सब जानते होंगे कि आज दक्षिणी अमरीका में फ़ासिस्ट राष्ट्रों की ओर से बड़े जोरों का प्रचार हो रहा है। हम यह भी देख

रहे हैं कि साम्राज्यवादी देश धीरे-धीरे करके फ़ासिज्म की ओर बढ़ते जा रहे हैं, गो कभी-कभी वे अपने यहाँ प्रजातन्त्र की बातें कर लिया करते हैं। वे तो यह करेंगे ही क्योंकि साम्राज्यवाद ही उनकी नींव और पार्श्वभूमि है इस कारण आखिरकार वे फासिज्म को रोक नहीं सकते। हाँ, वे उस पार्श्वभूमि को ही छोड़ दें तो बात दूसरी है।

प्रतिक्रियावादी शक्तियों का आज एक प्रकार का संगठन हो रहा है। हम उसका मुकाबला कैसे करें? प्रतिक्रान्ति के विरुद्ध प्रगति की शक्तियाँ जुटाकर। और अगर उन्हीं लोगों की, जो कि प्रगतिशील शक्तियों के प्रतिनिधि हैं, बिखरने की और छोटी-छोटी बातों पर बहुत ज्यादा बहस करके बड़े प्रश्नों को खतरे में डालने की आदत हो जाये तो वे फासिस्ट और साम्राज्यवादी आतंक को रोकने में कभी सफल नहीं हो सकेंगे। किसी भी वक्त यह आपके सोचने-विचारने की बात होगी कि हमें संगठित रहना है। लेकिन हमारे सामने जो तरह-तरह की कठिनाइयाँ आ गयी हैं, उनके कारण तो यह बहुत ही जरूरी बात हो गयी है।

अब तो एक संयुक्त मोर्चा ही—और राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चा नहीं बल्कि विश्वव्यापी संयुक्त मोर्चा ही—हमारे मक़सद को पूरा कर सकता है। और जिन संकटों में से हम निकल चुके हैं, आज हमें सबसे अधिक आशा दिलानेवाले लक्षण वे ही हैं जो संसार भर की प्रगति और शान्ति की शक्तियों के संगठन की ओर इशारा करते हैं।

आपको याद होगा कि चीन के अन्दरूनी संघर्ष ने ही उस राष्ट्र को कमजोर बना दिया था, लेकिन पिछले साल जब जापान का हमला हुआ तो हमने देखा कि जो लोग आपस में बुरी तरह लड़ रहे थे और एक दूसरे को मिटा रहे थे, जिन्होंने एक-दूसरे के खिलाफ़ बहुत ज्यादा कटुता पैदा कर ली थी, वे ही इतने महान् हो गये कि उन्होंने संकट

को देखा, और उससे लड़ने के लिए संगठित हुए । आज हम सालभर से देखते आ रहे हैं कि चीन के संगठित लोग हमले के खिलाफ़ लड़ रहे हैं । इसी तरह, आप देखेंगे कि कि हरेक देश में एकता लाने के थोड़े या बहुत सफल प्रयत्न हो रहे हैं और संसार भर के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के ये संगठित दल अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाना चाहते हैं।

यूरोप और पश्चिम में, जहाँ कि प्रगतिशील दलों का इतिहास ज़रा लम्बा है और भूमिका थोड़ी भिन्न है, आपको फ़ायदे भी हैं और नुक़सान भी हैं । मगर एशिया में, जहाँ ऐसे दल अभी बने ही हैं, यह प्रश्न अक्सर राष्ट्रीय प्रश्न से छिपा रहता है और किसी के लिए अन्तर्राष्ट्रीयता की भाषा में इस प्रश्न को सोचना उतना आसान नहीं है क्योंकि हमें सबसे पहले राष्ट्रीय राजनीति की भावना के अनुसार सोचना पड़ता है ।

यह सब होते हुए भी, आधुनिक परिवर्तनों ने और खासतौर से अबीसीनिया, स्पेन और चीन में हुई घटनाओं ने अब लोगों को अन्तर्राष्ट्रीयता की भाषा में सोचने को मजबूर कर दिया है । एशिया के इन कुछ देशों में हम बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ पाते हैं, कारण कि अपने संघर्षों में लगे रहने पर भी, हम दुनिया के दूसरे हिस्सों में होनेवाले सामाजिक संघर्षों पर अधिकाधिक सोचने लगे और अनुभव करने लगे कि उनका तमाम दुनिया पर असर पड़ा है इसलिए हमपर भी पड़ा है ।

अगर हम फ़ासिस्टों के आतंक को सफलतापूर्वक रोकना चाहते हैं तो हमको साम्राज्यवाद का भी उतना ही विरोध करना चाहिए, नहीं तो हम कामयाब न होंगे । ब्रितानिया की विदेशी नीति इसी करुणाजनक असफलता का नमूना है, क्योंकि जबतक वह साम्राज्यवाद की बात सोचा-करेगी तबतक न तो वह फ़ासिस्ट हमलों का मुक़ाबला

कर सकती हैं और न दुनिया की प्रगतिशील शक्तियों से अपना सम्बन्ध जोड़ सकती है। और इस प्रकार असफल होकर वह उसी अपनी सल्तनत को नष्ट करने में मदद भी कर रही है, जिसे वह कायम रखना चाहती है। हमारे सामने यह इस बात का जीता-जागता नमूना है कि किस प्रकार साम्राज्यवाद और फासिज्म की बुनियाद में गठजोड़ी है और साम्राज्यवाद एक दूसरे से विरोधी बातें पैदा करता है।

अगर हमारा यह विश्वास है—मैं मानता हूँ हममें से अधिकांश का है—कि साम्राज्यवाद का फासिज्म से नाता है और दोनों के दोनों शान्ति के दुश्मन हैं तो हमें दोनों को मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए और दोनों में फ़र्क ढूंढने की कोशिश छोड़ देनी चाहिए। इसलिए हमें खुद साम्राज्यवाद को ही उखाड़ने की कोशिश करनी है और दुनिया भर के पराधीन लोगों के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता पाने में जुट जाना है।

अब, हमसे अक्सर कहा जाता है कि साम्राज्यवादी धारणा के बदले हमें राष्ट्रों के कॉमनवेल्थ की धारणा बनानी चाहिए। यह शब्द तो हरेक को अच्छा लगता है, क्योंकि हम सब चाहते हैं कि इस दुनिया में राष्ट्रों का एक कॉमनवेल्थ बने। लेकिन अगर हम सोच लें कि साम्राज्य ही धीरे-धीरे करके कॉमनवेल्थ की शक्ल में बदल जायेगा और अर्थनीतिक तथा राजनीतिक दृष्टि से उसका अपना ढाँचा करीब-करीब वैसा ही बना रहे, तो मुझे ऐसा जान पड़ता है कि हम अपने आपको बड़े भारी धोखे में रख रहे हैं। ऐसा कोई सच्चा कॉमनवेल्थ हो ही नहीं सकता कि जो साम्राज्य से पैदा हुआ हो। उसके जन्मदेनेवाले तो दूसरे ही होंगे।

ब्रिटिश कॉमनवेल्थ में बहुतेरे देश हैं जो करीब-करीब स्वतन्त्र हैं। लेकिन हम यह न भूल जायें कि ब्रिटिश साम्राज्य में एक विस्तृत भू-खण्ड

और एक बड़ी भारी आबादी है जो बिल्कुल पराधीन है और अगर आप यह सोचें कि वह पराधीन जनता धीरे-धीरे उस कॉमनवेल्थ में बराबरी की साझेदार बननेवाली है तो आपको बड़ी भारी मुश्किलें मालूम होंगी। आपको पता लगेगा कि यदि किसी तरह राजनीतिक उपायों से वह प्रक्रिया हो भी गयी तो ऐसे कई आर्थिक बन्धन रहेंगे जो एक स्वतंत्र कॉमनवेल्थ से मेल नहीं खाते और उनसे उन पराधीन लोगों को कोई सच्ची स्वतंत्रता नहीं मिल सकेगी, यहाँतक कि यदि वे अपनी आर्थिक व्यवस्था बदलना चाहेंगे तो उसमें रुकावट आयेगी और वे अपनी सामाजिक समस्याएँ नहीं सुलझा पायेंगे।

मैं सोचता हूँ, हममें से हरेक राष्ट्रों के सच्चे कॉमनवेल्थ के पक्ष में होगा। लेकिन हम उसे कुछ ही देशों और राष्ट्रों तक सीमित कर देना क्यों चाहें? इसका मतलब यह हुआ कि आप एक वर्ग का विरोध करने के लिए दूसरा वर्ग बना रहे हैं। दूसरे शब्दों में आप साम्राज्य की धारणा पर नयी रचना कर रहे हैं और एक साम्राज्य की टक्कर दूसरे साम्राज्य से होती है। इससे एक समूह के भीतर लड़ाई होने का खतरा भले ही कम हो जाये, समूहों के बीच में लड़ाई का खतरा तो बढ़ ही जायेगा।

इसलिए अगर हम किसी सच्चे कॉमनवेल्थ की बात सोच रहे हैं तो फिर यह जरूरी हो जाता है कि हम साम्राज्यवाद के विचारों को छोड़ दें और नये आधार पर नयी रचना करें—वह आधार हो सब लोगों के लिए पूरी स्वतन्त्रता का। ऐसी व्यवस्था के लिए हरेक राष्ट्र को दूसरों के साथ-साथ प्रभुत्व (सत्ता) के कुछ चिह्न छोड़ने होंगे। इसी बुनियाद पर हम सामूहिक सुरक्षितता और शांति स्थापित कर सकते हैं।

आज एशिया में, अफ्रीका में और दूसरी जगह ऐसी एक विशाल जनसंख्या है जो पराधीन है और जबतक हम उस पराधीनता को दूर न

कि चीनी यात्री हिन्दुस्तान में १२वीं सदी में आये। वे १००० वर्ष पिछड़ ाये हैं। वे उससे भी १००० वर्ष पहले हिन्दुस्तान में आये थे और उनकी ात्राओं के ग्रन्थों में इसका वर्णन है। तो दोनों का सम्पर्क बहुत पुराना ़ै, लेकिन इसके अलावा भी, हाल के इस विश्व और चीन के संकट ने ़में एक-दूसरे के बहुत अधिक निकट ला दिया है। अब तो हमें संगठित ़ोकर रहना चाहिए, संसार की शांति और प्रगति के लिए आपस में ़हयोग रखना चाहिए। अगर हम चाहें तो ऐसा क्यों नहीं कर सकते?

तो, अगर आप आज के संसार पर निगाह डालें तो आपको ऐसे देश मेलेंगे जो किसी न किसी कारण से एक विश्व-व्यवस्थामें शामिल नहीं होंगे, लेकिन यह तो कोई ऐसा कारण नहीं कि हम ऐसी विश्व-व्यवस्था बनाने के लिए जुट न पड़ें और उसे कुछ ख़ास-ख़ास राष्ट्रों तक ही सीमित करलें।

इसलिए, राष्ट्रों की एक मर्यादित कॉमनवेल्थ की धारणा का विरोध होना चाहिए और अधिक व्यापक कॉमनवेल्थ की धारणा बननी चाहिए। सिर्फ़ तभी हम सामूहिक सुरक्षितता का अपना लक्ष्य सचमुच पा सकते हैं। हम सामूहिक सुरक्षितता चाहते हैं, लेकिन मैं अपना मतलब बिल्कुल साफ़ कर देना चाहता हूँ मेरा मतलब वह नहीं है कि जो श्री नेविल चेम्बरलेन ने उसके साथ जोड़ रखा है। सामूहिक सुरक्षितता की मेरी धारणा, शुरू में उस परिस्थिति को वैसा ही बनाये रखना नहीं है कि जो खुद अन्याय पर क़ायम है। इस तरह सुरक्षितता नहीं हो सकती। इसका जरूरी मतलब यह हुआ कि साम्राज्यवाद और फ़ासिज़्म को हट जाना होगा।

आज दुनिया बड़ी विकट हालत में है। हम देखते हैं कि कई लोग दीखनें में तो बुद्धिमान हैं, लेकिन वे एक दूसरे की विरोधी नीति पर चल रहे हैं और दुनिया के गड़बड़झाले को और भी बढ़ाते चले जा रहे हैं। इस देश में, ब्रिटेन में, हमने देखा कि विदेशी नीति ने एक असाधारण रूप

ले लिया है। आपमें से अधिकतर इसके खिलाफ़ हैं। फिर भी, यह बड़ी अजीब बात है कि ऐसी बात हो, और बाहर रहनेवाले के लिए तो इसको समझना बहुत ही ज्यादा मुश्किल है। इसे किसी भी दृष्टिकोण से समझना मुश्किल है। आज हम ब्रिटेन में ऐसी सरकार देखते हैं जो ग़ालिबन् ब्रिटिश साम्राज्य को बनाये रखना चाहती है मगर काम ऐसे-ऐसे करती है कि जो साम्राज्य के हितों के खिलाफ़ जाते हैं।

मेरी दिलचस्पी उस साम्राज्य को बनाये रखने में नहीं है बल्कि उस साम्राज्य का एक मुनासिब ढंग से खात्मा करने में है। आम जनता शायद इस नीति को पसन्द करे क्योंकि वह साम्राज्यवाद और फ़ासिज़्म के बारे में अभी उलझन में है। वह इस बात का ज़ाहिर सबूत है कि जब साम्राज्यवाद एक कोने में घुसा दिया जाता है तो वह फ़ासिज़्म के साथ जा खड़ा होता है। दोनों को आप अलग नहीं रख सकते। आज जबकि बड़े-बड़े मसले दुनिया के सामने हैं,वे साम्राज्यवादी लोग जिनमें पहले से अधिक वर्ग-चेतना आयी है, आइन्दा के अपने साम्राज्यवादी हितों की रक्षा और स्थायित्व को भी जोखिम में डालकर अपने वर्ग के हितों को बनाये रखना चाहते हैं।

इसलिए, हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि हमें जो भी नीति बनानी हो, उसे सही नींव पर बनाना और असली बुराई को उखाड़ फेंकना है। इस बात को हम समझ रहे हैं कि हमें मध्ययूरोप, चेको-स्लोवाकिया, स्पेन और चीन की और दूसरी बहुतेरी समस्याओं को अब एक साथ लेकर उन्हें एक सम्पूर्ण वस्तु मानकर विचार करना है।

मैं आपको एक समस्या का ध्यान और दिलादूँ कि जिसपर अक्सर हम इस सिलसिले में कुछ भी नहीं सोचते, लेकिन जो इन दिनों हमारे

सामने वहुत ज़्यादा आ रही है। वह समस्या है फ़िलस्तीन की। यह एक निराली समस्या है और हम इसे अरवों और यहूदियों के झगड़े के रूप में ही वहुत ज़्यादा देखने के आदी होगये हैं। मैं शुरू में आपको यह याद दिलादूं कि ठीक २००० वरसों से फ़िलस्तीन में अरवों और यहूदियों में कभी कोई सच्चा झगड़ा नहीं हुआ। यह समस्या तो हाल ही में लड़ाई के ज़माने से उठ खड़ी हुई है। वुनियादी तौर पर यह समस्या फ़िलस्तीन में व्रिटिश साम्राज्यवाद की पैदा की हुई है और जवतक आप इसको ध्यान में न रखेंगे तवतक आप इसे हल नहीं कर पायेंगे और न व्रिटिश साम्राज्य ही इसे हल कर सकेगा और यह सच है कि उन सरगर्मियों के कारण जो इस समस्या से पैदा हो गयी हैं इस समय यह समस्या कुछ कठिन भी होगयी है। तो फ़िलस्तीन की समस्या असल में है क्या ?

वहाँ यहूदी लोग हैं और हममें से हरेक की यहूदियों से अत्यन्त सहानुभूति है, खासकर आज़ जवकि वे सताये जा रहे हैं और यूरोप के कई देशों से निकाले जा रहे हैं। यह ठीक है कि यहूदियों ने कई तरह की गलतियाँ की हैं, लेकिन जवसे वे फ़िलस्तीन में आये हैं तवसे उन्होंने देश की वड़ी सेवा की है। लेकिन आपको याद रखना चाहिए कि फ़िलस्तीन खासकर अरव का देश है और यह आन्दोलन वुनियादी तौर पर अरवों का स्वतन्त्रता पाने के लिए राष्ट्रीय संघर्ष है। यह अरव-यहूदी समस्या नहीं है, यह तो साररूप में स्वतन्त्रता-प्राप्ति का संघर्ष है। यह मजहवी मसला भी नहीं है। शायद आपको मालूम होगा कि अरव के मुसलमान और ईसाई दोनों इस जद्दोजहद में विल्कुल एक हैं। शायद आपको यह भी मालूम होगा कि उन पुराने यहूदियों ने, जो लड़ाई के पहले फ़िलस्तीन में रहते थे, इन जद्दोजहद में वहुत कम हिस्सा लिया है—क्योंकि उनका अपने पड़ोसी अरव से निकट सम्वन्ध रहा है। यह तो

बिल्कुल समझ में आनेवाली बात है कि अरब लोग अपने देश से वंचित किये जाने की कोशिश का विरोध क्यों न करें? कहीं की भी जनता यही करती। आयर्लैण्ड, स्काटलैण्ड या इंग्लैण्ड के निवासी भी यही करते। यह सवाल अपने निजी देश से न निकाले जाने और स्वाधीनता और स्वतन्त्रता चाहने का सवाल है।

इसलिए अरब लोगों ने यह आन्दोलन अपने देश की आजादी के लिए उठाया, मगर ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने ऐसा हथकंडा फेरा कि यह झगड़ा अरबों और यहूदियों का झगड़ा बन गया और फिर ब्रिटिश सरकार सरपंच का काम करने आ बैठी।

फ़िलस्तीन की समस्या केवल एक ही तरह सुलझ सकती है और वह यों कि अरब और यहूदी लोग ब्रिटिश साम्राज्यवाद को बिल्कुल न पूछें और आपस में समझौता कर लें। मेरा अपना खयाल यह है कि ऐसे बहुतेरे अरब और यहूदी हैं जो इस तरह से उस मसले को सुलझाना चाहते हैं। बदनसीबी से हाल की घटनाओं से ऐसी मुश्किलें पैदा होगयी हैं जिनसे साम्राज्यवादी पुर्जों ने खिलवाड़ किया है और इसलिए अरबों-यहूदियों का मेल होने में थोड़ा अर्सा लगेगा, लेकिन हमारा यह काम और फर्ज होना चाहिए कि इस दृष्टिबिन्दु पर ज़ोर डालते हुए इस बात को स्पष्ट करें कि

(१) आप अरब लोगों को कुचलने की कोशिश करके इस समस्या को नहीं सुलझा सकते; और—

(२) यह झगड़ा ब्रिटिश साम्राज्यवाद से नहीं बल्कि दोनों खास पक्षों के मिलकर कुछ शर्तें कबूल करके समझौता करने से सुलझेगा।

मैं उन बहुत से देशों का ज़िक्र करना नहीं चाहता कि जो पराधीन हैं या जो आज दूसरी मुश्किलों में मुब्तला हैं क्योंकि आज तो क़रीब-

क़रीब हरेक देश के साथ ऐसा ही है। यह हो सकता है कि हम बाद में उनकी समस्याओं पर विचार करें, लेकिन मेरा यह पक्का खयाल है कि हम अफ्रीका के देशों को न भूलें, क्योंकि शायद दुनिया के किसी देश ने इतनी तक़लीफें नहीं उठायीं और पिछले दिनों किसीका इतना शोषण नहीं हुआ, जितना कि अफ्रीका के लोगों का।

हो सकता है कि इस शोषण-क्रिया में कुछ हदतक मेरे अपने ही देश के निवासियों ने हिस्सा लिया हो। इसके लिए मुझे दुख है। जहाँ तक हम हिन्दुस्तानवालों का प्रश्न है, हम जो नीति रखना चाहते हैं वह यह है: हम नहीं चाहते कि हिन्दुस्तान से कोई किसी देश में जाये और वहाँ ऐसा कोई काम करे जो उस देश के निवासियों की मर्जी के खिलाफ़ हो, फिर चाहे वह देश बर्मा या पूर्वी अफ्रीका या दुनिया का कोई भी हिस्सा क्यों न हो। मैं समझता हूँ कि अफ्रीका के भारतीयों ने बहुत से अच्छे-अच्छे काम किये हैं, बहुतों ने बहुत ज्यादा नफ़ा उठाया है। मेरा ख़याल है कि अफ्रीका में या दूसरी जगह रहनेवाले भारतीय इस समाज के उपयोगी सदस्य बन सकते हैं। लेकिन केवल इसी आधार पर हम उनके वहाँ रहने का स्वागत करें कि अफ्रीकावासियों के हितों को हमेशा पहले स्थान दें।

मेरा खयाल है कि आप इस बात को समझ रहे होंगे कि अगर हिन्दुस्तान स्वतन्त्र होजाये तो वह दुनिया-भर में साम्राज्य की धारणा में बड़ा भारी फ़र्क डाल देगा और उससे सब-के-सब पराधीन लोगों को फायदा पहुँचेगा।

हम भारत का, चीन का और दूसरे देशों का तो ख़याल करते हैं मगर अफ्रीका को अक्सर भूल ही जाया करते हैं और हिन्दुस्तान के लोग चाहते हैं कि आप उनका भी ध्यान रक्खें। आखिर, हिन्दुस्तान के लोग

भले ही तमाम प्रगतिशील लोगों की ओर से मिलनेवाली मदद और हमदर्दी का स्वागत करें लेकिन, आज शायद उनमें इतनी ताकत है कि अपनी लड़ाई आप लड़ लें—जबकि यह बात अफ्रीका के कुछ लोगों के बारे में सच न हो। इसलिए अफ्रीका के लोग हमारी ओर से खास खयाल किये जाने के मुस्तहक़ हैं।

आपमें से अधिकांश शायद मेरे इन विचारों से सहमत होंगे। इस हॉल (भवन) के बाहर बहुतेरे लोग उससे शायद सहमत न भी हों। बहुत से लोग यह भी कह सकते हैं कि ये खयालात आदर्शवादी हैं और आज की दुनिया से उनका कोई सरोकार नहीं है। मैं समझता हूँ कि इससे ज्यादा बेवक़ूफ़ी का खयाल शायद ही कोई हो। इसी रास्ते पर चलकर हम आज अपनी समस्याएँ सुलझा सकते हैं और अगर आपका यह खयाल हो कि हम इन बुनियादी मसलों को उठाये बिना उन्हें हल कर सकते हैं तो आप बड़ी भारी गलती कर रहे हैं।

इन समस्याओं को हाथ में लेने का आज का एक छोटा-सा नमूना भी है। वह नमूना है स्पेनिश मोरक्को में 'मूर' लोगों का। उनकी समस्या को हाथ में लेने में देर हुई तो झट स्पेन की फासिस्ट टुकड़ी ने उस मौके का फायदा उठाया, तरह-तरह के झूठे वायदे किये और उन्हें उन्हीं लोगों पर हमला करने के लिए अपनी तरफ भर्ती कर लिया जो इन्हें आजादी दे सकते थे और इस तरह बेचारे बदनसीब मूर लोगों को धोखा दिया गया। अगर इस समस्या का उचित रीति से मुकाबला नहीं किया गया तो इसी तरह की बात बार-बार होती रहेगी।

किसी पराधीन देश से जिसके अपने लोग ही खुद पराधीन बने हुए हैं, हम यह आशा शायद ही कर सकें कि वह दूसरों की आजादी में उत्साह दिखा सकेगा।

इसीलिए, हिन्दुस्तान में, हमने इसे अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है और कांग्रेस ने घोषणा कर दी है कि वह साम्राज्यवादी युद्ध में कोई हिस्सा नहीं लेगा। जबतक हिन्दुस्तान पराधीन है, तबतक उससे यह उम्मीद करना बेहूदा है कि वह एक ऐसे उद्देश्य के लिए कि जो किसी साम्राज्य को मजबूत करने के पक्ष में हो, अपने जन और साधन दे सके।

स्थिति को हाथ में लेने का सही तरीका तो यह है कि साम्राज्यवाद की जड़ उखाड़ी जाये, पराधीन लोगों को पूरी आज़ादी दे दी जाये और फिर दोस्ताना ढंग से उनके पास जाकर उनसे शर्तों के साथ समझौता किया जाये। अगर उस तरीके से उनके पास पहुँचें तो वे मित्रता दिखायेंगे, नहीं तो यह होगा कि लगातार दुश्मनी बनी रहेगी, मुश्किलें और झगड़े चलते रहेंगे और जब संकट पैदा होगा और खतरा आ जायेगा, तो तरह-तरह की उलझनें उठ खड़ी होंगी और कह नहीं सकते कि क्या होगा। इसीलिए मेरी आप सबसे प्रार्थना है कि आप यह याद रखें और समझें कि हम आज दूर के आदर्शवादी हलों को नहीं बल्कि मौजूदा जमाने की समस्याओं को हाथ में ले रहे हैं और अगर हम उनपर ध्यान नहीं देंगे और उनसे कतरा जायेंगे तो इसमें खतरा है।[१]

---

१. १५, १६ जुलाई १९३८ को लन्दन में शान्ति और साम्राज्य के प्रश्न पर 'इण्डिया लीग' और 'लन्दन फेडरेशन ऑव पीस कौंसिल्स' की ओर से हुई परिषद् के अध्यक्ष-पद से दिया हुआ भाषण।

: २ :

नगरों पर बमबारी

आज की इस विराट सभा को मुझे हिन्दुस्तान की जनता का प्रतिनिधित्व करनेवाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से शांति-स्थापना के कार्य में पूरी सहायता देने का आश्वासन और बधाइयां देनी हैं। मैं राजाओं, रानियों और राजकुमारों की ओर से नहीं बल्कि अपने करोड़ों देशवासियों की ओर से बोल रहा हूं। हमने शांति के इस कार्य से अपना संबंध बड़ी खुशी के साथ इसलिए जोड़ा है कि यह समस्या अत्यंत आवश्यक है। और इसलिए भी कि किसी भी दशा में हमारा पिछला इतिहास और हमारी सभ्यता भी हमें यही करने के लिए प्रेरित करती। कारण यह है कि पिछली कई शताब्दियों से हमारे महान् बन्धु-राष्ट्र चीन की तरह, हिन्दुस्तान की भावना भी शांति की रही है। स्वतन्त्रता के हमारे राष्ट्रीय संघर्ष में भी हमने इसीको अपना आदर्श समझकर शांतिमय उपायों को अपनाया है। इसीलिए हम बड़ी खुशी के साथ शांति के लिए प्रयत्न करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

कल लार्ड सैसिल ने कहा था कि केवल युद्ध को मिटा देने से ही अन्त में शांति मिल सकती है। इस कथन से हम पूर्ण सहमत हैं। युद्ध को मिटा देने के लिए हमें युद्ध के कारणों और जड़ को मिटाना होगा। गुजरे जमाने में चूंकि हमने इस समस्या पर ऊपर-ऊपर ही विचार किया, इसकी जड़ों को नहीं छुआ, इसलिए हम अबतक कोई भी काम की चीज नहीं पा सके। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति लगातार बिगड़ती गयी है और लाखों के लिए मृत्यु और अकथनीय कष्ट लायी है। अगर हम लड़ाई की उन जड़ों की

ओर से लापरवाह बने रहेंगे तो हम फिर असफल होंगे और शायद उस असफलता में बरवाद भी हो जायेंगे ।

आज हम देखते हैं कि फ़ासिस्ट हमले दुनिया को युद्ध की तरफ खींचे ले जारहे हैं और हम उसकी निन्दा करते और उसका मुक़ावला करना चाहते हैं तो ठीक ही करते हैं । लेकिन हालाँकि फ़ासिज़्म पश्चिम में हाल ही में पैदा हुआ है मगर हम उसे अर्से से एक दूसरे भेष और दूसरे नाम—साम्राज्यवाद—से जानते-पहचानते हैं । गुजरे जमाने में पीढ़ियों तक उपनिवेश-देशों ने साम्राज्यवाद के नीचे कष्ट झेले हैं और अब भी झेल रहे हैं । यही साम्राज्य बनाने का ख़याल, जो साम्राज्यवाद या फ़ासिज़्म के रूप में काम कर रहा है, लड़ाई का ज़ोरदार कारण है, और जबतक वह नहीं मिट जाता, तबतक सच्ची और स्थायी शांति नहीं हो सकती । एक पराधीन देश के लिए कभी शांति है ही नहीं क्योंकि शांति तो स्वतन्त्रता के साथ ही आ सकती है । इसलिए साम्राज्यों को मिटना चाहिए, उनका जमाना बीत चुका । अब हमें न सम्राटों से दिलचस्पी है न राजा-नवाबों से; हमें दिलचस्पी है दुनिया भर के लोगों से,और भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) भारत के रहनेवालों और उसकी स्वतन्त्रता की समर्थक है । आज भी शांति में सहायता पहुँचानेवालों में हिन्दुस्तान एक शक्तिशाली अंग है । और अगर विश्व-संकट पैदा हुआ तो वह स्थिति को बहुत बदल सकता है । इस मामले में उसे न तो कोई उपेक्षित कर सकता है और न वह ऐसा चाहता है । स्वतंत्र भारत शांति की एक शक्तिशाली मीनार होगा, और हमें आशा है कि भारत जल्दी ही स्वतंत्र होगा ।

लार्ड सैसिल ने कट्टर राष्ट्रीयता के ख़तरे बतलाये हैं । मैं यह कहना चाहता हूँ कि मैं उनसे पूर्ण सहमत हूँ और यद्यपि मैं हिन्दुस्तान की

राष्ट्रीयता और हिन्दुस्तान की आजादी का समर्थक हूँ, फिर भी मैं वह समर्थन सच्ची राष्ट्रीयता की बुनियाद पर कर रहा हूँ। हम हिन्दुस्तान-वाले बड़ी खुशी से ऐसी विश्व-व्यवस्था में सहयोग देंगे और दूसरे लोगों के साथ कुछ हदतक राष्ट्रीय प्रभुत्व तक के कुछ अश को छोड़ देने को राजी हो जायेंगे, बशर्ते कि सामूहिक सुरक्षितता की कोई योजना हो। लेकिन ऐसा तो तभी हो सकता है जब राष्ट्र शान्ति और स्वतन्त्रता के आधार पर सम्बद्ध हो जायें।

औपनिवेशिक देशों की पराधीनता रहे और साम्राज्यवाद चलता रहे, इस आधार पर तो कोई विश्वव्यापी सुरक्षितता कायम नही रह सकती। आज शाति और युद्ध की तरह स्वतन्त्रता भी अविभाज्य है। अगर आज के आक्रमणकारियों को रोकना है तो कल के आक्रमणकारियों से भी हिसाब माँगना होगा। चूँकि हमने पिछली बुराइयों को ढकने की कोशिश की है—भले ही वह अब भी मिटी न हो—इसलिए आज की इस नयी बुराई को रोकने की हममे ताकत नहीं रही है।

बुराई को न रोकने से *वह बढ़ती है, बुराई को बर्दाश्त* कर लेने से वह तमाम क्रियाओं में ही जहर फैला देती है। और चूँकि हमने अपनी पिछली और आज की बुराइयों को बर्दाश्त कर लिया है इसलिए अन्त-र्राष्ट्रीय कामों में बुराई फैल गयी है और कानून और न्याय वहाँ से गायब हो गये हैं।

यहाँ हम खास तौर से शहरो और कस्बों की आबादी पर आस-मान से बमबारी होने के बारे मे चर्चा करने के लिए इकट्ठे हुए हैं। दिनो दिन डर-पर-डर आ-आकर छा रहे हैं और हालांकि वर्तमान पर सोच-विचार करते हुए डर लगता है, मगर भविष्य के पेट में तो ऐसा कुछ है जो ऐसा ज्यादा बुरा होगा कि जिसकी कल्पना भी नहीं हो सकती

हाल ही में मैं वार्सीलोना गया था और अपनी आँखों मैंने उसकी वरवाद हुई इमारतों को, मुंह फाड़े हुए दरारों को, और आसमान में तेज़ दौड़ते हुए और अपने पीछे मौत और वरवादी के दृश्य लाते हुए वमों को देखा। वह तस्वीर मेरे दिल पर खिंच गयी है और स्पेन और चीन में होनेवाले रोज़ाना की वमवारी की खवर मेरे कलेजे में छुरी की तरह चुभती है और उसकी भंयकरता से मैं खिन्न हो उठता हूँ। लेकिन उस तस्वीर के ऊपर एक दूसरी तस्वीर है—स्पेन के तेजस्वी लोगों की, जो इन भयानक घटनाओं को झेलते हुए उनके मुक़ावले में दो लम्वे वरसों तक अनुपम वीरता के साथ लड़े हैं और जिन्होंने अपने खून और कष्टों से ऐसा इतिहास लिख दिया है जो आनेवाले युगों को प्रेरणा देता रहेगा। प्रजातन्त्र-स्पेन के इन महान् स्त्री-पुरुषों को मैं हिन्दुस्तानियों की ओर से आदर के साथ श्रद्धांजलि अर्पण करता हूँ और जिनके साथ हम इतिहास के प्रभातकाल से ही हज़ारों वन्धनों से जुड़े हुए हैं, उन चीनवासियों की ओर भी हम साथीपने की भावना से अपने हाथ वढ़ा रहे हैं। उनके खतरे हमारे खतरे हैं [illegible]

शहर अलबत्ता नहीं है; मगर हिन्दुस्तान के सरहद्दी गाँवों में भी इंसान—आदमी, औरत और बच्चे ही रहते हैं और जब ऊपर आसमान से बम गिरते हैं तो वे भी मरते या विकलांग होजाते हैं। क्या आपको याद है कि यह बमबारी का सवाल बहुत बरसों पहले राष्ट्रसंघ में उठाया गया था, और ब्रिटिश सरकार ने सरहद पर उसे रोकने से इनकार कर दिया था ? इसे पुलिस की कार्रवाई कहा गया था और उन्होंने उसको रहने देने पर ही ज़ोर दिया था। यह बुराई रोकी नहीं गयी और अगर अब यह बढ़ गयी है तो इसमें अचम्भा ही क्या है ? इसकी जवाबदेही किसके सिर पर है ?

ग्रेटब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने हाल ही में अपने इस अपवाद को वापिस ले लेने का आश्वासन दिया है, बशर्ते कि आसमान से होनेवाली बमबारी को रोकने पर सब राज़ी होजायें। लेकिन यह आश्वासन खोखला है, जबतक कि वह कार्रवाई करके तमाम सरहद्दी बमबारियों को रोक न दें। तबतक दूसरों की बमबारियों के खिलाफ उज्र करने के कोई मानी और कोई वज़न नहीं।

विंगोस्टर के डीन ने कल इस परिषद् में यह माँग की थी कि ऊपर से बमबारी करनेवाले देशों के साथ कोई सुलह न की जाये। इस भावना की ठीक ही सराहना की गयी। तब इग्लैंण्ड का क्या होगा जो अब भी हिंदुस्तान की सरहद पर बम बरसाने के लिए जिम्मेदार है ? क्या यह इस कारण है कि ब्रिटिश सरकार इस प्रश्न पर निर्दोष रहकर नहीं सोच सकती और उन्होंने अपनी विदेशी नीति को ऐसा बना लिया है कि उसपर भरोसा करना ठीक नहीं और अब वह उस राष्ट्र से दोस्ती और समझौता करने पर उतारू है जो स्पेन में होनेवाली इस बमबारी के लिए सबसे अधिक जवाबदेह है ? मैं तो इस बुराई करनेवाले और

हाल ही में मैं वार्सीलोना गया था और अपनी आँखों मैंने उसकी वरवाद हुई इमारतों को, मुँह फाड़े हुए दरारों को, और आसमान में तेज़ दौड़ते हुए और अपने पीछे मौत और वरवादी के दृश्य लाते हुए वमों को देखा। वह तस्वीर मेरे दिल पर खिच गयी है और स्पेन और चीन में होनेवाले रोज़ाना की वमवारी की खवर मेरे कलेजे में छुरी की तरह चुभती है और उसकी भंयकरता से मैं खिन्न हो उठता हूँ। लेकिन उस तस्वीर के ऊपर एक दूसरी तस्वीर है—स्पेन के तेजस्वी लोगों की, जो इन भयानक घटनाओं को झेलते हुए उनके मुक़ावले में दो लम्वे वरसों तक अनुपम वीरता के साथ लड़े हैं और जिन्होंने अपने खून और कष्टों से ऐसा इतिहास लिख दिया है जो आनेवाले युगों को प्रेरणा देता रहेगा। प्रजातन्त्र-स्पेन के इन महान् स्त्री-पुरुषों को मैं हिन्दुस्तानियों [illegible] ओर से आदर के साथ श्रद्धांजलि अर्पण करता हूँ और जिनके [illegible] हम इतिहास के प्रभातकाल से ही हज़ारों वन्धनों से जुड़े हुए हैं, उन चीनवासियों की ओर भी हम साथीपने की भावना से अपने हाथ वढ़ा रहे हैं। उनके खतरे हमारे खतरे हैं, उनकी तक़लीफें हमें चोट पहुँचाती हैं और हमारे कैसे भी भले या वुरे दिन क्यों न आयें, हम उनके साथ रहेंगे।

स्पेन और चीन में होनेवाली इन आसमान से वमवारियों से हमें गहरी व्यथा होती है। लेकिन तो भी वमवारी हमारे लिए कोई नयी वात नहीं है। यह वुराई तो पुरानी है और चूँकि इसे चलते रहने से रोका नहीं गया इसलिए आज इसने इतना विशाल और भयंकर रूप धारण कर लिया है। क्या आप भारत की उत्तर-पश्चिमी सरहद पर हुई उन वमवारियों को भूल गये, जो पिछले कई वरसों से अभी तक होती चली आ रही हैं? वहाँ मैड्रिड, वार्सीलोना, कैण्टन, हैंको जैसे

वादी नीतियों ने उनके हाथ-पाँव बाँध रक्खे हैं ? इन सरकारों से कुछ न बन पड़ा। अब वक्त है कि लोग कार्रवाई करें और उन्हें अपने ऐमाल सुधारने को मजबूर करें। यह कार्रवाई फौरन बमबारियों को रोकने, पिरेनीज की सरहद को खोलने और बचाव करने के साधनों और रसद को प्रजातन्त्रीय स्पेन में पहुँचने देने की होनी चाहिए। अगर बमबारी जारी रहे तो वायुयान-विरोधिनी तोपें और रक्षा की दूसरी सामग्री भी वहाँ पहुँचने दी जानी चाहिए।

इन पिछले दो सालों में स्पेन और चीन में कितनी बड़ी-बड़ी बर-बादियाँ हुई हैं ! भूखों मरते और घायल स्त्रियाँ और बच्चे सहायता माँगने के लिए आर्त्तनाद कर रहे हैं और दुनिया भर के तमाम भले और समझदार लोगों का काम है कि उनकी मदद करें। यह समस्या दुनिया भर की है और हमें विश्वव्यापी आधार पर सगठन करना चाहिए। संघर्ष का असली बोझ तो पीड़ित देशों के निवासियों पर पड़ा है; हम कम-से-कम इस छोटे बोझ को ही उठालें।

मुझे इस परिषद् में यह कहते हुए खुशी होती है कि कांग्रेस ने एक 'मेडिकल यूनिट' का सगठन किया है और उसे जल्दी ही चीन भेज रही है। भारत में जापानी माल के अपने बहिष्कार में भी हमने काफ़ी सफलता पायी है जैसा कि निर्यात के आँकड़ों से जाहिर होता है। एक हाल की घटना से चीनी जनता के प्रति हमारी भावना की ताक़त का पता लगेगा। मलाया में जापानियों की लोहे और टीन की खानें थीं, जिनमें चीनी मजदूर नौकर थे। इन मजदूरों ने जापान के लिए हथियार बनाने से इनकार कर दिया और खानें छोड़ दी। इसपर हिन्दु-स्तानी मजदूर नौकर रख लिये गये, मगर हमारी प्रार्थना पर उन्होंने भी वहाँ काम करने से इनकार कर दिया, हालाँकि इससे उनको बड़ी

आक्रमणकारी की पीठ ठोकने की नीति से हिन्दुस्तान को बिलकुल अलग कर देना और कह देना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान के लोग इसमें कोई हिस्सा न लेंगे और जब कभी उन्हें मौक़ा मिलेगा, वे उसका मुक़ाबला करेंगे।

स्पेन में हम अहस्तक्षेप का भयंकर तमाशा देख चुके हैं, जिसने अच्छे-अच्छे शब्दों और प्रजातंत्रीय नीति के बुर्के में स्पेन के बाग़ियों और हमलाइयों को मदद पहुँचायी है और उस देश के लोगों को अपनी हिफाज़त करने के साधन पाने से रोका है। उन बाग़ियों तक माल पहुँचाने के लिए समुद्र और दूसरे सैकड़ों दरवाज़े खुले हुए हैं, लेकिन पिरेनीज़ की सरहद अहस्तक्षेप के नाम पर बन्द करदी गयी है, हालाँकि बमबारी व रसद की कमी से औरतें और बच्चे भूखों मर रहे हैं।

हम स्पेन के आक्रमणकारियों और उपद्रवियों की निन्दा करते हैं, उनपर दोष लगाते हैं, लेकिन उन्होंने कम-से-कम खुले आम अन्तर्राष्ट्रीय कानून और सुघड़ता के तमाम कायदों को ठुकराया है और दुनिया को उन्हें रोकने की चुनौती दी है। मगर उन सरकारों का क्या होगा, जो बात तो बड़ी बहादुरी से शांति और कानून की करती हैं, मगर जिन्होंने इस चुनौती के आगे सिर झुका दिया है और हरेक नयी छेड़खानी को बर्दाश्त कर लिया है और बुराई करनेवालों से दोस्ती करने की कोशिश की है? उन लोगों का क्या होगा जिन्होंने ऐसे वक्त पास खड़े-खड़े उदासीन रहने का जुर्म किया है जबकि जिन्दगी और ज़िन्दगी से भी अधिक पाक चीज़ को कुचला और बेइज्ज़त किया जा रहा था।

आज भी आक्रमणकारी राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों से क्या संख्या, क्या ताक़त और क्या लड़ाई के साधनों में कमज़ोर हैं, मगर फिर भी ये दूसरे राष्ट्र बेबस और कारगर कार्रवाई करने में असमर्थ दिखाई देते हैं। क्या ऐसा होने की वजह यह नहीं है कि उनकी पिछली और मौजूदा साम्राज्य-

वादी नीतियों ने उनके हाथ-पाँव बाँध रक्खें हैं ? इन सरकारों से कुछ न बन पड़ा। अब वक्त है कि लोग कार्रवाई करें और उन्हें अपने ऐमाल सुधारने को मजबूर करें। यह कार्रवाई फौरन बमबारियों को रोकने, पिरेनीज की सरहद को खोलने और बचाव करने के साधनों और रसद को प्रजातन्त्रीय स्पेन में पहुँचने देने की होनी चाहिए। अगर बमबारी जारी रहे तो वायुयान-विरोधिनी तोपें और रक्षा की दूसरी सामग्री भी वहाँ पहुँचने दी जानी चाहिए।

इन पिछले दो सालों में स्पेन और चीन में कितनी बड़ी-बड़ी बरबादियाँ हुई हैं ! भूखों मरते और घायल स्त्रियाँ और बच्चे सहायता माँगने के लिए आर्त्तनाद कर रहे हैं और दुनिया भर के तमाम भले और समझदार लोगों का काम है कि उनकी मदद करें। यह समस्या दुनिया भर की है और हमें विश्वव्यापी आधार पर संगठन करना चाहिए। संघर्ष का असली बोझ तो पीड़ित देशों के निवासियों पर पड़ा है; हम कम-से-कम इस छोटे बोझ को ही उठालें।

मुझे इस परिषद् में यह कहते हुए खुशी होती है कि कांग्रेस ने एक 'मेडिकल यूनिट' का संगठन किया है और उसे जल्दी ही चीन भेज रही है। भारत में जापानी माल के अपने बहिष्कार में भी हमने काफी सफलता पायी है जैसा कि निर्यात के आँकड़ों से जाहिर होता है। एक हाल की घटना से चीनी जनता के प्रति हमारी भावना की ताक़त का पता लगेगा। मलाया में जापानियों की लोहे और टीन की खानें थीं, जिनमें चीनी मजदूर नौकर थे। इन मजदूरों ने जापान के लिए हथियार बनाने से इनकार कर दिया और खानें छोड़ दीं। इसपर हिन्दुस्तानी मजदूर नौकर रख लिये गये, मगर हमारी प्रार्थना पर उन्होंने भी वहाँ काम करने से इनकार कर दिया, हालाँकि इससे उनको बड़ी

मुसीबतें और तकलीफ़ें उठानी पड़ीं।

और इस प्रकार जद्दोजहद जारी है। इस जद्दोजहद में हमारे कितने ही दोस्त, साथी और प्रियजन जान दे ही चुके हैं—मगर फ़िजूल नहीं। हो सकता है कि यहाँ इकट्ठे हुए हममें से न जाने कितने उसी रास्ते पर जायें और फिर न मिल सकें। मगर चाहे हम जिन्दा रहें या मरें, शांति और स्वतन्त्रता का उद्देश्य तो कायम रहेगा ही, क्योंकि वह हम सबसे अधिक महान् है—वह स्वयम् मानव-जाति का उद्देश्य है। अगर वही मिट जायेगा तो हम सबके सभी मिट जायेंगे। यदि वह जीवित रहा तो हम भी जीवित रहेंगे, फिर हमारे नसीब में चाहे कुछ भी क्यों न हो। इसलिए आइए, हम उसी उद्देश्य के लिए प्रतिज्ञा ग्रहण करें।[1]

---

१. पैरिस में २३-२४ जुलाई १९३८ को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-आन्दोलन के अन्तर्गत बुलायी गयी एक परिषद् में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से दिया हुआ भाषण।

: ३ :

चेको-स्लोवाकिया के साथ विश्वासघात

हिन्दुस्तान की आजादी और विश्वशान्ति का उत्कट इच्छुक भारतीय होने के नाते मैंने हाल की स्पेन और चेको-स्लोवाकिया में हुई घटनाओं को चिन्ता के साथ देखा है। पिछले कुछ बरसों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने ब्रितानिया की विदेशी नीति की आलोचना की है और अपने आपको उससे अलग रखा है, क्योंकि वह हमें बड़ी प्रतिगामी, जनतन्त्र-विरोधी और फासिस्ट व नात्सी हमलों को बढ़ावा देनेवाली जान पड़ी है। मञ्चूरिया, फिलस्तीन, अबीसीनिया, स्पेन ने हिन्दुस्तान के लोगों में आन्दोलन पैदा कर दिया है। मचूरिया में हमले को बढ़ावा देने की नींव पड़ी और अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून के तमाम क़ायदों और समझौतों की ओर से आँख मूँदकर राष्ट्रसंघ के काम को बिगाड़ दिया गया। यूरोप में यहूदियों ने भयानक और अमानुषिक अत्याचार सहने में जो संकट उठाये उनसे हमदर्दी और सद्भावना रखते हुए हमने उनके संघर्ष को असल में आजादी के लिए किया जानेवाला राष्ट्रीय संघर्ष समझा है कि जिसका ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने हिन्दुस्तान आनेवाले समुद्री रास्ते को कब्जे में रखने के लिए जोर जबर्दस्ती करके दमन किया था। अबीसीनिया में बहादुर जनता के साथ बड़ी दग़ा हुई। स्पेन में प्रजातन्त्र को तंग करने और बाग़ियों की पीठ ठोंकने में कुछ कसर नहीं रखी गयी। यह फैसला करके कि स्पेन की सरकार को खत्म होना चाहिए या वह खत्म होनेवाली है ब्रिटिश सरकार ने भिन्न-भिन्न तरीकों से उस मक़सद को जल्दी

पूरा करने की कोशिश की और बाग़ियों की ओर से तौहीन, नुक़सान और बड़ी भारी ज़लालत तक बर्दाश्त कर ली गयी।

यह नीति हर जगह बुरी तरह असफल रही है, इस सचाई से भी ब्रिटिश सरकार उसपर चलने से बाज़ न आयी। मञ्चूरिया पर हुए बलात्कार का फल आज दुनिया में हम चारों ओर देख रहे हैं। फ़िलस्तीन की समस्या दिन-पर-दिन बिगड़ती जाती है। हिंसा का मुकाबला हिंसा से होता है और जनता को दबाने की कोशिश में सरकार दिन-पर-दिन बढ़नेवाली फ़ौजी ताक़त काम में ला रही है। इस बात को हमेशा याद नहीं रखा जाता कि यह समस्या बहुत कुछ ब्रिटिश सरकार की पैदा की हुई है और जो कुछ हुआ है उसमें से बहुत कुछ के लिए उसीको जबाब-देह ठहराना चाहिए। आपके सम्वाददाता के अनुसार तो अबीसीनिया अब भी जीता नहीं गया है और शायद वह ऐसा ही रहेगा। स्पेन में जनता ने ब्रिटिश सरकार की इच्छा पर नाचने से इनकार किया है और दिखला दिया है कि वे न तो दबाने या कुचलने में आयेंगी न आ सकती हैं।

असफलता का यह लेखा ध्यान देने योग्य है। तिसपर भी ग्रेट-ब्रिटेन की सरकार को उससे नसीहत लेना और अपने ऐमाल दुरुस्त करना नहीं आता। बल्कि वह तो और भी धड़ाके के साथ हमलों को बढ़ावा देने और जनरल फ्रैंको और फ़ासिस्ट व नात्सी ताक़तों को मदद देने की अपनी नीति चला रही है। इसमें शक नहीं कि अगर उसे चलने दिया गया तो वह इसी तरह तबतक चलती रहेगी जबतक कि वह अपने आपको और ब्रिटिश साम्राज्य को मिटा नहीं देती, क्योंकि दूसरी सारी बातों से भी बढ़कर बात है उसका फ़ासिज़्म की ओर वर्ग-सहानुभूति और झुकाव होना। अवश्य ही यह दुनिया को उसकी बड़ी

भारी सेवा होगी—चाहे वह कितनी ही अनजान में हो; और मैं साम्राज्यवाद के अन्त होने का विरोध करनेवालों में सबसे आखरी हूँगा। पर मुझे विश्वव्यापी युद्ध की सम्भावना से भारी चिन्ता है और यह देखकर मुझे अत्यन्त दुख होता है कि ब्रितानिया की विदेशी नीति सीधे लड़ाई की ओर ले जा रही है। यह सच है कि हेर हिटलर की बात इस मामले में आखरी फैसला करेगी, लेकिन हेर हिटलर तो खुद बहुत कुछ ब्रिटेन के रुख और रवैये पर निर्भर रहेगा। अबतक तो इस रवैये ने उसे बढ़ावा देने और चेको-स्लोवाकिया को दाँत दिखाने और धमकाने में कुछ भी उठा नहीं रखा है। तो, अगर लड़ाई होकर ही रही, तो ब्रिटिश सरकार को कम-से-कम यह महसूस करके सन्तोष या जो कुछ भी हो हो सकेगा कि यह सब बहुत-कुछ उसीके कारण हुआ और ब्रितानिया के लोग, जिन्होंने इस सरकार को सत्ता दी है, इस सच्चाई से जो आराम उठा सकें, उठा लेंगे।

मैंने सोचा तो यह था कि (ब्रिटिश) सरकार जो कुछ करेगी उससे मुझे अचम्भा नहीं होगा—(सिवा एक बात के कि यह अचानक प्रगतिशील बन जाये और शान्ति-स्थापना का प्रयत्न करने लगे)। पर मैंने भूल की थी। चेको-स्लोवाकिया में हुई हाल की घटनाओं और जिन तरीक़ों से सरकार ने—खुद या अपने बीच-बचाव करनेवालों के जरिये—जो हर मौके पर चेक सरकार को सताया और धमकाया है उसपर मेरा मन बिगड़ने लगा है और मुझे हैरानी हुई है कि कोई भी अंग्रेज जिसमें उदारता की जरा-सी भावना या सुजनता हो, इसे कैसे बर्दाश्त कर सका ?

हाल ही में मैंने थोड़ा समय चेको-स्लोवाकिया में बिताया था। वहाँ मैं बहुतेरे चेक और जर्मन लोगों से मिला। मैं लौटा तो भयकर खतरे और बेमिसाल कष्टों में भी शान्त और प्रसन्नचित्त रहते हुए

पूरा करने की कोशिश की और बागियों की ओर से तौहीन, नुक़सान और बड़ी भारी ज़लालत तक बर्दाश्त कर ली गयी।

यह नीति हर जगह बुरी तरह असफल रही है, इस सचाई से भी ब्रिटिश सरकार उसपर चलने से बाज़ न आयी। मञ्चूरिया पर हुए बलात्कार का फल आज दुनिया में हम चारों ओर देख रहे हैं। फ़िलस्तीन की समस्या दिन-पर-दिन बिगड़ती जाती है। हिंसा का मुकाबला हिंसा से होता है और जनता को दबाने की कोशिश में सरकार दिन-पर-दिन बढ़नेवाली फ़ौजी ताक़त काम में ला रही है। इस बात को हमेशा याद नहीं रखा जाता कि यह समस्या बहुत कुछ ब्रिटिश सरकार की पैदा की हुई है और जो कुछ हुआ है उसमें से बहुत कुछ के लिए उसीको जबाब-देह ठहराना चाहिए। आपके सम्वाददाता के अनुसार तो अबीसीनिया अब भी जीता नहीं गया है और शायद वह ऐसा ही रहेगा। स्पेन में जनता ने ब्रिटिश सरकार की इच्छा पर नाचने से इनकार किया है और दिखला दिया है कि वे न तो दबाने या कुचलने में आयेंगी न आ सकती हैं।

असफलता का यह लेखा ध्यान देने योग्य है। तिसपर भी ग्रेट-ब्रिटेन की सरकार को उससे नसीहत लेना और अपने ऐमाल दुरुस्त करना नहीं आता। बल्कि वह तो और भी धड़ाके के साथ हमलों को बढ़ावा देने और जनरल फ्रेंको और फ़ासिस्ट व नात्सी ताक़तों को मदद देने की अपनी नीति चला रही है। इसमें शक नहीं कि अगर उसे चलने दिया गया तो वह इसी तरह तबतक चलती रहेगी जबतक कि वह अपने आपको और ब्रिटिश साम्राज्य को मिटा नहीं देती, क्योंकि दूसरी सारी बातों से भी बढ़कर बात है उसका फ़ासिज़्म की ओर वर्ग-सहानुभूति और झुकाव होना। अवश्य ही यह दुनिया को उसकी बड़ी

भारी सेवा होगी—चाहे वह कितनी ही अनजान में हो; और मैं साम्राज्यवाद के अन्त होने का विरोध करनेवालों में सबसे आखरी हूँगा। पर मुझे विश्वव्यापी युद्ध की सम्भावना से भारी चिन्ता है और यह देखकर मुझे अत्यन्त दुख होता है कि ब्रितानिया की विदेशी नीति सीधे लड़ाई की ओर ले जा रही है। यह सच है कि हेर हिटलर की बात इस मामले में आखरी फैसला करेगी, लेकिन हेर हिटलर तो खुद बहुत कुछ ब्रिटेन के रुख और रवैये पर निर्भर रहेगा। अबतक तो इस रवैये ने उसे बढ़ावा देने और चेको-स्लोवाकिया को दाँत दिखाने और धमकाने में कुछ भी उठा नहीं रखा है। तो, अगर लड़ाई होकर ही रही, तो ब्रिटिश सरकार को कम-से-कम यह महसूस करके सन्तोष या जो कुछ भी हो हो सकेगा कि यह सब बहुत-कुछ उसीके कारण हुआ और ब्रितानिया के लोग, जिन्होंने इस सरकार को सत्ता दी है, इस सच्चाई से जो आराम उठा सकें, उठा लेंगे।

मैंने सोचा तो यह था कि (ब्रिटिश) सरकार जो कुछ करेगी उससे मुझे अचम्भा नहीं होगा—(सिवा एक बात के कि वह अचानक प्रगतिशील बन जाये और शान्ति-स्थापना का प्रयत्न करने लगे)। पर मैंने भूल की थी। चेको-स्लोवाकिया में हुई हाल की घटनाओं और जिन तरीक़ों से सरकार ने—खुद या अपने बीच-बचाव करनेवालों के जरिये—जो हर मौके पर चेक सरकार को सताया और धमकाया है उसपर मेरा मन बिगड़ने लगा है और मुझे हैरानी हुई है कि कोई भी अंग्रेज जिसमें उदारता की जरा-सी भावना या सुजनता हो, इसे कैसे बर्दाश्त कर सका?

हाल ही में मैंने थोड़ा समय चेको-स्लोवाकिया में बिताया था। वहाँ मैं बहुतेरे चेक और जर्मन लोगों से मिला। मैं लौटा तो भयंकर खतरे और बेमिसाल कष्टों में भी शान्त और प्रसन्नचित्त रहते हुए

शान्ति बनाये रखने की खातिर सब-कुछ करने के लिए उत्सुक और अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिए दृढ़ निश्चयवाले जनतन्त्रवादी जर्मनों और चेकों के प्रशंसनीय स्वभाव के लिए प्रशंसा के भावों से भरा हुआ लौटा। जैसा कि घटनाओं से ज़ाहिर होगया है, अल्पसंख्यकों की हरेक मांग को पूरा करने और शांति बनाये रखने की खातिर वे लोग असाधारण हदतक जाने को तैयार हैं। लेकिन हर कोई जानता है कि जो सवाल दरपेश है वह कोई अल्पमत का सवाल नहीं है। अगर अल्पसंख्यकों के अधिकारों के प्रेम ने लोगों को पिघला दिया होता तो हम यही बात इटली में अल्पसंख्यक जर्मनों या पोलैण्ड के अल्पसंख्यकों के बारे में क्यों न सुनते ? सवाल है सत्ताधारी राष्ट्रों की राजनीति का और नात्सियों की चेक-सोवियट मित्रता को तोड़ने का, मध्य यूरोप के एक जनतंत्रीय 'राष्ट्र' को खत्म कर देने से रूमानिया के तेल के क्षेत्रों और गेहूँ के खेतों तक पहुँचने और इस तरह यूरोप पर अपना कब्ज़ा जमाने का। ब्रिटिश नीति ने इसे बढ़ावा दिया है और उस जनतंत्रीय राज्य को कमज़ोर करने की कोशिश की है।

किसी भी दशा में हम हिन्दुस्तानवाले न फ़ासिज़्म चाहते हैं न साम्राज्यवाद। और हम आज हमेशा से ज़्यादा इस बात को समझ गये हैं कि ये दोनों चीज़ें निकट सम्बन्धी हैं और विश्व-शांति और स्वतन्त्रता के लिए खतरनाक हैं। हिन्दुस्तान ब्रिटेन की विदेशी नीति का विरोध करता है और उसमें हिस्सा लेना नहीं चाहता और हम अपनी ताक़त लगाकर प्रतिक्रिया के इस खम्भे से हमें बांधनेवाले बन्धनों को तोड़ देने की कोशिश करेंगे। ब्रिटिश सरकार ने पूर्ण स्वाधीनता के लिए यह एक और लाजवाब दलील हमें दे दी।

हमारी पूरी सहानुभूति चेको-स्लोवाकिया से है। अगर लड़ाई

छिड़ी तो ब्रिटिश जनता अपनी फ़ासिज़म-भक्त सरकार के होते हुए भी उसमें घसीटी जाये बिना न रहेगी। लेकिन तब भी यह सरकार जिसकी फासिस्ट और नात्सी राष्ट्रों के प्रति सहानुभूति है जनतन्त्र और स्वतन्त्रता के उद्देश्य को कैसे आगे बढ़ायेगी? जबतक यह सरकार कायम रहेगी, तबतक फासिज़म हमेशा दरवाज़े पर डटा रहेगा।

हिन्दुस्तान की जनता लड़ाई के सम्बन्ध में किसी भी विदेशी निर्णय को मानना नहीं चाहती। केवल वही फैसला कर सकती है और निश्चय है कि उस ब्रिटिश सरकार के हुक्म को जिसमें उसे बिल्कुल भरोसा नहीं है वह नहीं मानेगी। हिन्दुस्तान अपना सारा-का-सारा वज़न बड़ी खुशी-खुशी जनतन्त्र और स्वतन्त्रता की ओर डालेगा, लेकिन हम ये शब्द बीस या इससे भी ज्यादा बरसों से सुनते आ रहे हैं। केवल स्वतन्त्र और जनतन्त्रात्मक देश ही दूसरी जगह स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र को मदद पहुँचा सकते हैं। अगर ब्रिटेन जनतन्त्र के पक्ष में है तो उसका पहला काम है हिन्दुस्तान से साम्राज्य को समेट लेना। हिन्दुस्तान की निगाहों में घटनाओं का क्रम यह है और इसी क्रम पर हिन्दुस्तान की जनता अटल रहेगी।[१]

---

१. २७, सेंट जेम्स' स्ट्रीट, लन्दन से ८ सितम्बर, १९३८ को मैञ्चेस्टर गार्डियन' के सम्पादक के नाम लिखा गया पत्र।

: ४ :

म्यूनिक-संकट, १६३८

जैनेवा की झील—लेक लीमन—कितनी शान्त और सुन्दर दिखाई देती है ! सैर करनेवालों और दर्शकों को लिये हुए स्टीमर लोजान की तरफ़ धुआँ उड़ाते हुए जा रहे हैं। पानी की एक भीमकाय धारा झील से निकलती जान पड़ती है और ऊँची उठकर आसमान में चली जाती है। पीछे की ओर माउण्ट सेलीव है जो जैनेवा नगर के ऊपर उठा हुआ है और उससे भी पीछे माउण्ट व्लैंक की बर्फीली चोटियाँ उठी हुई हैं। घाट के किनारे-किनारे होटलों की कतारें हैं। जिनपर कई राष्ट्रों के झंडे हवा में फड़फड़ाते हुए उड़ रहे हैं। बिजली से चलनेवाली बड़ी-बड़ी बसें सैर करनेवालों से लदी हुई सड़कों पर ज़ोर-शोर से दौड़ती चली जा रही हैं।

आगे बढ़ने पर राष्ट्र-संघ का पुराना घर 'पैलेज़ विल्सन' है। उससे थोड़े आगे अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर कार्यालय की ठोस इमारत है ! और उससे भी आगे चलकर भय उपजानेवाली शान-शौकत के साथ संघ का बिल्कुल नया विशालकाय भवन खड़ा है।

लेकिन झील की सुन्दरता और शान्ति और शहर की तरफ़ ध्यान जाता ही कहाँ है। क्योंकि सबके मन को तो एक ही विचार घेरे हुए है। चेकोस्लोवाकिया क्या कहता है ? लन्दन में क्या हो रहा है ? और पेरिस में, प्रेग में, न्यूयार्क में ? लोग एक दूसरे से ताज़ा से ताज़ा खबरें पूछते हैं। झूठी अफ़वाहें खूब उड़ती हैं और मनमाने अन्दाज़ लगाये जाते हैं। सबके ऊपर पस्तहिम्मती छायी हुई है। राष्ट्र-संघ (लीग-

दूसरा तार। ब्रिटिश लेवर-आन्दोलन ने चेम्बरलेन की नीति की निन्दा की है और कल कार्रवाई करने की एक सर्वमान्य योजना बनाने के लिए सी. जी. टी. (फ्रेंच-लेवर-कन्फ़ेडरेशन) की वैठक हो रही है। क्या कहने !

प्रेग की खबर। कैबिनेट की वैठक अब भी चल रही है। रातभर चलती रही। अभी तक कोई फैसला नहीं हो पाया।

वर्लिन का तार। सरहद के क़रीब जर्मनों और चैकों के बीच मुठ-भेड़ हो गयी। दूसरी खवर, जर्मनों की पलटनें चैको-स्लोवाकिया की सरहद पर इकट्ठी हो रही हैं।

लीग के एक अंग्रेज़ डेलीगेट अपनी सरकार की नीति को ठीक साबित करने की कोशिश कर रहे हैं। यह वड़ी मुसीवत और तकलीफ़-देह बात है। लेकिन करते क्या ? दूसरा कोई चारा नहीं। हिटलर चेको-स्लोवाकिया में क़दम रखने ही वाला था। उसकी हवाई फ़ौज प्रेग पर वमवारी करने के लिए तैयार थी। कुछ-न-कुछ तो होना ही चाहिए था और चेम्बरलेन ने उसे वहादुरी के साथ किया। यह सच है कि इससे जनतन्त्र और लीग के कल-पुर्ज़े विगड़ गये और चैकों के साथ दग़ा हुई; लेकिन कम-से-कम शान्ति तो कायम रख ही ली गयी। लेकिन कवतक ? और शान्ति आखिरकार कायम भी रही ? अगर हिटलर ने लड़ाई की धमकी देकर एक ब्रिटिश उपनिवेश की माँग की, तो क्या होगा ? क्या तव ब्रिटेन नहीं लड़ेगा ? वेशक। इसलिए ब्रिटिश सरकार के लिए जनतन्त्र से, राष्ट्र-संघ के प्रतिज्ञापत्र (लीग कवेंनेन्ट) से, पवित्र प्रतिज्ञाओं से, आश्वासनों से और वहादुर चैको-स्लोवाकिया के नसीव से भी अधिक महत्त्वपूर्ण एक उपनिवेश पर कब्ज़ा होना था।

न्यूयार्क से टेलीफ़ोन। चैकों के साथ जो विश्वासघात हुआ उसक.

विरोध और निन्दा करने के लिए एक बड़ी भारी सभा हुई। अच्छा हुआ। लेकिन अमरीका के लोग सिर्फ एक ऊँची नैतिक सतह से ही विरोध करते हैं। क्या उसके अलावा भी वे कुछ करेंगे?

कोई कहता है किसी देश को आत्महत्या करनी हो तो सबसे अचूक तरीका यह है कि वह इग्लैण्ड और फ्रांस से दोस्ती और संरक्षण की भीख माँगे। ये सरकारें निश्चय ही दगा देंगी और विश्वासघात करेंगी।

रूस के डेलीगेट बड़े कठोर दीखते हैं। चेक बड़े दुखी हैं, क्या करें? स्पेनवाले कहने में कमी नहीं रख रहे हैं। वे कहते हैं—'यह सब हम जानते हैं। इसका हमें तजुर्बा हो चुका है। हम अपनी मजबूत बाजुओं पर निर्भर रहे। हमारी जीत होगी और हम जनतंत्र को बचा लेंगे।"

ताजा खबर क्या है? क्या हो रहा है? अखबारवाले इधर-उधर प्रेग, लन्दन और पेरिस को टेलीफोन करते दौड़ रहे हैं। अफवाहें उड़ रही हैं। कभी तो पस्तहिम्मती छा जाती है और कभी उत्साह फैल जाता है। चेक कभी सर नहीं झुकायेंगे! चेकों ने आत्म-समर्पण कर दिया!! लेकिन, नहीं। बेनेश चलता-पुर्जा आदमी है। वह पकड़ में नहीं आयेगा। अगर चेक सरकार ने आत्मसमर्पण किया भी तो यह मिट जायेगी और उसकी जगह दूसरी सरकार आजायेगी। हिटलर बेनेश का इस्तीफा चाहता है।

आधी रात। बेवेरिया का कॉफ़ी-होटल, राजनीतिज्ञों और पत्रकारों का अड्डा। यहाँ एक विदेशी मन्त्री है, लीग के बहुत से डेलीगेट हैं, सम्पादक और पत्रकार हैं और बहुत से लीग के पिछलग्गुए हैं। बियर और कॉफ़ी उड़ रही है और लगातार बातचीत और बहस चल रही है। उस सबके पीछे तनाव है और सख्त पत्रकार तक हिम्मत हिला रहे हैं।

प्रेग ने क्या तै किया? लन्दन और पेरिस का क्या हुआ? लन्दन

में लोगों की नाराजगी बढ़ रही है। पेरिस में चैम्बर ऑव डिप्टीज की बैठक कल होनेवाली है। शायद फ्रेंच सरकार का पतन हो जाये। एक नये प्रधान-मंत्री का जिक्र हो ही रहा है। लन्दन में पार्लमैण्ट की बैठक चल रही है। लेबर-पार्टी आक्रामक होती जा रही है। हर जगह पारा चढ़ रहा है, हालाँकि अखबार आराम से पैर बढ़ाते जाते हैं।

टेलीफोन की घंटियाँ बराबर हो रही हैं। हॅलो प्रेग ! हॅलो पेरिस ! ताजा खबर क्या है ? युद्ध या शान्ति ?

प्रेग की खबर—सरकार ने लोकार्नो-सन्धि की दुहाई दी है। उसकी शर्तों के अनुसार उसने पंचों की मध्यस्थता की माँग की है। जर्मनी ने उसे स्वीकार किया; बाद में हिटलर ने उसे पक्का कर दिया।

शाबाश ! होशियारी का काम किया। बेनेश मूर्ख नहीं है। उसने ब्रिटिश और फ्रेंच सरकारों को परेशानी में डाल दिया है। इसपर वे क्या कहेंगे ? हिटलर क्या कहेगा ? स्वीडन का एक डेलीगेट कहता है कि लोकार्नो में जो मध्यस्थ नियत किये गये थे, उनमें वह भी था।

चेम्बरलेन फिर परसों हिटलर से मिलने जायेंगे। हवाई जहाज से खबरें ले जाने का काम वह बड़ी अच्छी तरह से कर रहे हैं। शायद उनकी छोटी-सी चाय-पार्टी आखिरकार खत्म न होगी।

हॅलो प्रेग ! हॅलो पेरिस ! हॅलो लन्दन ! क्या हुआ ? शान्ति हुई या लड़ाई ? बस २१ सितम्बर १९३८ तक इतना ही। शान्ति हुई या लड़ाई ?

२१ सितम्बर, १९३८

: ५ :

लन्दन की असमञ्जस

पिछले कुछेक हफ्तों में हुई रहस्यभरी घटनाओं के बाद इधर-से-उधर घूम लेने और अपीलों व आखिरी चेतावनियों और लड़ाई के बढ़ते हुए खतरे के आजाने पर आखिरकार मि० नेविल चेम्बरलेन आम घोषणा करने चले। वह रेडियो पर बोले और मैंने भी उनकी आकाशवाणी सुनी। वह मुख्तसर थी; मुश्किल से उसमें आठ मिनट लगे होंगे। जो कुछ उन्होंने कहा, उसमें कुछ भी नयी चीज नहीं थी। उनका कथन बाल्डविन की तरह भावनाओं को उकसानेवाला था, मगर उसमें बाल्डविन की-सी झलक और उनके व्यक्तित्व की छाप नहीं थी। इसलिए उसका मुझपर कोई असर नहीं पड़ा। न तो उसमें उन खास मसलों का जिक्र था जो दरपेश थे, न उस नंगी तलवार का जिक्र था जो दुनिया के आगे चमक-चमककर मानव-जाति को त्रस्त कर रही थी और न उस हिंसात्मक तरीके की चर्चा थी जो राष्ट्रों का कायदा बनता जा रहा था और जिसको खुद मि० चेम्बरलेन अपनी कार्रवाइयों से उकसाते आ रहे थे। उस स्वाभिमानी और बहादुर राष्ट्र का भी उसमें मुश्किल से ही उल्लेख था, जिसको इर्द-गिर्द घेरे हुए शिकारी जानवरों की खून की प्यास को बुझाने के लिए कुर्बान किया जानेवाला था, और जिक्र किया भी गया तो अपमानजनक तरीके से। कहा गया कि वह एक दूरदराज का देश है, जिसके निवासियों के बारे में हम कुछ नहीं जानते। उन्हीं दूर बसनेवाले लोगों की शान का, हिम्मत का, शान्तिप्रियता का, स्वतन्त्रता-प्रेम का, उनके शान्त साहस का और ज्वलन्त बलिदानों का नाम तक

नहीं लिया गया कि जिनपर उनके दोस्तों ने ज्यादतियाँ कीं और दग़ा-बाज़ी करके उन्हें छोड़ दिया था। नात्सी क्षेत्रों से लगातार जो धमकियाँ मिल रही थीं, अपमान किया जा रहा था और सरासर झूठ बोला जा रहा था, उसके निस्बत भी कुछ नहीं कहा गया था, सिर्फ खेद प्रकट करने के रूप में हेर हिटलर की 'नावाजिब कार्रवाई' का थोड़ा-सा ज़िक्र था।

मैं उदास-सा हो गया और दिल अन्दर-ही-अन्दर भारी हो आया। क्या हमेशा अच्छों के साथ यही सलूक होता रहेगा, अगर उनके पास बड़ी फौजें न हुईं? क्या हमेशा बुराई की ही जीत होती रहेगी?

मैंने सोचा, शायद मि० चेम्बरलेन अगले रोज पार्लमेण्ट में अपने मज़मून के साथ ज्यादा इन्साफ कर सकें। शायद आखिरकार वह जिस बात को महत्त्व मिलना चाहिए उसे देंगे और हेर हिटलर का डर छोड़कर सच्ची बात कहेंगे। संकट का मौक़ा नज़दीक आ रहा था। सच बात जाहिर होने का वक्त आ गया था। पर साथ ही मुझे इसपर यक़ीन नहीं हो रहा था, क्योंकि मेरे आगे तो चेम्बरलेन की पिछली बातें थीं, जोकि उनके फ़ासिज़्म और उसकी कार्रवाइयों की हिमायत करने का सबूत थीं।

इसी समय पार्कों और खुली जगहों में खाइयों की खुदाई का काम चल रहा था, विमानभेदी तोपें चढ़ायी जा रही थीं। ह० ह० हि०—हवाई हमलों से हिफ़ाजत—के सामान हरेक छिपने की जगह से हमारी ओर घूर-घूरकर देख रहे थे और न जाने कितने कामचलाऊ गोदामों से मर्द और औरतें गैस मास्क (घातक गैस से बचाव के लिए लगाये जानेवाले खास तरह के चेहरे) लगा-लगाकर देखते थे। ये गैस मास्क बड़े बदसूरत और हिंसा के इस बर्बर युग के सच्चे प्रतीक थे।

लोग अपने काम-काज पर आते-जाते, लेकिन उनके चेहरं
और खौफ छाया दिखाई देता। कितने ही घरों में उदा..
थी, क्योंकि उनके प्रियजनों को आगे आनेवाली लड़ाई के लिए तैयार
हो जाने का हुक्म मिला था।

घंटे-पर-घंटे धीरे-धीरे खिसकते गये और वह भयंकर घड़ी नजदीक आती गयी कि जब एक आदमी के पागलपन से भरे इशारे पर हमला न करना चाहनेवाले, लाखों दयालु और सदाशय व्यक्ति एक दूसरे पर झपट पड़ेंगे और मारकाट और सर्वनाश मचा देंगे। तोपें गरजने लगेंगी, आग उगलने लगेंगी और बमवर्षक हवाई जहाजों के घर्राटे से आसमान गूंज उठेगा। सकट की घड़ी! क्या वह कल होगी या परसों?

आज पुनः सुन पड़ा यही स्वर जिससे जग ने त्रास सहे,
"अब तो नग्न और अनियंत्रित तलवारों का राज रहे।"

लोग मजबूर कर रहे हैं कि मैं भी एक गैस मास्क ले लूं। इसके ख़याल से ही मुझे तो हँसी आती है। *क्या मैं सूंड लगाये जानवर की-सी* मूरत बनाये इधर-उधर घूमता फिरूं? मैं खतरे और खौफ से घबराता नहीं हूँ और बार्सीलोना में तो कुछ दिन रहकर मुझे हवाई हमलों का स्वाद मिल चुका था। मैं इस बात पर भरोसा नहीं करता कि ये काम की चीजें हैं, क्योंकि अगर खतरा आयेगा ही तो चेहरा क्या हिफाजत कर सकेगा? शायद उसका खास मकसद यह हो कि पहननेवाले को इतमीनान रहे और आम जनता में हौसला कायम रहे। जब हद दर्जे का खतरा सामने होगा तो कोई नहीं जानता कि वह कैसे उसका आमने-सामने मुकाबला करेगा? और मेरा खयाल है कि मेरा सर आसानी से जुदा न होगा।

तो भी गैस-मास्क को नजदीक से देखने का कौतूहल मुझे हुआ

और मैंने ह० ह० हि० के एक गोदाम पर जाने का निश्चय किया। चेहरा चढ़ाया गया और एक मैं ले भी आया।

(अमरीका के) राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने हेर हिटलर के पास एक सन्देश भेजा है। वह एक गौरवपूर्ण मार्मिक अपील है जिसमें मसले के खास मुद्दे पर जोर दिया गया है। जो कुछ वह कहते हैं और जिस तरह कहते हैं उसमें और मि० चेम्बरलेन के वक्तव्यों में कितना बड़ा फर्क है ! प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट का एक-एक छपा हुआ शब्द तक जाहिर करता है कि उसके पीछे कोई इंसान है। हिटलर के लिए दलील और अंजाम का खौफ़ कोई मानी नहीं रखता। क्या हिटलर निरा पागल है कि वह अपनी उस अद्‌भुत कूटनीतिपूर्ण विजय को जो उसे निस्सन्देह हिंसा की धमकी देकर मिली है, लड़ाई में शामिल होकर खतरे में डाल दे ? क्या वह नहीं जानता कि विश्वव्यापी युद्ध में पड़ने पर उसकी किस्मत में हार और बरबादी ही आयेगी और उसीके लोगों में से अधिकांश उसके खिलाफ़ उठ खड़े होंगे या शायद उसने मि० चेम्बरलेन और मो० दलैदिये को ठीक-ठीक पहचान लिया है और वे कहाँतक जा सकते हैं, इसका उसे ठीक-ठीक इल्म हो गया है।

पार्लमेण्ट-भवन को जानेवाली सड़कों पर भीड़ ही भीड़ है, और वातावरण में उत्तेजना है। भवन के भीतर की जगह रुकी हुई है और दर्शकों की गैलरियाँ खचाखच भरी हुई हैं। लार्ड लोग अपने पूरे जोर-शोर के साथ हाजिर हैं। वे बिल्कुल बुर्जुआओं की भीड़ ही जान पड़ते हैं और नीची श्रेणी के इंसानों से उनमें कोई फर्क नहीं नजर आता। ड्यूक आफ़ केण्ट की बगल में लार्ड वाल्डविन विराजमान हैं। उनकी दूसरी बगल में लार्ड हैलीफैक्स और केण्टरबरी के आर्चबिशप हैं, राज-नीतिज्ञों की गैलरी में भीड़ है। रूस का उप-राजदूत वहाँ है और चेको-

स्लोवाकिया के मन्त्री मो० मसारिक भी, जो राष्ट्र का निर्माण करनेवाले मशहूर पिता के बेटे हैं, वहीं हैं। क्या उसी शानदार इमारत को, जिसे पिता ने निर्माण किया था, बेटा बरबाद होते देखेगा ?

प्रधान-मन्त्री ने शुरुआत की। उनकी शक्ल प्रभावशाली नहीं है। उनके चेहरे पर बड़प्पन नहीं है। वह बहुत-कुछ एक व्यापारी जैसे जान पड़ते हैं। उनका भाषण ठीक होता है। घण्टे भर उन्होंने भाषण दिया। वह एक तरह का सफाचट वर्णन था, जिसमें जहाँ-तहाँ व्यक्तिगत बातें थीं और ऐसे अलफ़ाज थे जिनसे दबी हुई उत्तेजना झलकी पड़ती थी। न जाने क्योंकर मुझे लगा (या मेरा खयाल हो) कि यह शख्स इतना बड़ा नहीं है कि उस काम के लायक हो जो उसने हाथ में लिया है और उसके शब्दों और तरीक़ों से भी यही भावना बारबार जाहिर हो जाती है। अपनी व्यक्तिगत दस्तन्दाजी पर, हिटलर के साथ हुई उनकी बातचीत पर और दुनिया की हलचलों में वह जो हिस्सा ले रहे हैं, उसपर वह उत्तेजित हो जाते हैं, उन्हें नाज़ हो आता है। ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्री होते हुए भी वह ऐसे बड़े-बड़े कामों के अभ्यस्त नहीं हैं और खतरे के कामों का नशा उन्हें चढ़ा रहता है। पामर्स्टन होता, ग्लैडस्टन होता या डिजरैली होता तो मौका न चूकता। कैम्पबेल बैनरमैन होता तो जो कुछ कहता उसमें आग भर देता। बाल्डविन सभाभवन को पकड़े रखता और चर्चिल भी दूसरे ढंग से यही करता, एस्क्विथ भी मौक़े के लायक शान के साथ बोलता। लेकिन मि० चेम्बरलेन ने जो कुछ कहा उसमें न तो कोई हार्दिकता थी और न कोई बुद्धि की गहराई। यह तो बिलकुल साफ़ जाहिर हो गया कि वह क़िस्मतवाले आदमी नहीं हैं।

मेरा खयाल उनकी हिटलर के साथ हुई मुलाक़ात की तरफ़ गया और मैंने सोचा कि वे हिटलर से दब-से गये होंगे, उसकी बार-बार की

गयी आखिरी चेतावनियों से ही नहीं, वल्कि उसके जोरदार लगनवाले और थोड़े-बहुत सनकी व्यक्तित्व से भी, क्योंकि हिटलर में चाहे जितना बुरा इरादा हो, फिर भी उसमें कुछ-न-कुछ तात्विकता है और मि० चेम्बरलेन तो धरती के हैं, पार्थिव। फिर भी मि० चेम्बरलेन चाहते तो उस तात्त्विक शक्ति का मुक़ावला दूसरी ताक़त से करते, जो खुद तात्त्विक होते हुए भी कहीं ज्यादा जवरदस्त थी और वह ताक़त थी संगठित प्रजातन्त्र या लाखों-करोड़ों व्यक्तियों की इच्छा की। उनके पास न वह ताक़त थी और न उसे हासिल करने की कोशिश थी। वह तो अपने तंग दायरे में ही चक्कर काटते रहे और मर्यादित शब्दों में ही सोचते और लाखों को पिघला देनेवाली प्रेरणा को वढ़ावा देने अथवा उसे व्यक्त करने की कभी कोशिश नहीं करते थे। वैसी परिस्थिति में यह तो लाजिमी ही था कि इरादों में टक्कर होने पर उनको हिटलर के आगे झुकना पड़ता।

लेकिन क्या इरादों की टक्कर थी भी? मि० चेम्बरलेन ने जो कुछ कहा उससे ऐसी किसी टक्कर का इशारा तक नहीं मिलता था क्योंकि उनके कामों में कोई टक्कर नहीं थी। वह हिटलर के पास हमदर्दी और वहुत-सी स्वीकृतियाँ और समझौते लेकर पहुँचे। ऊँचे सिद्धान्तों की, आजादी की, प्रजातन्त्र की, मानवीय अधिकारों और न्याय की अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून और नीतिमत्ता की चर्चा नहीं हुई और तलवार के न्याय की वर्वरता का, उकता देनेवाले झूठ का, नात्सीवाद के परम पुजारियों की अमानुषता का कुछ जिक्र तक नहीं हुआ। जर्मनी में अल्पसंख्यकों के साथ हुए उन अत्याचारों की कोई चर्चा नहीं हुई जिनकी दुनिया में मिसाल नहीं है; और न पैसा ऐंठने की जवरदस्तियों और धमकियों के आगे सर न झुकाने की कोई वात ही छिड़ी। सिद्धांतों पर शायद ही

कोई झगडा हुआ हो, सिर्फ चन्द ब्योरे की बातों की चर्चा हुई। यह साफ है कि अगर मि० चेम्बरलेन की इग्लैण्ड-सम्बन्धी परिस्थिति को छोड़ दें तो उनका दृष्टिकोण हिटलर से कोई ज्यादा भिन्न नहीं था।

अपने उस लम्बे भाषण में उन्होने हिटलर की तारीफ़ में, उसकी ईमानदारी और उसकी सचाई में यकीन होने और यूरोप में और ज्यादा इलाके न चाहने के उसके वायदे के बारे में बहुत-कुछ कह डाला। मगर राष्ट्रपति रूज़वेल्ट और उनके महत्त्वपूर्ण सन्देशो का जिक्र तक नही किया। रूस का भी कोई जिक्र नही हुआ, हालाँकि रूस का चेको-स्लोवाकिया की किस्मत से इतना गहरा सम्बन्ध है।

और खुद चेको-स्लोवाकिया की निस्वत भी क्या ? हाँ, उसका जिक्र जरूर था, मगर उसके निवासियों की बेमिसाल कुरबानियों के बारे मे, असह्य उत्तेजना मिलने पर भी उनके आश्चर्यजनक सयम तथा गौरव के सम्बन्ध में, और प्रजातन्त्र का झण्डा ऊँचा रखने की निस्वत एक लफ्ज़ तक नही कहा गया। इसे छोड देना बडी आश्चर्यजनक और महत्त्वपूर्ण भूल थी, जो जानबूझकर की गयी थी।

मि० चेम्बरलेन के भाषण पर श्रोतागण स्तब्ध थे—वक्ता की दलीलों की उत्कृष्टता या उसके व्यक्तित्व की वजह से नहीं, बल्कि विषय के अत्यन्त महत्त्व की वजह से। उनके भाषण का अन्त नाटकीय ढग से हुआ। कल वह सिन्योर मुसोलिनी और मो० दलँदिये के साथ म्यूनिक जाने-वाले हैं और बड़ी कृपा करते हुए हिटलर ने एक काबिलेग़ौर रिआयत की है कि वह २४ घटे तक लड़ाई की तैयारी का हुक्म न देगा।

इस नाटकीय ढग से और इससे होनेवाली इस उम्मीद से कि शायद लड़ाई टल जाये, मि० चेम्बरलेन ने पार्लमेण्ट-भवन को उत्तेजित करने में कामयाबी पायी। पिछले चन्द दिनों का बोझ हल्का हुआ और

सबके चेहरों पर राहत नजर आने लगी।

यह अच्छा हुआ कि युद्ध टल गया, चाहे अब भी वह टला एक या दो दिन के ही लिए हो। उस युद्ध का विचार करना तक भयानक था, तो उससे मिलनेवाली थोड़ी-सी भी राहत सबको अच्छी क्यों न लगती?

और फिर, और फिर, चेको-स्लोवाकिया का क्या हुआ? प्रजातन्त्र और आज़ादी का क्या हुआ? क्या अब कोई दूसरी दगाबाजी करके उस राष्ट्र की पूरी हत्या होनेवाली थी? म्यूनिक में जो यह अजीब चौकड़ी जमा हुई, वह क्या फ़ासिस्ट-साम्राज्यवादी चार राष्ट्रों की संधि के उस नाटक की प्रस्तावना थी जिसमें रूस को अलग कर दिया गया, स्पेन को ख़त्म कर दिया गया और तमाम प्रगतिशील तत्त्वों को कुचल दिया गया? मि० चेम्बरलेन के पिछले इतिहास को देखते हुए लाजमी तौर पर यही ख़याल करना पड़ता है।

तो कल हिटलर और मुसोलिनी से चेम्बरलेन साहब मिलेंगे। उनके लिए तो एक ही काफ़ी था। दो-दो जबर्दस्त मिल जायेंगे तो न जाने उनके नसीब में क्या बदा होगा! सम्भव है, मि० चेम्बरलेन और मो० दलैंदिये उनके शब्द-जाल में फँसकर जो कुछ हिटलर कहेगा सब मान लेंगे और फिर अपनी दूसरी मेहरबानी के बतौर हिटलर चन्द दिनों या हफ्तों के वास्ते जंग को मुल्तवी करने पर राजी हो जायेगा। वह सचमुच एक महान् विजय होगी! और तब हिटलर का शान्तिदूत के रूप में अभिनन्दन होना चाहिए। शांति का नोबल पुरस्कार शायद अब भी उसको दिया जा सके, हालाँकि मि० चेम्बरलेन भी जोर-शोर से उसे जीतने की कोशिश करेंगे।

२८ सितम्बर, १९३८

: ६ :

हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड

ढाई साल पहले मैं इंग्लेण्ड पहुँचा था और वहाँ की विभिन्न पार्टियों और दलों के बहुत-से व्यक्तियों से मिला था। उन्होंने भारत की समस्या में शिष्टतापूर्ण दिलचस्पी जाहिर की थी और हम जिस मकसद के लिए लड रहे हैं उससे सहानुभूति दिखायी थी। मैंने उस शिष्टता की कद्र की थी और उस हमदर्दी का स्वागत किया था। लेकिन वह सब होते हुए भी मैंने दोनों में से किसी को भी बड़ा महत्त्व नहीं दिया क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता था कि वहाँ के आम लोगों में तो हिन्दुस्तान के प्रति उदासीनता और रुखाई है ही, उन लोगों में भी है कि जिनका काम ऐसी समस्याओं पर विचार करना है।

मैंने देखा कि वहाँ के लोगों की आम मशा हिन्दुस्तान के बारे में कुछ न सोचने और मामले को टालने की है। वह समस्या काफी उलझी हुई थी और मुसीबत से भरी दुनिया में उनकी एक मुसीबत और क्यों बढा दी जाये? भारतीय शासन-विधान मजूर हुआ ही था और चूँकि वह असन्तोषजनक था, इसलिए कम-से-कम उससे एक फायदा तो हुआ। इसने मामले को कुछ वर्षों के लिए मुलतवी कर दिया और उन्हें उसकी बाबत कुछ विचार न करने का एक बहाना मिल गया।

मुझे इससे निराशा नहीं हुई क्योंकि मैंने इससे कोई ज्यादा उम्मीदें नहीं बाँधी थीं और बरसों से हम लोगों ने यह सबक सीखा है कि दूसरों के आसरे कभी न रहें बल्कि अपनी खुद की ताकत बढायें। मैं भारत लौट आया। पर हमारी समस्या दूर नहीं हुई क्योंकि इग्लैण्डवाले उसपर

विचार नहीं कर रहे थे, बल्कि वह बढ़ती ही गयी और साथ-साथ हम भी बढ़ते गये।

इसी बीच, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पहले से ज्यादा चिन्ताजनक हो गयी और हमें यह समझ में आने लगा कि हिन्दुस्तान का मसला इस विश्वव्यापी समस्या का ही एक अंग है और अगर कोई संकट या युद्ध आ पड़ा तो हम हिन्दुस्तान में रहनेवाले उसपर असर डाल सकते हैं। हम लोगों के साथ-साथ दूसरे लोगों को भी यह जाहिर होने लगा है और हिन्दुस्तान की आजादी पाने की जद्दोजहद अन्तर्राष्ट्रीय सतह तक जा पहुँची है।

इंग्लैंड की अपनी इस यात्रा में मुझे फिर अपने नये और पुराने मित्रों से मिलने और बहुतेरी सभाओं में हिन्दुस्तान के विषय में भाषण देने के सुअवसर मिले हैं।

मैंने फिर भी भारत के बारे में एक तरह की उदासीनता और काफी नावाकफियत उनमें पायी और उसका ध्यान स्पेन, चीन और मध्य यूरोप की आवश्यक समस्याओं में लग जाना लाज़मी था। लेकिन तो भी मैंने काफी फ़र्क़ पाया। और देखा कि हिन्दुस्तान के मसलों पर नजर डालने का तरीका भी नया और ज्यादा यथार्थवादी हो गया है। हो सकता है कि यह इस बात के समझने से हुआ हो कि आज हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन की ताकत बहुत बड़ी है, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति बहुत नाजुक है और यह डर पैदा हो गया है कि संकट का मौका आने पर हिन्दुस्तान खतरे को और भी बढ़ा सकता है। शायद इसी गम्भीर परिस्थिति और सिरपर मँडराने वाले संकट की भावना ने ही लोगों को अपनी पुरानी दिमागी लीकों से हटने को और सचाई तथा असलियत के साथ सोच-विचार करने को मजबूर किया था।

क्योंकि असलियत तो यह है कि भारत पूरी स्वतन्त्रता चाहता है और उसे पाने के लिए कमर बांधे हुए है। हमारी भयकर गरीबी की समस्या सुलझायी जाने के लिए चिल्ला रही है और वह समस्या तबतक हल होनेवाली है नहीं, जबतक कि हिन्दुस्तान के निवासी अपने देश का बिना किसी बाहरी दखल के मनचाहा राजनैतिक और आर्थिक भविष्य बना लेने का अधिकार न पालें। दूसरी बात यह भी है कि भारतवासियों की सगठित शक्ति पिछले वर्षों में काफी बढ़ गयी है और किसी भी बाहरी ताकत के लिए उन्हें स्वराज की ओर बढ़ने से अधिक दिनों तक रोक रखना मुश्किल है। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी छिपे तौर पर हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन को बड़ा बल दे रही है।

कट्टर दल भी यह मानता है कि हिन्दुस्तान की परिस्थिति की ठीक-ठीक जाँच का सार यही निकलता है कि हिन्दुस्तान आजादी पाकर रहेगा। दूसरों की सद्भावना से मिले तो बेहतर है, पर ऐसा न हो तब भी वह रुक नहीं सकती। इसीलिए आज करीब-करीब हर शख्स हिन्दुस्तान की आजादी की बात करता है।

इस दृष्टिकोण से देखने पर प्रान्तीय स्वराज और फेडरेशन के प्रश्न इस व्यापक प्रश्न के मुकाबले छोटे पड़ जाते हैं। यह जरूर है कि उनके कारण एक बहुत बड़ा सघर्ष छिड़ सकता है लेकिन खास सवाल तो आजादी का ही है और रहेगा, और हम अपने एक-एक कदम को, अपनी एक-एक नीति को अकेले इसी प्रश्न की कसौटी पर जाँच करके फैसला करेंगे कि क्या वह हमें ताकत देता है और स्वतन्त्रता को हमारी पहुँच के अन्दर ला देता है।

अगर अड़चन डाली गयी, अगर हमपर कोई चीज थोपने की कोशिशें की गयीं, तो हमारी कार्रवाई मुखालफत की होगी। अन्तिम परिणाम

वही होकर रहेगा, क्योंकि उस उद्देश्य को पाने के लिए ऐसी ताकतें काम कर रही हैं जो इन्सान के वस के वाहर हैं। हो सकता है कि वह कार्रवाई मित्रता और सद्भावना के साथ हो और मित्रता और सहयोग की ओर ले जाये अथवा उसके पीछे दुर्भावना और विरोध रहे, जिससे भविष्य अन्धकारमय हो जाये और आपस के स्वस्थ सहयोग में रुकावटें पैदा हो जायें।

मेरा विश्वास है कि इसी सारी वात को समझ लेने की वजह से ही वहाँ के वहुतेरे लोगों के रुख में यह सव तवदीली हुई है। वे जान गये हैं कि गतिशील परिस्थिति में कुछ न करने और उदासीन वने वैठे रहने से कुछ लाभ नहीं होता वल्कि कुछ कर गुजरने की नीति ज्यादा फ़ायदेमन्द होती है।

दुर्भाग्य की वात है कि इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान के पीछे इसी विरोध और संघर्ष का इतिहास है। एक हिन्दुस्तानी इसे आसानी से नहीं भूल सकता। फिर भी आज के युग में—जिसके गर्भ में कुछ छिपा हुआ है—जवकि दुनियाभर में संघर्ष है, फासिस्ट हमले हो रहे हैं और भयंकर लड़ाई के आसार हमेशा वने ही रहते हैं, अगर हम छोटी-छोटी गयी-गुजरी वातों का ख़याल करते और काम करते रहें तो उससे हमको ही खतरा है। अव तो हमको उनके ऊपर उठकर वड़ी व्यापक दृष्टि रखनी चाहिए।

मुझे तो यकीन है कि भविष्य में हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड आपसी भलाई के लिए एक-दूसरे को वरावर मानते हुए आपस में सहयोग कर सकें यह संभव है। लेकिन सल्तनत की छाया में वह सहयोग होना नामुमकिन है। पहले उस सल्तनत को खत्म करना होगा और हिन्दुस्तान को अपनी आज़ादी हासिल करनी होगी, तभी सच्चा सहयोग मुमकिन हो सकेगा।

एक भारतीय राष्ट्रवादी होने के नाते मुझे इग्लैण्ड से कुछ नही कहना है, क्योंकि हम उसकी कल्पना साम्राज्यवाद की ही भाषा में करते है। मै तो वही काम कर सकता हूँ जिससे हमारी अपनी शक्ति बने, बढ़े और हमारा ध्येय प्राप्त करा सके।

लेकिन दुनिया में शांति और स्वतन्त्रता पर ठहरी हुई सुव्यवस्था देखने का परम इच्छुक होने के नाते मुझे इग्लैंण्ड और उसके निवासियों से बहुत कुछ कहना है, क्योंकि मै देख रहा हूँ कि आज की अग्रेज सरकार ऐसी नीति पर चल रही है, जो शान्ति और स्वतन्त्रता दोनों के लिए खतरनाक है।

उस नीति से हिन्दुस्तान और इग्लैण्ड के बीच की खाई बढ़ेगी क्योंकि हम उसके कतई खिलाफ है और उसे आज की दुनिया की एक बुराई समझते है। क्या इस बुनियाद पर हमारे उनके बीच सहयोग हो सकता है ?

एक समाजवादी के नाते मुझे यहाँ के अपने साथियों से और भी ज्यादा कहना है। पिछले दिनो इग्लैण्ड की लेबर पार्टी साम्राज्यवादी मामलों पर खास तौर पर भारत के सम्बन्ध मे भयानक रूप से ढिलमिल रही है। उसकी कारगुजारियां खराब है। लेकिन खतरे के इन दिनों में हममें से कोई भी ढिलमिल होने या दोअर्थी बात करने की हिम्मत नहीं करता। इसलिए यही मौका है कि इग्लैंण्ड की लेबर पार्टी उन सिद्धान्तो पर चले जिनको उसने चलाया है और मुनासिब बात भी यही है कि यह कार्रवाई हो जानी चाहिए।

लेबर पार्टी को फ़ासिज्म-विरोधी होने के साथ-ही-साथ साम्राज्य-वाद-विरोधी भी होना चाहिए। उसे सल्तनत को खत्म करने का हामी होना चाहिए उसे साफ शब्दों में हिन्दुस्तान की आजादी की और उसको

जनता के इस अधिकार की घोषणा कर देनी चाहिए कि वह विधान-पंचायत द्वारा अपना विधान खुद बनाले और इसकी पूर्ति में जो कुछ उससे बन सके उसे करने के लिए उसे तैयार रहना चाहिए।

हमें फेडरेशन के बारे में कोई ज्यादा अफ़सोस नहीं है क्योंकि हम तो चाहते हैं सारा-का-सारा भारतीय शासन-विधान हटा ही दिया जाये और उसकी जगह हमारा अपना तैयार किया विधान आ जाये।

छोटे-छोटे उपायों का वक्त अब नहीं रहा। अब तो दुनिया संकट की ओर दौड़ रही है। अगर दुनिया की प्रगतिशील ताक़तें साथ मिल-कर कोशिश करें, तो हम अब भी उस संकट को टाल सकते हैं। इस साझे में हिन्दुस्तान भी अपना हिस्सा ले सकता है, लेकिन सिर्फ़ स्वतन्त्र होकर ही। इंग्लैण्ड की लेबर पार्टी अगर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होगी तो भविष्य में इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान के दर्मियान मित्रता और सहयोग की बुनियाद पड़ेगी।

यह देखकर तसल्ली होती है ब्रिटिश लेबर पार्टी के नेता इस दिशा में सोच रहे हैं। और यह जानकर और भी ज्यादा प्रसन्नता होती है कि मजदूर आन्दोलन का पूरा दल-बल बड़े उत्साह के साथ आज़ादी की इस पुकार को सुन रहा है।

दुनिया आज तेजी से दौड़ रही है और कौन जानता है कि कल क्या हो ? हिन्दुस्तान में भी रद्दोबदल हो रही है और वह आगे बढ़ रहा है और हो सकता है कि हमारी सारी योजनाएं जल्दी ही पुरानी पड़ जायें लेकिन हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड की प्रगतिशील शक्तियों में सद्भावना होने से एक ऐसे भावी सहयोग की नींव पड़ सकती है जिससे दोनों का भला हो और विश्व-शान्ति और स्वतन्त्रता को मदद पहुँचे।

२८ अक्टूबर, १९३८

: ७ :

रूस की खुशामद

बीस साल पहले तरुण सोवियट-प्रजातन्त्र पर सब तरफ से इंग्लैण्ड, अमरीका, फ्रांस और जापान जैसे ताकतवर देश टूट पड़े थे। खुद उसी के इलाके में प्रति-क्रान्ति उठ खड़ी हुई थी और दूर-दूर से उसको समर्थन मिला था। रूस के पास फौज नहीं थी, पैसा नहीं था, लड़ाई के साधन या उद्योग-धन्धे नहीं थे, और लड़ाई, हार और क्रान्ति के बाद निहायत बदइन्तज़ामी फैल गयी थी, जिसके कारण वह बरबाद होने को था और उसके दुश्मन ताक रहे थे कि कब वे अन्त में उसपर हावी हो जायें। यहाँतक कि जो उसके साथी थे वे भी उसका फिर से उठना नामुमकिन-सा मानते थे और सोच बैठे थे कि अब तो उसे मिटना ही है। लेकिन एक महान् पुरुष के अदम्य संकल्प और प्रतिभा ने ऐसी जिन्दगी और नयी उम्मीद पैदा की कि रूस ने इन सब भयंकर मुसीबतों को पार किया और वह जिन्दा रहा।

लेकिन फिर भी वे लोग उसे नफरत और हिकारत की निगाह से देखते रहे, गोया वह राष्ट्रों के बीच में कोई अछूत—अन्त्यज—हो कि जो उच्च वर्णों को चुनौती देने चला हो। उन्होंने उसकी कोई पूछ नहीं की, उससे कोई वास्ता नहीं रखा, उसकी बेइज्जती की और उसके रास्ते में हर तरह की मुसीबतें पैदा कीं। मगर वह तो इस तानेजनी को सुना-अनसुना करता हुआ जीता रहा और उस नयी जिन्दगी को लाने में लगा रहा जिससे वह इतना बड़ा हिम्मत का काम करने के लिए तैयार हुआ था। उसके रास्ते में परीक्षा और संकट की घड़ियाँ आयीं और

अक्सर उसने ग़लतियाँ कीं और ग़लतियों के लिए नुक़सान उठाया। मगर फिर भी वह एक प्रकार के विश्वास और ताक़त को लेकर अपने सपनों की दुनिया बनाता हुआ बढ़ता ही चला गया।

शायद सपने तो क़तई सच्चे न हो सके, क्योंकि असलियत मन में बनी हुई तसवीर से जुदा थी। फिर भी एक दुनिया बनी, एक बहादुराना नयी दुनिया, जिसमें एक जान थी, उम्मीद थी, सुरक्षितता थी और उन लाखों इन्सानों के लिए, जो उसके लम्बे-चौड़े इलाकों में बसे हुए थे, खुशहाली का जमाना लानेवाली थी। बिजली की रफ्तार से उद्योग-धन्धे फैले, शहर बस गये, खेती ने उसकी शक्ल को ही बदल डाला और कल के गये-गुजरे तरीक़ों की जगह सामूहिक खेती होने लगी। साक्षरता का प्रसार होने लगा, शिक्षा और संस्कृति की उन्नति हुई, विज्ञानों को अपनाया गया और योजनाभरे वैज्ञानिक तरीक़ों का उपयोग राष्ट्र के नवनिर्माण में किया गया।

दुनिया को दिलचस्पी हुई। अरे, जबकि तमाम दुनिया कुचली जा रही है, एक तरह की आर्थिक मन्दी से जिसका गला घुट रहा है और हर जगह बेकारी बढ़ रही है, तब यह तेजी से तरक़्क़ी होने और बेकारी कम होने की अजीब चीज़ कैसी! राजनेता और चान्सलरों ने इस ग़ैरमामूली बर्ताव को पसन्द नहीं किया। उनके अपने लोगों के आगे यह बुरी मिसाल थी। वे सोवियट को मुसीबत में डालने के जाल रचने लगे; वे छेड़खानी के बर्ताव करके उसे भड़काने लगे; वे उसे लड़ाई में फाँसने लगे। मगर उसने इन अपमानों की परवा न की और लड़ाई में पड़ने से इनकार किया। अपने राष्ट्र के नवनिर्माण का ज़बर्दस्त कार्यक्रम लेकर उसने जान-बूझकर दृढ़ता के साथ वैदेशिक मामलों में शांति की नीति कायम रखी।

इसी बीच, उसने अपनी सेना और हवाई ताक़त भी बढ़ा ली और ज्योंही ये तैयार हो चुकीं, उन लोगों में भी जो उसे नापसन्द करते थे उसके लिए इज्ज़त हो गयी। लेकिन इज्ज़त के साथ-साथ डर भी उन लोगों में पैदा हुआ और वे फिर चालें चलकर उसे अकेला छोड़ देने और नयी फ़ासिस्ट ताकतों को उसके खिलाफ उभाड़ने की कोशिशें करने लगे। यूरोप के प्रजातन्त्र के हिमायतियों ने नात्सियों और फ़ासिस्टों से मुहब्बत की, उनके हमलों को बर्दाश्त किया, उनकी हैवानियत को और असभ्यतापूर्ण उद्दण्डता को दरगुज़र किया, जो उनके आसरे थे उन्हें धोखा दिया, और अपने साथियों और दोस्तों से दग़ाबाज़ी की—और यह सिर्फ़ इस उम्मीद से कि सोवियट को कुचलकर नात्सियों से उसपर हमला कराया जाये। उन लोगों ने म्यूनिक के समझौते में उसे पूछा ही नहीं—हालांकि वह फ़ांस का और उसी देश का मित्र था कि जिसे अलग करने को वे जमा हुए थे। अन्त तक सोवियट अपने साथियों के साथ सच्चा और अपने वायदों पर क़ायम रहा।

म्यूनिक की घटना होने और सन्तुष्ट करने की नीति के खुल खेल लिये जाने के बाद ८ महीने गुज़र गये। और अब ईश्वर की लीला है कि सोवियट रूस की कोई अवहेलना नहीं कर सकता! अब उसे चाहने और उसकी कृपा चाहनेवाले बहुतेरे हैं। हिटलर भी, जो कि साम्यवाद का बड़ा दुश्मन है, उसकी इज्ज़त करता है और समझौता चाहता है। फ्रांस और इंग्लैण्ड उसके पीछे-पीछे लगे हुए हैं और मीठी-मीठी बातें करके इस बात को छिपाना चाहते हैं कि पहले उसे नहीं चाहते थे। एकाएक सोवियट रूस अन्तर्राष्ट्रीय मामलों का कर्त्ता-धर्ता बन गया है और उसका फैसला आज स्थिति में बड़ी भारी रद्दोबदल कर सकता है।

सोवियट रूस आज यूरेशिया महाद्वीप में सबसे ज्यादा ताक़तवर

देश है। अपनी बड़ी फ़ौज और विशालकाय हवाई ताक़त के लिहाज से ही वह ताकतवर नहीं है बल्कि उसके साधन अटूट हैं और उसने समाज का जो ढाँचा तैयार किया है वह बड़ा शक्तिशाली है। हिटलर के जर्मनी के पास भले ही हथियारबन्द फौज हो, मगर उसकी बुनियाद कच्ची है और लड़ाई या शांति को कायम रखने की ताकत उसमें नहीं है। वह बुड्ढा हो ही चला है। और वह चलता रहे इसके लिए उसे ताकत की दवा बार-बार मिलने की जरूरत है। ये ताकत की दवाएं उसके पास हरेक नये हमले से और इंग्लैंड और फ्रांस की सद्भावना से मिली हैं। जर्मनी के साधन महदूद हैं और उसकी धन-शक्ति ज्यादा-से-ज्यादा खर्च हो चुकी है। हाँ, फ्रांस के पास उम्दा फ़ौज है और उसकी कीमत हो सकती है, मगर वह तो अभी से ही सब राष्ट्रों में पीछे पड़ गया है। इंग्लैण्ड की सल्तनत बहुत बड़ी है, लेकिन अब वह है कहाँ? उसके पास बड़े-बड़े साधन हैं, लेकिन उसकी बड़ी-बड़ी कमजोरियाँ भी हैं। उसके भी घमण्ड और हुकूमत के दिन लद गये।

अगर सोवियट रूस न होता तो आज इंग्लैण्ड होता कहाँ? या फ्रांस या यूरोप के पश्चिमी, उत्तरी और दक्षिण पूर्वी देश कहाँ होते? यह खयाल बड़ा अजीब है कि यूरोप में नात्सियों के हमले का सफल मुकाबला करनेवाला किला सोवियट रूस है। सोवियट की मदद के बिना आज अधिकांश दूसरे देश लड़ने की कोशिश करने के पहले ही मिट सकते हैं। उसकी मदद के बिना इंग्लैण्ड का पोलैण्ड और रूमानिया को आश्वासन देना कोई मानी नहीं रखता।

आज दुनिया में दो ही ताक़तें जाँच-पड़ताल के बाद ठहरती हैं। एक तो अमेरिका के संयुक्त-राष्ट्र और दूसरा सोवियट रूस। संयुक्त-राष्ट्र तक तो कोई नहीं पहुँच सकता और उसके साधन अपार हैं। भौगो-

निज दृष्टि से सोवियट-राज की स्थिति अच्छी नहीं है, लेकिन फिर भी वह करीब-करीब अजेय है। तमाम दूसरी ताकतें इन दोनों से नीचे दर्जे की हैं, और अपनी हिफाजत के लिए उन्हें अपने साथियों के आसरे रहना पड़ता है। और ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा त्यों-त्यों यह विषमता बढ़ती जायेगी।

और यही कारण है कि उनके साम्यवादी होते हुए भी वे लोग जो उनसे नफरत करते थे आज उनकी खुशामद कर रहे हैं। ईश्वर की लीला है!

१० मई, १९३९.

: ८ :

इंग्लैण्ड की दुविधा

परम्परा से ब्रिटेन की विदेशी नीति इस आधार पर रही है कि साम्राज्य व उसके स्थल और जलमार्गों की हिफाजत रहे, यूरोप में शक्ति-सन्तुलन अर्थात् राष्ट्रों की ताक़त की समतोलता कायम रहे ताकि इंग्लैंड सबपर हावी रहे और आर्थिक दृष्टि से ब्रिटेन का प्रभुत्व बना रहे जैसा कि महायुद्ध के सौ बरस पहले रहा था। १९ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में संयुक्त-राष्ट्र अमरीका और जर्मनी इंग्लैण्ड के औद्योगिक आधिपत्यों को चुनौती देने लगे। साम्राज्यवादों में टक्कर शुरू होगयी, जिसका नतीजा हुआ १९१४ का महायुद्ध। इस लड़ाई के बाद राज-नीतिक दृष्टिकोण से इंग्लैण्ड की स्थिति बड़ी फायदेमन्द होगयी, परन्तु संयुक्त-राष्ट्र उसके आर्थिक प्रभुत्व को ललकारने लगा। अमरीका के साथ कड़ी टक्कर लेते रहने के बाद इंग्लैण्ड ने जैसे-तैसे दुनिया में अपनी आर्थिक स्थिति वैसी ही बना ली, हालाँकि वह एक कर्जदार राष्ट्र रहा और संयुक्त-राष्ट्र कहीं ज़्यादा मालदार और दुनिया की बड़ी ताक़तों में अकेला कर्ज़ देनेवाला (Creditor) राष्ट्र था। मगर इस दिखावटी जीत के लिए इंग्लैण्ड को जो क़ीमत चुकानी पड़ी वह बहुत बड़ी थी, उसके यहाँ बेकारी बढ़ी और उद्योग-धन्धे बैठने लगे। चीज़ों के दाम एकदम गिर गये।

राजनैतिक जनतन्त्र की शुरुआत करने में अगुआ होते हुए भी यह अजीब बात थी कि वह सामाजिक दायरे में पिछड़ा हुआ था। आज भी इंग्लैण्ड यूरोप के अधिकांश देशों से सामाजिक मामलों में ज़्यादा

करते, लेकिन नीति पर वे कोई असर नहीं डाल सकते थे। सिर्फ कभी-कभी उस मूलभूत नीति को व्यक्त करने के तरीके में वे जरूर फ़र्क पैदा कर देते थे।

हिटलर के आने से स्थिति में एक पेचीदा उलझन होगयी। यह उलझन दो प्रकार से उठ खड़ी हुई। पहले तो यह कि इस यूरोप में शक्ति-सन्तुलन के बिगड़ जाने का खतरा होगया; दूसरे ब्रिटिश जनता आमतौर पर हिटलर और उसके तौर-तरीक़ों के खिलाफ़ थी। लेकिन विदेशी-विभाग अपनी पुरानी नीति पर चलता रहा। हिटलर का खतरा तो दूर का था. लेकिन सोवियट की तरफ से सामाजिक और राजनैतिक खतरा ज्यादा निकटवर्ती और खतरनाक समझा गया था। जनमत को समय-समय पर बहादुरीभरी तक़रीरों से तसल्ली दे दी जाती थी, लेकिन पुरानी नीति चलती रही। सोवियट के खिलाफ हिटलर को तैयार करना ही अब इस नीति का मक़सद था। इसलिए हिटलर को हर तरीक़े से बढ़ावा दिया गया और दरअसल ब्रिटिश सरकार की सीधी छत्रछाया में नात्सी जर्मनी की ताक़त बढ़ गयी। यह बढ़ावा इस हदतक पहुँचा कि फ्रांस को अलग करके डराया गया। इंग्लैण्ड और जर्मनी की जल-सन्धि से, जो वार्साई की संधि और राष्ट्र-संघ की अवहेलना करके की गयी थी और जिसका फ्रांसीसी सरकार को पता नहीं था, फ्रांस इतना परेशान हुआ कि वह मुसोलिनी के बाहुपाश में जा फँसा और अभिवचन दे दिया कि अबीसीनिया पर हमला होगा तो वह दखल नहीं देगा। मुसोलिनी जानता था कि अगर फ़्रांस ने दखल नहीं दिया तो इंग्लैण्ड भी चुप रहेगा। अब मैदान उसके लिए खुला था। इस तरह अबीसीनिया के ऊपर होनेवाला हमला इंग्लैण्ड की नीति का ही सीधा परिणाम था।

ब्रिटेन ने इसको सब-का-सब तो पसन्द नहीं किया, क्योंकि इसमें इंग्लैण्ड के कुछ साम्राज्यवादी हित आते थे। वे थे—नील नदी की उत्तरी जलधाराएँ, स्वेज नहर और भूमध्यसागर। इस तरह इंग्लैण्ड के इन साम्राज्यवादी हितों और वैदेशिक विभाग की तत्कालीन नीति में टक्कर होने लगी। नीति ही कायम रही, क्योंकि ब्रिटिश सरकार इटली की फासिस्ट सरकार को मिटाये जाने के बिलकुल खिलाफ़ थी। उसकी नीति का मकसद तो था फासिज्म और नात्सीवाद की रक्षा करके उनके जरिये साम्यवाद से लड़ना। सामाजिक खतरा राजनैतिक खतरे से बढ़कर समझा गया। लेकिन इंग्लैण्ड की जनता मुसोलिनी के अबीसीनिया के हमले के सख्त खिलाफ थी और उसे तसल्ली देने को कुछ-न-कुछ करना पड़ा। राष्ट्र-संघ कुछ कम हानिवाले अधिकारों पर राजी होगया और तत्कालीन वैदेशिक मन्त्री सर सेम्युअल होर ने संघ के सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए एक भाषण दिया, जिसमें सामूहिक सुरक्षितता की कसम खायी गयी। इस तकरीर की उचित दाद दीगयी। इंग्लैण्ड ने इसपर अपने आपको बड़ा पुण्यवान् और मन-ही-मन खुश समझा—जैसा कि वह हमेशा ही किया करता है जबकि उसके साम्राज्यवादी हितों का मेल ऊँचे दर्जे की नीतिमत्ता से बैठा दिया जाता है। वही सर सेम्युअल साहब बहुत जल्दी अपनी जेनेवा की तकरीर बिल्कुल भूल गये और उन्होंने अबीसीनिया की बाबत मो० लेवेल के साथ एक गुप्त समझौता कर लिया। इसका भेद खुल गया और ब्रिटिश जनता को इससे धक्का पहुँचा क्योंकि इस नीति-परिवर्तन के मुआफिक बनाने के लिए उसे मौका नहीं दिया गया था। सर सेम्युअल होर को विदा होना पड़ा। मि० ईडन मञ्च पर आये।

लेकिन नीति में कोई बड़ी तब्दीली नहीं हुई और इंग्लैण्ड की

जनता की नाराजगी और उत्तेजना के बावजूद वैदेशिक-विभाग चुपचाप अपनी पूर्वनिश्चित नीति पर चलता ही रहा। राष्ट्रपति रूजवेल्ट का यह सुझाव कि तेल-सनदों को जारी किया जाये, जिससे इटली की शक्ति कम होगयी होती, नहीं माना गया बल्कि इसके बजाय अंग्रेजों की ऐंग्लो-ईरानियन तेल-कम्पनी इटली को तेल भेजने में रात-दिन लगी रही। अबीसीनिया पर आखिर बलात्कार हो ही गया।

इसी बीच हिटलर परिस्थिति का फायदा उठाकर आगे बढ़ा और उसने अपनी स्थिति को मज़बूत कर लिया। फ्रांस बहुत ज्यादा भयभीत होने लगा, मगर इंग्लैण्ड नात्सी जर्मनी के हर-एक कदम पर मुस्कराता ही रहा। हाँ, कभी-कभी नाराजगी भी जाहिर कर देता था।

इसके बाद आया स्पेन-विद्रोह, जिसका इटली और जर्मनी ने उनकी मदद से बड़ी होशियारी से संचालन किया था। यह कसौटी कड़ी थी। यहाँ एक जनतन्त्र के आधार पर निर्वाचित सरकार पर एक फौजी गिरोह ने तनख्वाहदारों और विदेशी ताकतों से मिलकर हमला कर दिया था। जैसा कि हाल ही में मि० लॉयड जार्ज ने पूछा है, अगर रूस स्पेन में विद्रोह की आग भड़का देता तो मि० चेम्बरलेन क्या करते? क्या वह इसपर मुस्करा देते और स्टालिन के साथ कोई समझौता कर लेते?

एक मुश्किल और भी थी। इंग्लैण्ड के साम्राज्यवादी हितों का सीधा सम्बन्ध यहाँ था और अगर स्पेन दुश्मन के हाथों में आ जाता, तो 'सल्तनत' के लिए खतरा था। तब यूरप का शक्ति-संतुलन बिलकुल गड़बड़ हो जाता, नात्सियों का तानाशाही दल सबपर हावी हो जाता, फ्रांस चारों ओर से घिर जाता, भूमध्यसागर पर शत्रुराष्ट्रों का क़ब्ज़ा हो जाता, जिब्राल्टर मुकाबला न कर पाता और बड़ी-बड़ी व्यापारिक राहें भारी खतरे में पड़ जातीं? फिर भी चूंकि वैदेशिक विभाग का

प्रजातन्त्र और समाज की उन्नति का विरोध साम्राज्य के लालच से भी कहीं बढ़ा-चढ़ा था, इसलिए उसकी पुरानी नीति कायम रही। हस्तक्षेप न करने की घोषणा की गयी जिसका मतलब यह हुआ कि इटली और जर्मनी दस्तन्दाजी करें और स्पेन के प्रजातंत्रीय शासन का गला घोंट दें।

अंग्रेजों के जहाज भूमध्यसागर में डुबो दिये गये और इंग्लैण्ड में चिल्लाहट मच गयी। आखिर वैदेशिक विभाग परेशान हुआ पर सोचने लगा कि शायद यह निकट का खतरा सामाजिक खतरे से बड़ा होगा। थोड़ी देर तक उसने दृढ़ता दिखायी और न्योन में मि० ईडन ने घोषणा की कि इंग्लैण्ड इसे बर्दाश्त नहीं करेगा और अगर यह लूट जारी रही तो वह कार्रवाई करेगा। यह पहला ही मौका था जब कि इंग्लैण्ड ने नात्सी और फासिस्ट राष्ट्रों को अपने दाँत दिखायें और स्थिति एकदम मुधर गयी।

मि० ईडन और वैदेशिक विभाग इस नतीजे पर पहुँचे थे कि यह तब्दीली होना जरूरी है और थोड़े से अर्से तक उन्होंने यह रास्ता अख्तियार किया। लेकिन जल्दी ही मि० नेविल चेम्बरलेन ने कुछ और ही सोचा वह हेर हिटलर और सिन्योर मुसोलिनी की लल्लो-चप्पो करने के लिए पूरी तौर पर तुले हुए थे, और इस नये प्रजातन्त्रीय स्पेन से उन्हें नफरत थी और इससे भी ज्यादा नफ़रत उसे रूसी सोवियट-संघ से थी। सो ईडन गये और उनकी जगह लार्ड हैलीफैक्स आये। अन्तरंग सभा, जिसमें प्रधान मन्त्री, लार्ड हैलीफैक्स, सर जॉन साइमन और सर सेम्युअल होर थे, इनके विरोध में कोई आवाज नहीं उठा सकती थी जिससे इन्हें तकलीफ़ हो। अब वे अपनी 'सन्तुष्ट करने की नीति' पर बेरोक-टोक चल सकते थे, फिर चाहे उसका अंजाम इंग्लैण्ड और उसकी सल्तनत के लिए कुछ भी क्यों न हो। इस दुविधा से उन्हें कोई परेशानी नहीं हुई क्योंकि सबसे जरूरी काम हिटलर अथवा मुसोलिनी को परेशान न करना था।

सिन्योर मुसोलिनी चूंकि स्पेन के प्रजातन्त्र को कुचलने पर उतारू था इसलिए जितनी जल्दी यह हो जाता उतना ही अच्छा था। ब्रिटिश सरकार ने झटपट सिन्योर मुसोलिनी के साथ एक समझौता कर लिया और फ्रांस को अपने स्पेन से मिले हुए सीमांत प्रदेश को बन्द करने पर मजबूर किया। उन्हें बड़ी बेसब्री और उत्सुकता रही कि कब स्पेनिश प्रजातन्त्र खत्म हो; लेकिन उसने तो मिटने से इनकार कर दिया। इससे वे और भी चिढ़े। दरअसल, उसमें तो नयी ताक़त आ गयी मालूम पड़ती थी। इंग्लैण्ड-इटली के समझौते के कारण मि० चेम्बरलेन को इसपर हँसी आती थी। और उनको स्पेन के प्रजातंत्र का खात्मा करने के लिए सब-कुछ करके अपने आपको सही साबित करने में ही अपना सम्मान दीख पड़ा। अगर इंग्लैण्ड के जहाजों को तारपीडो या बमबारी से नष्ट कर दिया जाता था, तो वह इसे भी यह कहकर उचित ही ठहराते थे कि यह तो स्पेन के प्रजातन्त्र की रसद ले जाने का खतरा उठाने का कुदरती नतीजा ही था। स्पेन से सहानुभूति रखने के मामले पर दुनिया में मतभेद था। कट्टर राजभक्ति की भावनाएँ पैदा की गयीं। मि० चेम्बरलेन की राजभक्ति किधर को थी इसमें अब शक नहीं रह गया।

सन्तुष्ट करने की नीति चलती रही। झगड़े का केन्द्र हटकर मध्य यूरोप में आ गया था। हिटलर ने आस्ट्रिया को धमकी दी। मि० चेम्बरलेन ने खुले आम कह दिया—मैं आस्ट्रिया के मामले में दखल नहीं दूँगा। यह हिटलर को न्यौता देना था और वह फौरन स्थिति का लाभ उठाने से न चूका और घुस आया।

चेको-स्लोवाकिया को धमकी दी गयी। वैदेशिक विभाग ने, शायद मि० चेम्बरलेन को भूलकर, हुक्म दिया कि अगर जर्मनी चेको-स्लोवाकिया पर हमला करे तो ब्रिटिश राजदूत को बर्लिन से हटा लिया जाये। चेको

ने सेनाओं को रातोंरात तैयार किया और मार्च १९३८ का संकट टल गया। हिटलर अपनी योजनाओं पर यह रोक लगने पर आगबबूला हुआ। इसी तरह दिखाने को मि० चेम्बरलेन और लार्ड हैलीफैक्स भी हुए। वैदेशिक विभाग ने टुकड़ा खुद अपने दाँतों में दबा लिया और आराम से चलती हुई सन्तुष्ट करने की नीति में गडबड कर दी। यह बर्दाश्त नहीं किया जा सका और वैदेशिक विभाग के स्थायी अध्यक्ष सर राबर्ट वेन्सिटार्ट को हटाकर उन्हें किसी मामूली ओहदे पर बदल दिया गया। उनकी जगह सर आर्नाल्ड विल्सन को मिली।

सर आर्नाल्ड सन्तुष्ट करने की नीति को प्रोत्साहन देने के लिए उपयुक्त व्यक्ति थे। वह नात्सियो के समर्थक थे और सोवियट के घोर विरोधी। नात्सी जर्मनी की ओर से जो महत्वपूर्ण और प्रभावशाली दल इंग्लैण्ड में काम कर रहा था, उससे उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। वहाँ क्लाइवडेन के दल के और 'टाइम्स' के मालिक और सम्पादक और फ्रैंको के समर्थक उत्साही व्यक्ति थे। तादाद में कम होते हुए भी वे सरकार पर हावी थे और मि० नेविल चेम्बरलेन उनके खास लाडले थे। इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति पर अब इसी गुट का पूरा कब्जा था।

कदम-ब-कदम मध्ययूरप और स्पेन में यह नीति चल पड़ी। चेकों की कमर तोड़ने और नात्सियों को बढ़ावा देने के लिए लार्ड रन्सिमैन भेजे गये। म्यूनिक आया और सन्तुष्ट करने की नीति की पूरी जीत हो गयी। शान्ति-स्थापना करानेवाले वीर मि० चेम्बरलेन ही थे। चेको-स्लोवाकिया के लाखों घरों में घोर दुःख छाया हुआ था और बागियों से जेलें भरी हुई थीं। इन बहादुर लोगों से उन लोगों ने दगा की जिन्हें उन्होंने अपना दोस्त समझा था। दुनिया इंग्लैण्ड और फ्रांस में

नफ़रत करने लगी। पश्चिम में हिटलर को सन्तुष्ट करने और उसे सोवियट पर हमला करने को मजबूर करने की पुरानी नीति सन्तोष-जनक रूप से आगे बढ़ रही थी लेकिन उसकी उन्हें क्या परवा थी ? सोवियट की अवहेलना की गयी और उसे अलग कर दिया गया। इंग्लैण्ड हिटलर का सबसे सच्चा दोस्त बन गया और अगर सब काम ठीक चलता रहा तो कुछ अंशों में फ़ासिज्म, प्रजातन्त्र के बुरके में ही सही, इंग्लैण्ड में भी आ धमकेगा।

लेकिन सब काम ठीक नहीं चला; हालांकि स्पेन, वह प्रजातन्त्रीय स्पेन जिसने संसार की आजादी की लड़ाई का बोझ अपने कंधों पर उठा लिया था, इंग्लैण्ड और फ़ांस का छुरा खाकर मरा पड़ा था। मि० चेम्बरलेन और उनकी सरकार को बड़ी कीमत चुकानी पड़ी थी, बड़े-बड़े खतरे मोल लेने पड़े थे और वह घड़ी आ पहुँची थी जबकि सन्तुष्ट करने की नीति पर डटे रहने का इनाम उन्हें मिलता। वह इनाम था जर्मनी का पच्छिम की तरफ़ से सन्तुष्ट होकर पूरब को मुड़ना और रूस के साथ उलझना। लेकिन यह इनाम हटकर दूर चला गया। यूरोप के पूरब और दक्खिन-पूरब में अब भी ऐसे रसभरे लुक़मे मौजूद थे, जिन्हें हिटलर ले सकता था, लेकिन फिर क्या ? अचानक यह साफ़ हो गया कि जर्मनी का सोवियट-संघ से टक्कर लेने का कोई इरादा नहीं है। सोवियट के सैनिक तन्त्र के लिए जर्मनी के दिल में बहुत ज्यादा इज्जत थी और वह सोवियट के विस्तृत प्रदेशों में उलझ जाना नहीं चाहता था। ज्यादा आसान यह था कि उन रसीले लुकमों को हड़प करके पीठ-पीछे पूर्व का दरवाजा बन्द कर किया जाये और पच्छिम की ओर मुंह फेर लिया जाये।

यह योजना चौंकानेवाली थी। सन्तुष्ट करने की नीति की सारी-की-

सारी इमारत डगमगा रही थी। उसकी कीमत न सिर्फ इस तरह चुकानी पड़ी कि लाखों का खून हुआ और मुसीबतें आयीं, प्रजातन्त्र की बलि चढ़ गयी और आदर-प्रतिष्ठा धूल में मिल गयी, बल्कि युद्ध के महत्व-पूर्ण नाके शक्तिशाली दुश्मनों के कब्जे में चले गये। और बदले में कुछ भी न मिला। आज इंग्लैण्ड और फ्रांस के सत्ताधारी लोग बड़े रंज के साथ चैको-स्लोवाकिया की नष्ट हुई फौजों के साथ स्कोडा के बड़े-बड़े कारखानों का खयाल करते होंगे कि जो उनका काम करते, मगर अब दुश्मन के लिए लड़ाई का सामान तैयार करेंगे। जो कुछ उन्होंने स्पेन में किया उसपर वे बहुत-बहुत पछता रहे होंगे।

चेक राष्ट्र का आखिरकार खात्मा हो जाना, मैमेल का जर्मनी में मिल जाना और अल्बानिया पर हमला होना—ये घटनाएँ तेजी से एक के बाद एक घटित हुईं। इंग्लैण्ड में खतरा बढ़ता ही जा रहा था और टोरी दलवाले तक इसपर गुर्राने लगे और मनाने की नीति के खिलाफ विद्रोह करने की धमकी देने लगे। इस बात की बहुत चर्चा होने लगी कि प्रजातन्त्र खतरे में है—वही प्रजातन्त्र जिसका इन्हीं लोगों ने दो जगह (चैको-स्लोवाकिया और स्पेन में) खात्मा कर दिया था। टोरी दलवालों में अपने प्रजातन्त्र या आजादी के प्रेम के कारण हलचल हुई हो ऐसी बात नहीं, बल्कि इस डर से हुई कि उनकी सल्तनत छिन न जाये और शायद उन्हींके देश की आजादी हाथ से न चली जाये। वही पुरानी दुविधा अब और जोर के साथ उनके सामने खड़ी थी कि हम फासिस्टों को रोककर और उन्हें बर्बाद करके अपने साम्राज्य की रक्षा करें या थोड़ी और रियायतें देकर, थोड़े और नरम होकर लड़ाई को हर हालत में टालने और मनाने की नीति अख्तियार करके अपनी समाज-व्यवस्था की हिफाजत करते रहें। रियायतें तो अबतक दूसरे लोगों के

माल में से दी जाती रही थीं, लेकिन अब तो ऐसा वक्त आ गया था कि अपने जिस्म में से गोश्त काट-काटकर देना पड़े। म्यूनिक में और उसके बाद जो कुछ हुआ उससे इंग्लैण्ड और फ्रांस बुरी तरह कमजोर पड़ गये थे और आगे भी सन्तुष्ट करना जारी रहा तो वे इतने कमजोर हो जायेंगे कि उन्हें टक्कर लेना भी मुश्किल हो जायेगा। हाँ, अकेला रूस ऐसा राष्ट्र था जो उनको बचा सकता था; मगर वह उदास और नाराज था और किसी फंदे में नहीं पड़ना चाहता था।

यह पास का खतरा इतना बड़ा था कि उसे कैसे दरगुजर किया जाता? और समाज-व्यवस्था बिगड़ने का दूसरा खतरा इससे कम महत्त्व का समझा गया। इस बात की पुकार इंग्लैण्ड में जोरों पर थी कि सन्तुष्ट करने की नीति छोड़ देनी चाहिए और सोवियट रूस के साथ मिलकर नात्सी जर्मनी और फासिस्ट इटली के खिलाफ एक मजबूत मोर्चा लेना चाहिए। चेम्बरलेन साहब चतुर राजनीतिज्ञ ठहरे, उन्होंने इस हवा को देखकर रुख बदला और नीति-परिवर्तन का ऐलान कर दिया। हर जगह खुशियाँ मनायी जाने लगीं और ऐसा जान पड़ा कि एक भयंकर परेशानी मिट गयी।

लेकिन क्या चेम्बरलेन साहब ने नीति बदल दी थी? उन्होंने पोलैण्ड और रूमानिया को ऐसे आश्वासन दे दिये थे कि जो बिना सोवियट की सहायता के सफलतापूर्वक पूरे नहीं हो सकते थे। इसलिए दो में से एक रास्ता था—या तो सोवियट के पास जायें और उनसे समझौता करें, या फिर जब मौका आये, तब आश्वासन को भूल जायें और विश्वासघात करें।

क्या चेम्बरलेन साहब बदल गये थे? यह होने-जैसा न था। वह एक कठोर आदमी हैं और विदेशी नीति के सम्बन्ध में उनके विचार

अटल हैं और मध्य यूरोप और स्पेन में जो कुछ हुआ उसके बावजूद वह अपनी उस नीति से नहीं डिगे हैं। रूस और उसके तमाम सिद्धान्त उन्हें पसन्द नहीं थे। वे अपनी इस भावना के वश में थे। क्या वह अपनी भावनाओं और धारणाओं को दूर करके अपनी नीति की हार मंजूर करते? यह भी बहुत अनहोना था। और उनके पिछले न निभाये गये आश्वासनों और बार-बार बदल जानेवाली उनकी राज-नीतिक ईमानदारी में किसी को भरोसा नहीं रह गया था। उन्होंने अपनी नीति में परिवर्तन करने का ऐलान कर भी दिया था, तो कितने लोग उनका विश्वास करते?

लेकिन उनकी बातो से ज्यादा तो उनकी कारगुजारियाँ जोर-जोर से बोल रही थी और साफ़ बता रही थी कि वह अब भी पहले की तरह सन्तुष्ट करने की नीति पर कायम हैं। अलबानिया की घटना के बाद भी वह इंग्लैण्ड व इटली की सन्धि को निभाते रहे। स्पेन का जो भयानक और दुखद अन्त हुआ और उसके शरणार्थी लोग जिसतरह भूखों मरे वह सब होते हुए भी उनके प्रतिनिधि ने मैड्रिट में होनेवाले फ्रेंको के विजयोत्सव में हाजिरी दी थी। सर नेविल हेन्डरसन, जो सन्तुष्ट करने की नीति के नात्सीभक्त समर्थक थे, वापस अपनी राजदूत की जगह बर्लिन भेज दिये गये, वहाँ उनकी वॉन रिबनट्राप ने तौहीन की, क्योंकि उसे उनसे मिलने की फ़ुरसत तक नहीं थी। लन्दन के 'टाइम्स' ने अपने शरारत भरे ढंग से यह सुझाया कि डाजिग कोई ऐसी जगह नहीं है कि जिसके लिए लड़ाई लड़ी जाये, इसलिए जैसा कि पिछले साल सुडेटनलैण्ड मे हुआ,'जर्मनी को जाकर उसपर कब्जा करना चाहिए। 'टाइम्स' इस बात के लिए बदनाम है कि ऐसे मामलो में वह मि० चेम्बरलेन और लार्ड हैलीफेक्स का प्रतिनिधित्व करता है। कामन-

सभा में चेम्बरलेन साहब इस बात का आश्वासन देने से इनकार कर देते हैं कि वह बोहेमिया और मोरेविया की विजय को स्वीकार नहीं करेंगे। अखबारों में बड़ी सूझवाली खबरें छपती हैं कि दूसरा म्यूनिक होनेवाला है। फ़िफ्थ कालम फिर से जोरों से काम कर रहा है और खुश करने की नीति का बोलबाला है।

इसी बीच खतरे की भावना का फायदा उठाते हुए मि० चेम्बरलेन ने सेना की अनिवार्य भर्ती शुरू कर दी है। इसका असली मतलब क्या है ? एक अंग्रेज सेनापति ने हाल में ही यह कहा था कि इंग्लैण्ड के विरोधी लोगों को दबाने के लिए ऐसी फौजी भर्ती बहुत फायदेमन्द है। लड़ाई की तैयारियों के बुर्के में चेम्बरलेन साहब इंग्लैण्ड में अन्दरूनी फ़ासिज्म के रास्ते पर जा रहे हैं और मुमकिन है कि उनको कामयाबी मिल जाये। अखबारों पर सेंसर बैठ जायेगा, उनपर कड़ी देखरेख हो जायेगी और सार्वजनिक जीवन पर पाबन्दियाँ लगादी जायेंगी। इंग्लैण्ड में फ़ासिज्म के समर्थक लोग लड़ाई में हार जाना तक मंजूर कर लेंगे,' मगर 'सोवियट संघ' और दूसरे प्रगतिशील राष्ट्रों से मिलना पसन्द न करेंगे। यह नीति है जिसपर चलने पर चेम्बरलेन साहब उतारू हैं और दरअसल चल रहे हैं।

लेकिन इंग्लैण्ड में एक ऐसा शक्तिशाली दल है और उसमें टोरी पार्टी के कुछ नेता शामिल हैं, जो इस नीति के खिलाफ़ हैं और नात्सी जर्मनी से लड़नें के लिए सोवियट से मित्रता कर लेना चाहते हैं। मि० चेम्बरलेन को उन्हें भी तसल्ली देनी है, और इस मक़सद के लिए वह सोवियट से बातचीत चलाते हैं। उन्होंने रूस के आगे जो सुझाव रखे वे बड़ी खूबी के और किसी की पकड़ में न आने-जैसे थे। रूस ने इनकार कर दिया और सारे हमलों के खिलाफ एक वास्तविक संधि का प्रस्ताव किया। अगर

मि० चेम्बरलेन आक्रमणों को रोकने के लिए सचमुच चिन्तित होते तो ऐसी संधि को मंजूर करने में उनको कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए थी लेकिन उन्हें ऐसी कोई चिन्ता थी ही नहीं। उनकी तो सारी ताकत इस मकसद के लिए लग रही थी कि फासिज्म के लिए दुनिया निष्कंटक हो जाये और इंग्लैण्ड फासिस्ट देशों के साथ हो जाये।

यह हो सकता है कि घटनाओं और उनके ही लोगों के दबाव से मजबूर होकर वह सोवियट के साथ शर्तें करे, लेकिन इतने पर भी उनका विश्वास करे कौन ? वह अपनी संतुष्ट करने की परमप्रिय नीति को नहीं छोड़ेंगे और पहले की तरह अपने दोस्तों और साथियों को धोका देंगे। भले ही युद्ध छिड़ जाये और मि० चेम्बरलेन के नेतृत्व में इंग्लैण्ड को उसमें पड़ना भी पड़े, तो भी इस बात का निश्चय नहीं है कि सन्तुष्ट करने की नीति का अन्त हो जायेगा। उस युद्ध में म्यूनिक भी आ सकता है। कुछेक लायक दूरदर्शियों का मत है कि बहुत ज्यादा मुमकिन है कि कुछ हफ्तों के नरसंहार के बाद जब कि लोगों की नसें ढीली पड़ जायें, मि० चेम्बरलेन से कोई फायदे की पृथक् संधि करने के लिए कहा जाये और वह शायद मंजूर कर लें जिससे देश में और विदेश में फासिज्म सुरक्षित रहे। लड़ाई से अन्दरूनी फ़ासिज्म के साज-सामान जमाने में मदद मिलेगी।

आज फ्रांस में फौजी डिक्टेटरशाही (अधिनायकत्व) का राज है और चेम्बर ऑव डिप्टीज़ की कोई ज्यादा कीमत नहीं है। जनतन्त्रात्मक आज़ादी की चंद बातें बनी रहने दीगयी हैं, लेकिन वे भी अधिकारियों की मेहरबानी पर हैं। वह फ्रांस, जिसने एक दिन स्पेन के प्रजातन्त्र को अस्त्र-शस्त्र तो क्या खाना तक देने से इनकार कर दिया था, आज फ्रैंको के पास हथियार-पर-हथियार भेज रहा है। वे सब-के-सब हथियार जिन्हें

प्रजातन्त्र की फौजें फ्रांस में छोड़ गयी थीं, फ्रैंको को दिये जा रहे हैं। वह स्पेन का सोना भी, जो पेरिस में था और प्रजातन्त्र को नहीं दिया गया था, फ्रैंको को सौंपा जा रहा है और फ्रैंको का ताल्लुक रोम-बर्लिन धुरी से है! क्या यह सन्तुष्ट करने की नीति का परित्याग है? क्या जनतन्त्रात्मक ढंग पर शान्ति का मोर्चा तैयार करने का यही तरीका है?

यह बात हमारे दिमाग़ में साफ़ होजाये। सन्तुष्ट करने की वही पुरानी नीति जारी है और वही पुरानी धोखेबाजियां अब भी चलती रहेंगी क्योंकि इंग्लैण्ड और फ्रांस पर हुकूमत करनेवालों के दिमाग़ में दूसरा कोई डर इतना ज्यादा नहीं है जितना सामाजिक परिवर्तन होने का डर है। जबतक चेम्बरलेन साहब के हाथ में ताक़त है, तबतक कोई खास तब्दीली होनेवाली नहीं है और घटनाएँ उनको तब्दीलियां करने को मजबूर करें तो भी वह अपने पुराने तरीक़े से ही पीछे लगे रहेंगे और जब मौका मिलेगा तब उनपर चलने लगेंगे।

लेकिन इंग्लैण्ड के शासकवर्ग के दिमाग़ों में भी यह दुविधा है कि हम फ़ासिस्ट हमलों को रोककर और फ़ासिज्म को बर्बाद करके अपने साम्राज्य की रक्षा करें या थोड़ी और रियायतें दे-दिलाकर थोड़े और नरम हो-हाकर लड़ाई को हर तरह से टालने और सन्तुष्ट करने की नीति अख्तियार करके अपनी समाज-व्यवस्था की हिफाजत करलें। इसके जवाब में मि० चेम्बरलेन को कोई शक नहीं है। वह तो समाज-व्यवस्था और फ़ासिज्म पर अड़े हुए हैं।

हम हिन्दुस्तानियों के लिए ऐसी कोई दुविधा नहीं है, क्योंकि हम उस सल्तनत और उस समाज-व्यवस्था दोनों का अन्त चाहते हैं। और इस-लिए, चाहे लड़ाई अभी शुरू हो चाहे देर में, हम उसमें हिस्सा नहीं ले

सकते, बशर्ते कि हमको स्वतन्त्र राष्ट्र माना जाये और स्वतन्त्रतापूर्वक वास्तविक जनसत्ता और शान्ति चाहने का अधिकारी समझ लिया जाये। मि० चेम्बरलेन के नेतृत्व या अंग्रेजी साम्राज्यवाद के चंगुल में रहकर न तो जनसत्ता मिल सकती है, न शान्ति। वह रास्ता तो फासिज्म और जनतन्त्र के साथ विश्वासघात करने का है। वह रास्ता तो भारत के अधिकाधिक शोषण और उसे अपमानित करने का ही है।

यह भाग्य का एक व्यंग है कि फासिज्म में विश्वास रखते हुए भी और जनतन्त्र का शायद किसी भी व्यक्ति से अधिक नुकसान करनेवाले होते हुए भी आज मि० नेविल चेम्बरलेन अंग्रेजी प्रजातन्त्र के नेता बनते हैं, मो० दलैदिये फ्रांस के डिक्टेटर हैं और लार्ड हैलीफैक्स और नात्सी-भक्त मो० बोनेट इंग्लैण्ड और फ्रांस के वैदेशिक मंत्री हैं। क्या इन्हीं लोगों से जनतन्त्रवाद प्रेरणा पायेगा या मोक्ष की आशा करेगा? रूज़-वेल्ट जैसी महान् जनतन्त्रात्मक मूर्ति के आगे ये सब लोग कितने नगण्य लगते हैं!

लेकिन जनतन्त्र के इन ढोंगी मसीहाओं के भुलावे में हम न आवें। हमारे लिए तो जनसत्ता का अर्थ है—हमारी जनता की आजादी। यही हमारी कड़ी कसौटी है।

३१ मई, १९३९

: ९ :

युद्ध और शान्ति के ध्येय

१

कांग्रेस की कार्य-समिति ने जो वक्तव्य दिया है, उससे जनता का ध्यान युद्ध-स्थिति के कुछ पहलुओं की तरफ गया है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि उन्हें दरगुजर किया गया था। एक तरफ़ तो यह मनोवृत्ति थी कि बिना किसी विचार, ध्येय या उद्देश्य के हिन्दुस्तान के लड़ाई में कूद पड़ने की बात की जाती थी और दूसरी तरफ़ कहा जाता था कि लड़ाई का बिना सोचे-समझे प्रतिरोध होना चाहिए। ये दोनों रुख निषेधात्मक रुख थे, और इनमें न तो मौजूदा स्थिति की असलियत पर और न दुनिया और हिन्दुस्तान में हो चुके बहुत-से रद्दोबदल पर ध्यान दिया गया था। दोनों में से एक भी रुख रचनात्मक राजनीतिज्ञता का नहीं था। अपने इस रचनात्मक मार्ग-दर्शन से कार्यसमिति ने राष्ट्र की महान् सेवा की है। वह सेवा हिन्दुस्तान की ही नहीं है बल्कि उन सबकी भी है जो स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र और नयी व्यवस्था की बात सोचते हैं और ऐसे लोगों की तादाद आज दुनिया में बहुत ज़्यादा है। परिणामस्वरूप कार्य-समिति ने दुनियाभर की प्रगतिशील शक्तियों का नेतृत्व किया है। हम नहीं जानते कि हिन्दुस्तान की यह आवाज़ लड़ाई के और सम्पर्क बनाये रखने की कठिनाई के इन दिनों में कितनी दूर पहुँचेगी और हिन्दुस्तान के बाहर कितने लोग उसे सुनेंगे? लेकिन हमें यक़ीन है कि जिनतक यह आवाज़ पहुँचेगी वे इसका स्वागत ही करेंगे

और इस बात का समर्थन करेंगे कि युद्ध और शान्ति के ध्येयों की स्पष्ट व्याख्या हो जानी चाहिए।

कार्यसमिति के प्रस्ताव में जरूरी तौर कुछ उसूलों पर विचार किया गया है। मगर इन सिद्धान्तों को स्थूल रूप में देना होगा और हमको यह मुनासिब मालूम होता है कि इस मामले पर सार्वजनिक विचार होना चाहिए। इस विकट सकट में हममें से कोई भी विरोध द्वारा या कोरे नारे लगाकर बच नहीं सकता, चाहे उनकी आवाज कितनी ही भली क्यों न लगती हो। अगर उन नारों का असलियत से कोई सम्बन्ध है तो वे वर्तमान परिस्थिति में अमल में आने लायक होने चाहिएँ। उसी अमल के लिए हमें अपनी ओर मुखातिब होना चाहिए। हो सकता है हमारी कोशिशें बेकार रहें और वह अमल आज न हो सके। भूतकाल की विरासत और इस जमाने की जोरदार मांग से हम संघर्ष और उसके तमाम बदकिस्मत नतीजों की ओर बढ़ते जा रहे हैं। यह हिन्दुस्तान और दुनिया के लिए दुर्भाग्य की बात होगी, खासतौर से इस वक्त जबकि दुनिया भर के लोगों के दमन और अत्याचार और शोषण से छुटकारा दिलाने के लिए निडर राजनेतृत्व की मांग है। रास्ता मुश्किल है। फिर भी रास्ता तो है ही भले ही रुकावटें बहुत-सी हैं और सब-की-सब हमारे हाथों पैदा नहीं हुई हैं पर एक दरवाजा भी है जिसमें होकर हम भविष्य के बाग में जा सकते हैं; लेकिन उस दरवाजे पर बेवकूफी का, पुराने जमाने के विशेषाधिकारों का और स्थापित स्वार्थों का पहरा लग रहा है।

युद्ध के और शान्ति के उद्देश्यों पर विचार करने से पहले हम यह स्पष्ट कर दें कि इस समस्या पर हम किस तरह से विचार करेंगे? हिन्दुस्तान के लिए आज लड़ाई एक दूर की बात है, वह काफी भड़कानेवाली चीज

है लेकिन हमसे कुछ अलग है। हमपर उसका असर पड़ता ही नहीं। यूरप में और दूसरी जगह ऐसा नहीं है क्योंकि वहां तो यह लड़ाई असंख्य लोगों के लिए एक लगातार दुःख और मुसीबत के रूप में है, सर पर मंडरानेवाला खतरा है, मौत है, बरबादी है और दिल को तोड़ डालनेवाला तनाव है। यूरप में एक भी घर ऐसा नहीं है जो इस दिल को दहलानेवाली घबराहट और परेशानी से बचा हुआ हो, क्योंकि जिस दुनिया को वे जानते हैं, उसी का अन्त आगया है और उनपर खौफ़ छा गया है—ऐसा खौफ कि जिसकी उनके, उनके प्रियजनों और उस सबके लिए कि जिसका मूल्य उनके लिए बहुत रहा है, कोई हद नहीं है। बहादुर आदमी और औरतें उन तात्त्विक शक्तियों के हाथ के मोहरे बने हुए हैं जिन्हें वे काबू में नहीं रख सकते। वे इस मसले का दिलेरी के साथ मुकाबिला करते हैं; लेकिन जिस एकमात्र आशा से उनके मन थोड़ी देर के लिए चमक उठते हैं, वह है दुनिया के एक बेहतरीन भविष्य की आशा, ताकि उनके त्याग और बलिदान बेकार न चले जायें।

हम इन जुदा-जुदा मुल्कों के रहनेवालों के बारे में, चाहे वह पोलैंड हो या फ्रांस हो या इंग्लैण्ड हो या रूस हो या जर्मनी हो, इज्जत और पूरी हमदर्दी के साथ खयाल करें, उनकी मुसीबत का मजाक उड़ाने की कल्पना न करें, या बे-सोचे-समझे ऐसा कुछ न कहें जिससे उन लोगों को चोट लगे, जिन्हें वह भारी बोझ उठाना है। इंग्लैण्ड से हमारा पुराना झगड़ा चला आता है, हालांकि वहां के लोगों से नहीं। हमें आजादी मिल जाये, तो उसके साथ वह झगड़ा भी खतम हो जायेगा। तभी हम इंग्लैण्ड के साथ बराबरी की शर्त पर दोस्ती कर सकते हैं। लेकिन दूसरे देशों की तरह अंग्रेजों के साथ भी उनकी मौजूदा मुसीबत में

हमारी सहानुभूति और सद्भावना ही है। हम यह भी जानते हैं कि उनकी साम्राज्यवादी सरकार ने चाहे कुछ भी किया हो, या आगे करे, अंग्रेजों में आज भी आजादी और प्रजातन्त्र के लिए बड़ी हमदर्दी है। इन्हीं आदर्शों के लिए वे लड़ते हैं। यही आदर्श हमारे भी हैं; हालाँकि हमें डर है कि सरकारें अपने शब्दों और कथनों को झूठा कर सकती हैं। दुनिया के बहुत से हिस्सों में, खासकर हिन्दुस्तान में, अब भी साम्राज्यवाद का बोलबाला है। फिर भी १९३९ कोई १९१४ नहीं है। इन पच्चीस बरसों में दुनिया में और हिन्दुस्तान में बड़ी-बड़ी तब्दीलियाँ हो चुकी हैं—तब्दीलियाँ जिन्होंने बाहरी ढाँचे को उतना ही पलटा है जितना कि लोगों के दिमाग़ों को पलटा है और उनमें इच्छा पैदा कर दी है कि इस बाहरी ढाँचे को बदलकर उस व्यवस्था का खात्मा कर दें जिसकी बुनियाद हिंसा और संघर्ष पर है।

हिन्दुस्तान में भी सन् १४ में हम जैसे थे, उससे अब बहुत बदल चुके हैं। हममें ताक़त आ गयी है, और आ गयी है राजनीतिक सजगता और मिलकर काम करने की ताकत। अपनी बहुत-सी मुश्किलों और समस्याओं के बावजूद आज हमारा राष्ट्र कमज़ोर नहीं है। हम जो कहते हैं उसकी अन्तर्राष्ट्रीय मामलों तक में कुछ हदतक क़ीमत है। अगर हम आज़ाद होते तो शायद इस लड़ाई को रोकने तक में कामयाब हो गये होते। कभी-कभी हमारे सामने आयरलैण्ड की मिसाल रखी जाती है। यह ठीक है कि आयरलैंड और उसकी आजादी की जद्दोजहद से हम बहुत-कुछ सीख सकते हैं, पर हमें यह याद रखना चाहिए कि हमारी हालत जुदा है। आयरलैण्ड तो एक छोटा-सा मुल्क है, जो भौगोलिक और आर्थिक रूप से इंग्लैण्ड से बँधा हुआ है। आयरलैण्ड आज़ाद हो तो भी वह दुनिया के मामलों में कोई ज्यादा फर्क नहीं पैदा कर सकता। हिन्दुस्‍

के साथ यह वात नहीं है। आजाद हिन्दुस्तान अपने वड़े-वड़े साधनों के के कारण दुनिया और मानव-जाति की वड़ी भारी सेवा कर सकता है। हिन्दुस्तान हमेशा दुनिया को वदलनेवाला मुल्क रहेगा। तकदीर ने हम वड़ी चीज़ों के लिए वनाया है। जव हम गिरते हैं, तो नीचे गिर जाते हैं; जव हम ऊपर उठते हैं तो लाज़िमी तौर से दुनिया के नाटक में भाग लेते हैं।

जैसा कि कार्यसमिति ने कहा है, यह लड़ाई उन सव तरहके विरोधों और संघर्षों की उपज है जो मौजूदा राजनैतिक और आर्थिक ठांचे में पाये जाते हैं। लेकिन लड़ाई का तात्कालिक कारण तो फ़ासिज्म और नात्सीवाद की तरक्की और उसके हमले हैं। जवसे नात्सी जर्मनी का जन्म हुआ है, तवसे कांग्रेस ने सच्ची गहरी निगाह से देखकर फ़ासिज्म की निन्दा की है और उसने देखा है कि साम्राज्यवाद के उसूल ही घने होकर फ़ासिज्म वन गये हैं। कांग्रेस में लगातार जो प्रस्ताव हुए हैं उनसे इस फ़ैसले का सवूत मिलता है। इसलिए यह साफ़ है कि हमें फ़ासिज्म का विरोध करना चाहिए और उसपर विजय पाना हमारी भी विजय होगी। लेकिन हमारे लिए इस विजय का मतलव केवल यह होगा कि साम्राज्यवाद का ज्यादा विस्तार होगा। अपनी आजादी और उसे पाने की कश्मकश को तिलांजलि देकर हम फ़ासिज्म के ऊपर विजय नहीं पा सकते।

अगर हम वाजारू तरीके से सौदा करेंगे तो उसमें न तो हमारा मक़सद ही पूरा होगा न विश्वव्यापी संकट के वक्त वह हिन्दुस्तान की शान के लायक ही होगा। हमारी आजादी इतनी क़ीमती है कि उसके लिए सौदा नहीं किया जा सकता। वल्कि दुनिया के टेढ़े रास्ते पर जाने की वजह से भी उसकी कीमत इतनी ज्यादा है कि उसे दरगुजर किया या एक तरफ डाला नहीं जा सकता। दुनिया भर की जिस आजादी की

घोषणा की जा रही है, उसका आधार और नींव ही यह आजादी है। अगर उस आजादी के लिए संयुक्त प्रयत्न करने में हमें हिस्सा लेना है, तो वह प्रयत्न वास्तव में मिलकर ही होना चाहिए, और उसका आधार स्वतंत्र और बराबरवालों की रजामंदी पर होना चाहिए, नहीं तो उसका कोई मतलब न होगा, कोई कीमत न होगी। लड़ाई में जीत होने के खयाल से भी यह महत्त्व की बात है कि आजादी के साथ मिलकर लड़ाई में शामिल हुआ जाये। लड़ाई मे जिन उद्देश्यों का पूरा होना माना जाता है उनके व्यापक दृष्टिकोण से भी हमारी आजादी जरूरी चीज है।

हम समझते हैं कि युद्ध और शान्ति के ध्येयों की समस्या पर किसी तरह का विचार करने की पृष्ठभूमि यही है।

२१ सितम्बर, १९३९.

२

लड़ाई का अंजाम क्या होगा? यह कबतक चलती रहेगी? सोवियट रूस क्या करेगा? क्या पोलैण्ड को कुचलने के बाद हिटलर सुलह चाहेगा? इन और इन जैसे दूसरे सवालों का जवाब देने का हम दावा नही करते, और जो जवाब देने की कोशिश करते हैं, उन्हें शायद वैसा करना मुनासिब नहीं है। मगर हमारा यकीन है कि अगर यह लड़ाई आधुनिक सभ्यता का सत्यानाश नहीं करती, तो वह इन मौजूदा राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था में रद्दोबदल तो ला ही देगी। लड़ाई के बाद पुराने तरीकों पर साम्राज्य और साम्राज्यवाद चलें इसकी हम कल्पना नहीं कर सकते।

दुनिया की जो स्थिति है उसमें इस वक्त सोवियट रूस का हिस्सा बड़ा रहस्यभरा है। यह तो साफ है कि रूस जो कुछ भी करेगा, उसके

परिणाम महत्त्वपूर्ण और दूरगामी होंगे। लेकिन चूँकि हम नहीं जानते कि वह क्या करेगा, इसलिए अपने मौजूदा हिसाब में से उसे छोड़ देते हैं। रूस और जर्मनी के बीच जो समझौता हुआ, उससे बहुतों को धक्का लगा और अचरज हुआ। जिस तरीके से समझौता किया गया और उसके लिए जो मौका चुना गया, उसे छोड़कर उसमें कोई बात अचरज की नहीं थी। किसी दूसरे वक्त रूस की विदेशी नीति के साथ वह कुदरतन् मेल खा सकता था। लेकिन इसमें शक नहीं कि उस खास अवसर पर उससे रूस के बहुत से दोस्तों को अचम्भा हुआ। ऐसा लगा कि उसमें उसकी बहुत बड़ी ज्यादती, शरारत और मौके से फायदा उठाने की वृत्ति थी। यह आलोचना हिटलर पर भी लागू होती थी, जिसने रातों-रात अपना उग्र साम्यवाद-विरोध छोड़ दिया और जाहिरा तौर पर रूस के साथ दोस्ती कर ली। एक शरारती आदमी ने ताने के साथ कहा कि रूस ने कॉमिन्टर्न-विरोधी समझौता कर लिया है, दूसरे ने कहा कि हिटलर साम्यवादी और यहूदियों का हामी होता जा रहा है। यह सब हमको वाहियात मालूम होता है; क्योंकि हिटलर और स्टेलिन के बीच कोई असली समझौता नहीं हो सकता और न होने जा रहा है। बल्कि दोनों सत्ताधारी राजनीति के खेल खेलना चाहते हैं। रूस ने इंग्लैण्ड के हाथों इतनी बेइज्जती सही है कि वह इसकी कड़ी मुखालफ़त करेगा ही।

सोवियट के पूर्वी पौलेण्ड में घुस आने से एक धक्का और लगा; लेकिन अभी यह कहना मुश्किल है कि आया ऐसा जर्मन फौज का मुकाबिला करने के लिए या पौलेण्डवालों को कमजोर करने के लिए या एक राष्ट्रवादी दृष्टि-बिन्दु से किसी खास मौके से फ़ायदा उठाने के लिए हुआ था। बहरहाल जो थोड़ी-बहुत खबर हमें मिली है, उससे पता चलता है कि रूस के पोलैण्ड में बढ़ने से निश्चित ही जर्मनी के इरादों में रुकावट हुई है। उससे जर्मनी

के पूर्वी पोलेण्ड को ले लेने में भी रोक लगी और जर्मन फौज को रुकना पड़ा। इससे भी ज्यादा महत्त्व की बात सोवियट फौज का पालिश रूमानियन सीमा को ले लेना है। इससे यह निश्चित हो गया है कि जर्मनी रूमानिया के तेल के इलाकों पर क़ब्जा नहीं कर सकता कि जिसपर उसकी घात थी और शायद रूमानिया की गेहूँ की भारी रसद भी नहीं हथिया सकता। बाल्कन राज्य जर्मनी के हमले से बच गये हैं और तुर्की ने तसल्ली की साँस ली है। भले ही आज इस सबका मतलब कुछ न हो; लेकिन आयन्दा ज्यों-ज्यों लड़ाई आगे बढ़ेगी, त्यों-त्यों इसका बहुत ही महत्त्व होता जायेगा। इस तरह सोवियट रूस ने पश्चिमी मित्र-राष्ट्रों के काम में भारी मदद की है और बर्नार्ड शॉ के इस कथन में कुछ सचाई है कि स्टालिन ने हिटलर को अपने हाथ की कठपुतली बना लिया है।

हेर हिटलर ने अपने डान्जिग के भाषण में डराया है कि उसके पास एक भयकर गुप्त हथियार है और अगर स्थिति ने मजबूर किया तो वह भले ही वह कितना ही हैवानियत भरा हो उसे इस्तेमाल करने में नहीं हिचकिचायेगा। कोई नही जानता कि यह अनोखी भयकर चीज क्या है ? मौत की फाँस है या वैसी ही कोई चीज ? हो सकता है कि यह कोरी डींग ही हो। हरेक ताकतवर राष्ट्र के शस्त्रागारों में आज मानवजाति के लिए काफी भयकर अस्त्र-शस्त्र है; और ज्यों-ज्यों लड़ाई बढ़ेगी, त्यों-त्यों उस भयंकरता में भी बढ़ती होगी और विज्ञान की सारी शक्तियाँ युद्ध की न बुझनेवाली खूनी प्यास को बुझाने के लिए जुटायी गयी है। हम नही कह सकते कि इस भयानक चढा-ऊपरी में किस पक्ष को लाभ रहेगा ?

काफ़ी सहार करनेवाले और बर्बादी ढानेवाले होते हुए भी हवाई जहाज अबतक एक महत्त्वपूर्ण चीज नहीं रहे, जैसा कि कुछ ८ ओर

रखते थे। शायद अभी हमने इससे पूरा-पूरा लाभ उठाया जाता देखा नहीं है। लेकिन स्पेन और चीन में जो अनुभव हुआ है, उससे और हवाई जहाजों के हमले से बचाव के साधनों में जो उन्नति हुई है उससे पता चलता है कि हवाई अस्त्र निपटारा करनेवाली चीज़ न होंगे।

कहा जाता है इस बात का मौक़ा है कि शायद हिटलर अपने पोलैण्ड की लड़ाई खत्म होजाने के बाद सुलह करने की कोशिश करे या मुसोलिनी इस बारे में उसकी तरफ़ से कुछ करे। लेकिन शान्ति तब भी नहीं होगी, क्योंकि शांति का मतलब तो है हिटलर की जीत होना और उसकी ताक़त के आगे इंग्लैण्ड और फ्रांस का झुकआना और इंग्लैण्ड या फ्रांस में संतुष्ट करने की नीति के कुछ हामी भले ही हों, लेकिन वहाँ के लोगों का स्वभाव उन्हें वैसा करने न देगा। कुछ-कुछ सम्भावना इस बात की भी है कि जर्मनी में अन्दरूनी कठिनाई उठ खड़ी हो जो लड़ाई को जल्दी खत्म करा दे। लेकिन युद्ध की इस शुरू की अवस्था में उसके आसरे रहना भी खतरे से खाली नहीं है। इसलिए ऐसा दीखता है कि लड़ाई लम्बी, दो-तीन बरस तक, चलेगी।

इस लड़ाई में बहुत ज्यादा अनिश्चित बातें हैं जिनकी वजह से कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। लेकिन फिर भी आदमी के दिमाग़ को आगे देखना चाहिए और भविष्य के परदे में झाँकने की कोशिश करनी चाहिए। भविष्य तो यही बताता दीखता है कि लड़ाई का क्षेत्र बढ़ेगा और अधिक-से-अधिक राष्ट्र उसमें खिच आवेंगे। फलस्वरूप यह युद्ध विश्व-व्यापी युद्ध हो जायेगा, जिसमें तटस्थ रहनेवाले देशों की कोई गिनती न होगी और बरबादी ढाता हुआ, हत्याएँ करता हुआ, दुनिया को उजाड़ता और मिटाता हुआ साल पर साल यह युद्ध चलता रहेगा; और तब युद्ध से जर्जर मानव-जाति को समझ आयेगी और वह

उसके खिलाफ़ बग़ावत करके उसका अन्त करेगी।

इस लम्बी लड़ाई में फ़ायदे सभी पश्चिमी मित्र-राष्ट्रों को हैं। उनके आर्थिक साधन जर्मनी की बनिस्बत कहीं बड़े-बड़े हैं और वे दुनिया के बहुत बड़े हिस्से पर निर्भर रह सकेंगे। जर्मनी के पनडुब्बियां जहाज़ों की हलचलों और हवाई जहाज़ों के साधनों के बावजूद समुद्री रास्ते सब क़रीब-क़रीब उन्हीं के क़ब्ज़े में हैं। अमरीका, एशिया और अफ्रीका उन्हें बहुत-सी ज़रूरत की चीज़ें दे देंगे, जबकि जर्मनी के साधन जुटाने के स्रोत तो बहुत थोड़े-से हैं। सोवियट रूस क्या करेगा, फ़िलहाल हम छोड़े देते हैं। सैनिक और आर्थिक दृष्टि से उसका भारी महत्त्व हो सकता है; लेकिन यह तो हम बहुत ही अनहोनी बात दिखायी देती है कि रूस नात्सी जर्मनी को मदद दे।

दूसरे देश अगर लड़ाई में शरीक हुए तो सिर्फ़ इटली और जापान के ही जर्मनी के साथ होने की सम्भावना है। रूस कुछ हद तक जापान की फ़ौजी तैयारियां रोक देगा। चीन पर अपने हमले के सबब से वह मजीदा होगया है। इटली का भूमध्यसागर में महत्त्व होगा; लेकिन खास नहीं। एक तटस्थ देश रहकर और खाने की व दूसरी ज़रूरत की चीज़ें भेजकर और इस तरह नाकेबन्दी को तोड़कर जर्मनी के लिए वह ज़्यादा फ़ायदेमन्द भी हो सकता है। कुछ भी हो, इंग्लैण्ड और फ्रांस के खिलाफ़ लड़ाई इटली में बहुत पसन्द नहीं की जायेगी। कहा जाता है कि सिन्योर मुसोलिनी का हेर हिटलर से जो प्रेम था वह भी हल्का पड़ गया है। फिर भी इटली का जर्मनी से मिल जाना मुमकिन है।

अगर संयुक्तराज्य अमरीका पश्चिमी मित्र-राष्ट्रों से मिल गया तो उनको बहुत ज्यादा ताक़त हासिल हो जायेगी। फ़िलहाल तो संयुक्त-राज्य की मनोवृत्ति तटस्थ रहने की है; लेकिन उससे बड़ी-बड़ी तो

उनके युद्ध और शान्ति के ध्येय स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र और आत्मनिर्णय हों जिससे कि दुनिया के राष्ट्र इस बात को जान लें और विश्वास करलें कि जिन उद्देश्यों के लिए वे इतनी भारी कीमत दे रहे हैं वे इस लायक हैं। साम्राज्यवाद को जारी रखने के लिए वे नहीं लड़ेंगे, न बलिदान देंगे। इसका अन्तिम निर्णय तो दुनिया के हाथों होगा, न कि उन सरकारों के हाथों जो अबतक उन्हें गलत रास्ते पर लेगयी हैं। अगर सरकारें उनकी मर्जी के अनुसार नहीं चलेंगी तो उन्हें बरखास्त होना होगा और उनकी जगह दूसरी सरकारें आवेंगी।

२१ सितम्बर, १९३९.

३

पश्चिमी मित्र-राष्ट्रों के बताये हुए युद्ध के ध्येय क्या हैं ? हमसे कहा गया है कि वे प्रजातन्त्र और आज़ादी लाने, नात्सी शासन और हिटलरशाही का अन्त करने और पोलैण्ड को मुक्त कराने के लिए लड़ रहे हैं। मि० चेम्बरलेन ने अब इतना और कह दिया है कि चेको-स्लोवाकिया को भी स्वतन्त्र किया जायेगा। माना, लेकिन यही सब काफी नहीं है। तभी तो कार्य-समिति ने जो ब्रिटिश सरकार से युद्ध और शान्ति के ध्येय पूरे तौर पर बगैर किसी लाग-लपेट के बता देने को कहा है, वह महत्त्वपूर्ण है।

अपनी दलील को हम और आगे लेजायें। अगर हिटलरशाही का अन्त होना है, तो उससे जरूरी तौर पर यह नतीजा निकलता है कि किसी भी फासिस्ट सत्ता से—जर्मनी को छोड़कर और किसीसे भी—कोई सुलह या समझौता नहीं होना चाहिए। इसका मतलब यह है कि जापानियों और इटैलियनों के हमले को हमें मंजूर नहीं करना

चाहिए और हमारी नीति यह होनी चाहिए कि चीन को हम उसकी आज़ादी की लड़ाई में जितनी मदद पहुँचा सकें पहुँचायें। इसका मतलब यह भी है कि हमारी जो नीति फ़ासिज्म पर लागू होती है, वही साम्राज्यवाद पर भी लागू होनी चाहिए और इन दोनों का खात्मा कर देना चाहिए! हर हालत में, अन्तर्राष्ट्रीय रद्दोबदल के अलावा भी हिन्दुस्तान को आज़ाद और खुदमुख्तार होना चाहिए। लेकिन फ़िलहाल हिन्दुस्तान की आज़ादी पर हम विश्वव्यापी साम्राज्यवाद के सिलसिले में विचार करते हैं। एक तरफ़ फ़ासिज्म की निन्दा करके दूसरी तरफ साम्राज्यवाद की हिमायत करने या उसे क़ायम रखने की कोशिश करना तो बेतुका और वाहियात है। वह दुनिया, जिसमें कि फ़ासिज्म का काफी बोलबाला रहा है, साम्राज्यवाद को बर्दाश्त नहीं कर सकती। इसलिए फ़ासिज्म के खिलाफ लड़ाई का लाजिमी नतीजा यह होगा कि साम्राज्य-वाद का भी खात्मा होना चाहिए, नहीं तो उस लड़ाई का सारा-का-सारा उद्देश्य ही गड़बड़ा जाता है और वह कई प्रतिस्पर्द्धी साम्राज्यवादों की ताक़त हासिल करने का झगड़ा बन जायेगी।

इस तरह लड़ाई के ध्येयों के स्पष्टीकरण में नीचे लिखी बातें होनी चाहिएँ: हिटलर ने जो देश ले लिये हैं उनका छुटकारा, नात्सी शासन का खात्मा; फ़ासिस्ट सत्ता के साथ किसी तरह का सुलह या समझौता न होना, साम्राज्यवादी ढाँचे का खात्मा करके प्रजातन्त्र और आज़ादी लाना और आत्म-निर्णय के सिद्धान्त पर अमल होना। बेशक गुप्त संधियाँ नहीं होनी चाहिएँ, न दूसरे देशों को जीतना, न मुआवजे और न औपनि-वेशिक क्षेत्रों पर सौदा ही होना चाहिए। उपनिवेशों में भी आत्मनिर्णय का सिद्धान्त लागू होना चाहिए और उनके प्रजातन्त्रीकरण के लिए क़दम उठाये जाने चाहिएँ। क़ौमियत की बुनियाद पर जो भेद-भाव हैं, सब मिट

जाने चाहिएँ। उपनिवेशों की जनता की लाशों पर हम शान्ति या सन्धि का समझौता नहीं होने दें सकते।

हम इन सुझावों को सौदे की भावना से पेश नहीं कर रहे हैं और न दूसरे की मुसीबत से फायदा उठाने की हमारी जरा भी मंशा है। उस मुसीबत पर हम तो अपनी हमदर्दी जाहिर करते हैं। लेकिन उस मुसीबत के आगे हम अपनी मुसीबतें और बेबसियाँ थोड़े ही भूल सकते हैं। अगर हम पोलैण्ड या चेको-स्लोवाकिया की आज़ादी चाहते हैं, तो उससे कहीं ज्यादा हम चीन की आज़ादी चाहते हैं। यह कोई संकीर्ण स्वार्थ नहीं है जो हमें हिन्दुस्तान की आज़ादी को पहला दर्जा देने के लिए मजबूर करता है। अगर हमारे पास खुद आज़ादी नहीं है, तो किसी आज़ादी का हमारे लिए कोई मतलब नहीं हो सकता और अगर हम दूर देश की आज़ादी के लिए तो शोर मचाया करें मगर खुद गुलाम बने रहें तो यह कोरा मज़ाक ही होगा। लेकिन लड़ाई के दृष्टिकोण से देखा जाये तो भी उस लड़ाई को लोकप्रिय बनाने की खातिर वह आज़ादी जरूरी है, क्योंकि ऐसा होने से ही लोगों को एक ऐसे उद्देश्य के लिए हिम्मत और बलिदान करने की प्रेरणा मिलती है जिसे वे अपना समझते हैं। ज्यों-ज्यों यह लड़ाई महीने-पर-महीने और साल-पर-साल चलेगी और सब मुल्कों के लोगों पर थकान चढ़ेगी तो अपनी गाढ़ी कमाई की आज़ादी को बचाने की यह प्रेरणा ही अखीर में काम आयेगी। आर्थिक स्वार्थ-वाली किराये की फ़ौजों से, चाहे वे कितनी ही कुशल क्यों न हों, लड़ाई में जीत नहीं होगी।

हिन्दुस्तान के बारे में ब्रिटिश सरकार को जो पहला कदम उठाना है वह यह है कि खुले आम यह ऐलान हो जाना चाहिए कि हिन्दुस्तान आज़ाद और खुदमुख्तार राष्ट्र है और उसको अपना विधान खुद बनाने

का अधिकार है। हमें मानना पड़ेगा कि इस ऐलान पर एकदम ही पूरी तरह से अमल नहीं किया जा सकता; लेकिन जैसा कि कार्य-समिति ने बताया है इतना तो ज़रूरी है ही कि जिस हद तक मुमकिन होसके उस हद तक फिलहाल उसे अमल में लाया जाये; क्योंकि यह अमल ही तो है जो लोगों के दिमाग़ों और दिलों को छूता है और जिसका असर दुनिया पर पड़ता है। यही वह तोहफ़ा है जिसके दिये जाने से लड़ाई की गतिविधि संचालित होने लगेगी और उसे वह ताकत मिलेगी जो बड़े कामों में जनता की इच्छा से है। हम कुछ भी करें, वह हमारी स्वतन्त्र इच्छा व पसन्द का होना चाहिए और सिर्फ तभी सम्मिलित प्रयत्न सचमुच सम्मिलित बन सकेगा, क्योंकि वह एक कार्य में हाथ बँटानेवाले कइयों के स्वतंत्र सहयोग पर निर्भर होगा।

बदक़िस्मती तो यह है कि ब्रिटिश सरकार ने, जैसा कि उसका कायदा है, ऐसी कार्रवाई कर डाली है कि हमारा वाजिब तौर पर उधर बढ़ना मुश्किल हो गया है। हालाँकि वह अच्छी तरह जानती थी कि हम गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट में संशोधन करनेवाले बिल के बिलकुल खिलाफ थे—तो भी उसने उसे कामन सभा में सब वाचनों में ठीक ११ मिनटों में पास कर दिया। इधर हिन्दुस्तान में उसी तरह कानून और आर्डिनेंस झटपट बना डाले गये। भारत-मन्त्री की कचहरी और हिन्दुस्तान की सरकार अब भी गये-गुजरे जमाने में रहती है। न तो वह तरक्की करती है, न सीखती है, न याद रखती है, यहाँतक कि लड़ाई का धक्का लगने पर भी उनको दिमाग़ी तरीके या उनके पुराने ढंग पर कोई ज्यादा असर नहीं पड़ा है। वे हिन्दुस्तान को पक्का माने बैठे हैं—यह नहीं समझते कि इस कायापलट के जमानें में कोई चीज़ पक्की नहीं मानी जा सकती, फिर हिन्दुस्तान की तो बात ही क्या जो कि ऊपर सतह

मे चुपचाप दीखते हुए भी सब तरह की ताक़तों और जोरदार जरूरतों मे आन्दोलन हो गया है।

तो भी नजदीक आने की मुश्किल के होते हुए भी कार्य-समिति ने, सच्ची राजनीतिज्ञता के साथ अपना हाथ बढाकर अंग्रेजों और उन तमाम लोगों को जो आजादी के लिए जद्दोजहद कर रहे हैं, अपने सहयोग का वचन दिया---मगर हिन्दुस्तान शान और आजादी के साथ ही सहयोग कर सकता है वरना उसके सहयोग की कोई कीमत नहीं। दूसरा कोई रास्ता है तो जबर्दस्ती का है और उसे सहने की हमें आदत नहीं रही है।

मौजूदा बात हिन्दुस्तान की आजादी पर लागू करना कैसे और किस हद तक जरूरी है ? यह साफ है कि जो कुछ हम करें हमारी स्वतन्त्र इच्छा से और अपने फैसले के मुताबिक करेंगे। लड़ाई से ताल्लुक रखनेवाले मामलों में कारंवाई करने की बराबरी होनी ही चाहिए, भले ही वह कानून की किताब में न लिखी जा सके। देखने में हिन्दुस्तान लड़ाई में लगा हो, लेकिन इस देश में युद्ध की हालत है कहाँ ? और इसकी बिलकुल कोई वजह नहीं है कि मामूली तौर पर चलनेवाले धारासभाओं और न्यायालयों के कामो के बदले गैरमामूली कारंवाइयाँ की जाये। इन गैरमामूली कारंवाइयों का जमाना गया। अब तो उनको गड़ा मुर्दा ही रहने देना चाहिए और प्रान्तीय धारासभाओं और प्रान्तीय सरकारो के जरिए तमाम जरूरी कदम उठाये जाने चाहिएँ। ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने संशोधन करनेवाला जो कानून पास किया है उसे भी गडा मुर्दा ही रहने देना चाहिए और जहाँ तक प्रांतीय सरकारों का ताल्लुक है उनके अधिकारों और उनकी प्रवृत्तियों पर किसी कदर रोक नही लगनी चाहिए। वे मर्यादाएँ और वे किलेबन्दियाँ जैसी कि विधान में है अमल में नहीं आनी चाहिएँ। इस हद तक तो कोई दिक्कत नहीं है।

लेकिन यह जरूरी है कि इस बीच के अर्से में भी हिन्दुस्तान के नुमाइन्दों का बाहरी मामलों में हथियारबन्द फौजों और आर्थिक मामलों म केन्द्रीय नीति और हलचलों (प्रवृत्तियों) पर कब्जा होना चाहिए।

यही एक रास्ता है जिससे सर्वसम्मत नीति पर चला जा सकता है। इस काम के लिए कोई आर्ज़ी तरीक़ा सोच निकालना होगा। आजकल के कानून में संशोधन कर देने से यह काम नहीं हो सकता। जब हिन्दुस्तान का बनाया हुआ विधान बनेगा तो सारे-के-सारे एक्ट को ही रद्द करना होगा। यह हो सकता है कि इस बीच सब की राय से कोई कारगर आर्ज़ी इन्तजाम कर दिये जायें।

यह साफ है कि अगर हिन्दुस्तान की युद्ध-नीति को जनता का समर्थन और मदद दिलाना है, तो जनता के चुने हुए ऐसे प्रतिनिधि ही उसे चलायें जिनमें लोगों को विश्वास हो। यह कोई आसान काम नहीं है कि पीढ़ियों से जो विचार बने हुए आ रहे हैं उन्हें दबा दिया जाये और अपने देशवासियों को इसे अपना ही उद्योग समझने को मजबूर किया जाये।

यह तो सिर्फ तभी हो सकता है जबकि उन्हें अपनी नीति समझाकर और उन्हें यह भरोसा दिलाकर कि इससे उनका तो भला होगा ही, दुनिया का भी भला होगा—अपने विश्वास में लिया जाये। इसी तरीके पर जनतंत्र काम करता है। हमें लड़ाई को चलानेवाली बड़ी-बड़ी नीतियों को भी जानना पड़ेगा, ताकि हम अपने लोगों और दुनिया के आगे उनका औचित्य सिद्ध कर सकें।

एक राष्ट्र की युद्ध-नीति में पहले उस देश की रक्षा पर विचार किया जाना लाजमी है। हिन्दुस्तान को यह महसूस होना चाहिए कि वह अपनी ही रक्षा करने में और अपनी ही आजादी को बचाने और दूसरे देशों में

हो रही आजादी की जद्दोजहद में मदद पहुँचाने को अपना हाथ बँटा रहा है।

फौज को भी एक राष्ट्रीय फौज समझना होगा, तनख्वाहदार फौज नहीं कि जो किसी और में अपनी भक्ति रखती हो। इसी राष्ट्रीयता के आधार पर भर्ती होनी चाहिए ताकि हमारे सिपाही निरे तोप के गोलों के शिकार न होकर अपने देश और अपनी आजादी के लिए लड़नेवाले हों। इसके अलावा यह भी जरूरी होगा कि मिलीशिया के आधार पर बड़े पैमाने पर नागरिक रक्षा की व्यवस्था भी की जावे। यह सब काम सिर्फ जनता की चुनी हुई सरकार ही कर सकती है।

इससे भी बड़ी महत्त्व की बात है युद्ध-संबंधी और दूसरी आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाले उद्योगों की बढ़ती करना। लड़ाई के जमाने में हिन्दुस्तान में उद्योगों की तरक्की बड़े पैमाने पर की जानी चाहिए। उन्हें भाग्य भरोसे ही नहीं छोड़कर बढ़ने देना चाहिए बल्कि उनकी योजना बननी चाहिए और राष्ट्रीय हित की दृष्टि से उनपर कब्जा होना चाहिए और मजदूर-कारीगरों को उचित संरक्षण दिया जाना चाहिए। इस काम में राष्ट्र-निर्माण-समिति बड़ी मदद कर सकती है।

ज्यों-ज्यों लड़ाई बढ़ती और ज्यादा पर ज्यादा सामग्री समेटती जायेगी त्यों-त्यों आयोजना के साथ उत्पत्ति और वितरण की व्यवस्था दुनिया भर में होगी और धीरे-धीरे विश्वव्यापी अर्थनीति की योजना बनेगी। पूँजीवादी प्रणाली को कोई नहीं पूछेगा; और हो सकता है कि उद्योगों पर अन्तर्राष्ट्रीय आधिपत्य हो जावे। ऐसे आधिपत्य में एक महत्त्वपूर्ण उत्पादक देश के नाते हिन्दुस्तान का हाथ होना चाहिए।

अन्त में शान्ति-परिषद् में हिन्दुस्तान को एक स्वतन्त्र राष्ट्र की हैसियत से बोलने देना चाहिए। हमने यह बतलाने की कोशिश की है

कि जो लोग जनतन्त्र की दुहाई दिया करते हैं उनके युद्ध और शान्ति के उद्देश्य क्या होने चाहिएँ और खासकर उनको हिन्दुस्तान पर किस प्रकार लागू किया जाना चाहिए। यह सूची पूरी नहीं है, पर यह एक ठोस नींव है जिसपर निर्माण हो सकता है, और उस आवश्यक प्रयत्न के लिए प्रेरणा मिल सकती है। हमने यहाँ युद्ध के बाद नयी विश्वव्यवस्था की समस्या को नहीं छुआ है, हालाँकि हमारे खयाल से ऐसी पुनर्व्यवस्था बहुत जरूरी और अनिवार्य है।

क्या दुनिया के और खासकर लड़ाई में लगे हुए देशों के राजनेता और निवासी इतनी समझ और दूरदृष्टि पैदा करेंगे कि हमारे बताये रास्ते पर चल सकें ? हम नहीं जानते। मगर यहाँ हिन्दुस्तान में हम अपने भेदभाव--वाम और दक्षिण पक्ष--को भूल जायँ और इन महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार करें जो हमारे सामने हैं और अपना हल पाने का आग्रह कर रही हैं। दुनिया के पेट में कई सम्भावनाएँ हैं। कभी उसे कमजोरों, बेकामों और बिखरे हुओं पर रहम नहीं आता। आज जबकि राष्ट्र जीवित रहने के लिए जी-जान से लड़-भिड़ रहे हैं तब केवल वे ही लोग बनते हुए इतिहास में हिस्सा बँटायेंगे जो दूरदर्शी और अनुशासन में होंगे।

२३ सितम्बर, १९३९

: १० :

अंग्रेज़ जनता के प्रति

['न्यूज़ क्रॉनिकल' (लन्दन) को भेजा गया एक संदेश]

यूरप में आज हिंसा और अमानुषतापूर्ण युद्ध का तूफान फैला हुआ है और उससे दुनिया भर की सभ्यता का ताना-बाना बिखर जाने का खतरा है। हथियारों की टक्करें तो हैं ही, मगर उनके पीछे खयालात और उद्देश्यों की गहरी टक्करें भी हो रही हैं और दुनिया का भविष्य काँटे पर झूल रहा है। इतिहास न सिर्फ लड़ाई के मैदानों में तैयार हो रहा है बल्कि आदमियों के दिमाग़ों में भी बन रहा है और खास सवाल सामने यह है कि जो इतिहास बनने जा रहा है क्या वह गुज़रे हुए ज़माने की तवारीख़ से मुख़्तलिफ होगा? और क्या इस भयंकर लड़ाई का मानवीय स्वतन्त्रता पर भारी असर पड़ेगा और लड़ाई के और मानवीय अधोगति के मूल कारणों को ही मिटा देगा? हिन्दुस्तान को आज़ादी की चाह है और लड़ाई और हिंसा से वह डरता है। उसके लिए यह सवाल सबसे ज्यादा महत्त्व का है। उसने फासिज़्म की फिलासफी और साधनों का, नात्सी हमलों का और हैवानियत का ज़ोरदार विरोध किया है और उनमें उन्हीं सिद्धान्तों को नदारत पाया है जिनका वे दावा करते हैं। हिन्दुस्तान तो विश्वशान्ति का अर्थ करता है स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र हासिल होना और एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र पर हुकूमत का खातमा होना। इसलिए हिन्दुस्तान ने मंचूरिया, अबीसीनिया, चेकोस्लोवाकिया पर हुए हमलों की निन्दा की और स्पेन की घटनाओं और पोलैण्ड पर हुए नात्सियों के हैवानियत से भरे हमले से उसे गहरी चोट पहुँची।

इसलिए हिन्दुस्तान बड़ी खुशी के साथ संसार में शान्ति और स्वतन्त्रता की नयी व्यवस्था स्थापित करने में अपने तमाम साधन जुटायेगा।

अगर इस प्रकार की शान्ति कायम करना ही ध्येय है तो युद्ध और शान्ति के उद्देश्यों की व्याख्या साफ़-साफ़ की जानी चाहिए और आज उन्हींके मुताबिक काम होना चाहिए। वैसा न करना या हिचकिचाना इस बात को जाहिर करना है कि कोई साफ़ उद्देश्य नहीं है और जो कुछ अन्धाधुंध कह दिया जाता है उसके मानी गम्भीरतापूर्वक नहीं लगाये जाते। इससे उन सब लोगों को अंदेशा होना वाजिब है कि जिन्होंने कड़वे तजुर्बे करके यह जान लिया है कि युद्ध उन उद्देश्यों को दवा लेते हैं और इसका नतीजा यह होता है कि प्रभुत्व हासिल करने और अपने को सुरक्षित रखनेवाला साम्राज्यवाद आ जाता है। यदि यह युद्ध प्रजातन्त्र और आत्मनिर्णय के पक्ष में और नात्सी हमलों के मुखालफ़त के लिए लड़ा जा रहा है तो वह प्रदेशों को कब्जे में करने, क्षतिपूर्ति (हरजाना) देने या मूल-संशोधन करने, उपनिवेशों के आदमियों को गुलामी में जकड़े रखने और साम्राज्यवादी तन्त्र को बनाये रखने के लिए नहीं लड़ा जाना चाहिए।

इसी आवश्यक कारण को लेकर कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से अपने युद्ध और शान्ति के उद्देश्यों को साफ़-साफ़ शब्दों में बताने और खासकर इसकी घोषणा करने को कहा है कि वे उद्देश्य इस साम्राज्यवादी व्यवस्था पर और भारत पर किस प्रकार लागू होते हैं? हिन्दुस्तान साम्राज्यवाद को बचाने के लिए कोई हिस्सा नहीं ले सकता—हाँ, स्वतन्त्रता के लिए कशमकश करने में जुट सकता है। हिन्दुस्तान से मदद पाने के साधन बहुत हैं, मगर इससे अधिक कीमती हैं एक समुचित उद्देश्य के प्रति उसका नैतिक समर्थन व उसकी सद्भावना। आज हिन्दुस्तान उसके और इंग्लैंड

सचाई में संदेह करते हैं और दूसरा यह कि जो कुछ कहा जाता है उसमें और जो कुछ किया जाता है उसमें फ़र्क है।

इसलिए सबसे पहला क़दम यह होना चाहिए कि हिन्दुस्तान के पूर्ण स्वतन्त्र होने की घोषणा करदी जाये। और इसके बाद इसपर अमली कार्रवाई होनी चाहिए—यानी जहाँतक हो सके वहाँतक हिन्दुस्तानियों को हिन्दुस्तान की हुकूमत करने और अपनी तरफ़ से युद्ध को चलाने के अधिकार मिल जायें। तभी यह मुमकिन है कि ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति उत्पन्न हो जिससे जनता का समर्थन मिल सके। स्वेच्छाचारी और दमनकारी कानूनों की हुकूमत से तो जनता की सहानुभूति जाती रहेगी और टक्कर शुरू हो जायेगी। कठिनाइयाँ तो इस समय ही पैदा हो रही हैं—सार्वजनिक कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गये हैं और हिन्दुस्तान के कई प्रान्तों में जनता और मज़दूरों की हलचलों पर कड़ी पाबन्दियाँ लगा दी गयी हैं। यह वही पुराना तरीका है जो पहले भी सफल नहीं हो सका और फिर भी नाकामयाब रहेगा।

हिन्दुस्तान पिछले ज़माने के विरोध को भुलाकर अपना दोस्ताना हाथ आगे बढ़ाना चाहता है। लेकिन वह सिर्फ समता के सिद्धान्तों पर स्वतन्त्र देश बनकर ही ऐसा कर सकता है। उसे यह विश्वास होना वाजिब है कि वह पुराना जमाना गुज़र गया है और हम सब यूरोप में ही क्या, एशिया और तमाम दुनिया में एक नयी व्यवस्था कायम करने जा रहे हैं। हिन्दुस्तान का यह न्यौता ब्रिटिश सरकार को अकेले उसीकी तरफ से नहीं बल्कि शान्ति, स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र में विश्वास रखनेवाले दुनिया के सब लोगों की तरफ से है। अगर इस इशारे का गहरा अर्थ नहीं समझा गया और उसकी पूरी-पूरी सुनवाई न हुई—तो यह

हम सबके लिए दुखदायी घटना होगी। लेकिन अगर सुलह हुई तो तमाम दुनिया के लोगों को खुशी होगी और मैदाने जंग में जीत जाने से नात्सीवाद को जितनी चोट लगेगी, उससे कहीं ज्यादा चोट इससे पहुँचेगी।

५ अक्तूबर, १९३९

: ११ :

ब्रिटेन किसलिए लड़ रहा है ?

विजेताओं और सरकारों ने हमेशा से युद्ध के उद्देश्यों के बारे में जो भिन्न-भिन्न वक्तव्य दिये हैं, उन्हें संग्रह करना और पढ़ना इतिहास के विद्यार्थी के लिए एक बड़ी दिलचस्प और शिक्षाप्रद बात होगी। हमेशा धार्मिक या सामाजिक दृष्टि से ऊँचे-से-ऊँचे नैतिक आधार पर इनका समर्थन किया हुआ मिलेगा। किसी ऊँचे सिद्धान्त की खातिर हरेक आक्रमण उचित और हरेक नृशंसता क्षम्य कह दी जाती है! अक्सर उसे पता चलेगा कि अंत में शान्ति स्थापित करने की लगन विजेता और आक्रान्ता को आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। क्या हेर हिटलर तक ने ऐसा ही नहीं कहा है? हाल ही में युद्ध के घोषित उद्देश्यों का एक लुभावना संग्रह इंग्लैण्ड में प्रकाशित हुआ था। उसमें दो हज़ार वर्ष पीछे तक की बातें थीं। पढ़कर अचरज होता था। वही भाषा, वही शान्ति के लिए जोशीला प्रेम सौ या हज़ार बरस पहले दिये गये उन लड़ाई आरम्भ करनेवाले बादशाहों और सम्राटों के वक्तव्यों में था कि जैसा आजकल हम पढ़ते हैं। हर किसीको क़रीब-क़रीब ऐसा खयाल हो सकता था कि कुछ जबानी हेर-फेर के साथ मि० नेविल चेम्बरलेन ही बोल रहे हैं, कोई मध्यकालीन शासक नहीं।

इस संग्रह में पच्छिमी देशों के बारे में बातें थीं; लेकिन हमें सन्देह नहीं कि वैसा ही संग्रह पूर्वीय शासकों के वक्तव्यों से भी तैयार किया जा सकता है। उम्दा शब्दों और पवित्र सिद्धान्तों की आड़ में अपने असली ध्येयों को छिपाना इंसान का दोष है, जो पूर्व और पश्चिम दोनों में

पाया जाता है। शायद ही ऐसे शासक हुए हों जिन्होंने इस तरीक़े से अपने दुष्कर्मों को छिपाने की कोशिश न की हो। दो हज़ार वर्ष पहिले हिन्दुस्तान में राजाओं में बेमिसाल एक राजा था अशोक महान्। जब वह खूब देश जीत रहा था तब उसने युद्ध की भयकरता अनुभव की और अपना हृदय खोलकर रख दिया था।

जब हम इन वक्तव्यों और औचित्यों का पिछला लेखा देखते हैं तो हममें थोड़ी-सी मायूसी भर आती है या हम चिड़चिड़े हो उठते हैं। क्या मानवता हमेशा एक ही तरह की धोखेधड़ी से गुज़रने के लिए है और क्या मुँहबोले शब्दों और खोटे कामों के बीच हमेशा ही इतनी चौड़ी खाई बनी रहेगी? फिर भी जब-जब ये बहादुराना वक्तव्य दिये जाते हैं, तब-तब हममें आशा भर आती है और अपने पुराने सभी अनुभवों के खिलाफ़ हम यह विश्वास करने की कोशिश करते हैं कि कम-से-कम इस बार तो शब्दों को अमल में लाया जायेगा। १९१४ और उसके बाद यही हुआ। लाखों ने विश्वास किया—और फ़ज़ूल किया—कि युद्ध युद्ध का अन्त करने के लिए है और वह हमारी इस अभागी धरती पर शान्ति और आज़ादी कायम करेगा। लड़ाई ने क्या विरासत छोड़ी यह हम जानते हैं। राजनीतिज्ञों का छल,कपट और विश्वासघात भी हम जानते हैं और यह भी हम अच्छी तरह से जानते हैं कि उसके बाद से कितना खतरा हमारे पीछे लगा है।

और अब २५ वर्ष बाद फिर वही शब्द दोहराये जा रहे हैं, उसी तरह के पवित्र वक्तव्य दिये जा रहे हैं और बहुत से मुल्कों के युवक जो पुरानी धोखे-धड़ियों को नहीं जानते या उन्हें भूले हुए हैं, पर जो श्रद्धालु और बड़े जोशीले हैं, मृत्यु के मुँह में जा रहे हैं। लेकिन क्या हमको वही चक्कर फिर से काटना ज़रूरी है? अब नहीं, हम सब कहते हैं, कभी

शायद मानवता राजनीतिज्ञों और उन लोगों के ओछे छल-कपटों
ज़रूरत से ज्यादा वक्त से हमारे भाग्य-निर्णायक रहे हैं, ऊँची
। लेकिन इस बारे में हमें बहुत अधिक भरोसा नहीं करना
हुए, क्योंकि इंसान जो चाहते हैं उसपर भरोसा करने की उनमें
द शवित होती है और इसलिए वे धोखे में आ जाते हैं।

जबसे यूरोप में मौजूदा लड़ाई छिड़ी, तबसे आम जनता में लेकिन
स्पष्ट रूप से यह बात चल पड़ी थी कि लड़ाई के उद्देश्य क्या हैं ?
ौर अधिकारी व्यक्तियों ने स्पष्ट रूप से ही उसका जवाब भी दे
दिया था। उसके बाद १४ सितम्बर की कांग्रेस की कार्य-समिति का
वक्तव्य आया और पहले-पहल एक ऐसे संगठन नें, जिसका दुनिया भर
में नाम है, कोशिश की कि लड़ाई के उद्देश्यों की साफ़-साफ़ परिभाषा
बतायी जाये। वक्तव्य हिन्दुस्तान के बारे में ज़रूर था, लेकिन उनमें
दुनिया भर के सामने आये हुए खास मसले पर विचार किया गया था,
जो कि हर जगह के चतुर और भावुक लोगों के दिमागों में चक्कर लगा
रहा था। यह एक ऐसा मार्गप्रदर्शन था जिसके लिए दुनिया इन्तज़ार
करती मालूम होती थी और लाखों आदमियों पर इंग्लैण्ड और अमरीका
में भी उसकी प्रतिक्रिया हुई। हमें यह साफ़ मालूम होना चाहिए कि हम
किसलिए लड़ रहे हैं और हमें अपने राजनीतिज्ञों और नेताओं को घेर
लेना चाहिए कि वे मसलों को स्पष्ट करें। कांग्रेस की कार्य-समिति ने
स्पष्ट और निश्चित सवाल पूछे थे। उन्हें टालना मुमकिन नहीं था;
क्योंकि टालमटूल खुद जवाब के समान थी।

अब जितना हमने पहले महसूस किया था, उससे भी ज्यादा हम
महसूस करते हैं कि कार्यसमिति ने हिन्दुस्तान और विश्व-शान्ति और
स्वतन्त्रता के लिए कितनें गजब का काम किया है ! कारण कि उससे

महत्त्वपूर्ण मसले दुनिया की राजनीति में आगे आगये और ब्रिटिश सरकार के लिए अपने उद्देश्यों और ध्येयों को लड़ाई के कुहरे में छिपाये रखना मुश्किल होगया। उन्हें स्पष्ट और निश्चित किया जाना लाजिमी होगया। जिस संकट में उन्होंने अपने को पाया, उसके लिए हम उनसे अपनी हमदर्दी जाहिर करते हैं।

और अब हमें ब्रिटिश सम्राट की सरकार के एक ऊंचे अधिकारी से अपने सवाल का जवाब मिल गया है। वाइसराय का लम्बा वक्तव्य हमने पढ़ लिया है और जितना उसे पढ़ते हैं उतना ही हमारा अचरज बढ़ता जाता है। वाइसराय ने कहा है कि "विश्व-राजनीति और इस मुल्क की राजनीतिक सचाइयों को ध्यान में रखकर परिस्थिति का सामना करना चाहिए।" वैसा करने की हमने कोशिश की है और हम सिर्फ इसी नतीजे पर पहुंच सकते हैं कि वाइसराय और ब्रिटिश सरकार हमारी दुनिया से बिल्कुल दूसरी ही दुनिया में रहते हैं कि जिसकी राजनीति और जिसके ध्येय हमें कोरी दिमागी कल्पनाएँ मालूम होती हैं, जिनका उस दुनिया की असलियतों से कोई मतलब नहीं है जिसमें हम रहते हैं। क्या हिन्दुस्तान और दुनिया में पिछले २० बरसों में कुछ भी नहीं हुआ है जो हमसे २० बरस पीछे देखने के लिए कहा गया है? इस प्रगतिशील और तेजी से दौड़ती हुई दुनिया में रोज बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे हैं और गुजरा हुआ एक साल बहुत पुराना इतिहास दीखता है। फिर २० वर्ष की तो बात ही क्या?

वाइसराय जो कहते हैं वह काफी महत्त्वपूर्ण है; जो-कुछ वह नहीं कहते हैं वह भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। उनके तमाम वक्तव्य में कहीं भी आत्म-निर्णय का, जनतन्त्र का, स्वतन्त्रता का जिक्र नहीं है। फिर भी इन तमाम या कुछ शब्दों के साथ ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने खूब

खिलवाड़ किया है। अब हम जानते हैं कि ब्रिटिश सरकार क्या नापसन्द करती है ?

हमसे कहा गया है कि युद्ध की इस शुरू की हालत में युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा करना सम्भव नहीं है। यह कथन उस हालत में एक पूरा स्पष्टीकरण होता जबकि युद्ध में लगा हुआ देश फ़तह करने पर कमर कसे हुए हो और उस समय तक न बता सकता हो कि वह कितना बढ़ेगा जबतक कि जीत के बारे में उसे भरोसा न होजाये। लेकिन आत्म-रक्षा या आक्रमण से बचाव या कुछ ध्येयों को कायम करने के लिए किये जानेवाले युद्ध से इसका कोई वास्ता नहीं है। हिन्दुस्तान को एक आज़ाद मुल्क स्वीकार करने, या उपनिवेशों में दूसरी तरह की नीति अमल में लाने या साम्राज्यवादी ढाँचे को मिटा देने पर लड़ाई की प्रगति का असर ही किस क़दर पड़ सकता है ?

वाइसराय ने ब्रिटिश प्रधान मन्त्री के शब्द लिये हैं और इनसे वह भेद प्रगट होता है। युद्ध से वह कोई भौतिक लाभ नहीं उठाना चाहते हैं कि एक बेहतरीन अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति अमल में आये जो युद्ध को रोके और जो यूरोप में शान्ति कायम करने का एक जरिया पैदा करे। उनके वक्तव्य का सार यही है। वह यूरोप तक ही महदूद है, दूसरे महाद्वीपों का उसमें नाम तक नहीं है। जनतन्त्र या वैसी ही खयाली बातों के बारे में उसमें कोई चर्चा नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्य अपना और विस्तार नहीं करना चाहता। उसके पास तो काबू रखने लायक से ज्यादा पहले से ही है। लेकिन जो कुछ वह कर सकता है, उसीपर डटा रहकर वह शान्ति स्थापित करना चाहता है ताकि उसके व्यापक साम्राज्य में कोई विघ्न-बाधा न पड़े। इस प्रकार युद्ध का उद्देश्य है ब्रिटिश साम्राज्य को सुरक्षित बनाये रखना, एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति का निर्माण करना

जो कि उसे सुरक्षित बनाये रख सके और हिन्दुस्तान को जबतक सम्भव हो तबतक चंगुल में बनाये रखना।

हम फिर कहते हैं कि हिन्दुस्तानियों को संतुष्ट करने के लिए ऐसी बात कही जाना और उनसे उस साम्राज्यवादी प्रणाली को मजबूत करने के काम में मदद देने के लिए कहा जाना कि जिसके वे इतने दिनों से शिकार रहे हैं, एक अचरज की बात है। सिर्फ़ वही आदमी ऐसी दलील दे सकता है जिसे न हिन्दुस्तान का कोई ज्ञान हो, न जो हिन्दुस्तानियों के स्वभाव के बारे में कुछ भी जानता हो।

दुनिया आगे बढ़ रही है और उसके साथ हिन्दुस्तान भी आगे बढ़ रहा है, और एक पीढ़ी पहले के तौर-तरीक़े और भाषाएँ हर जगह पुरानी पड़ गयी हैं। हिन्दुस्तान में वे जितनी पुरानी पड़ी हैं, उतनी और कहीं भी नहीं। हमारे मुँह आगे की तरफ हैं, पीछे की तरफ नहीं और हम आगे ही बढ़ेंगे। न तो 'हिटलर की जय!' के नारे लगाने का हमारा इरादा है और न 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद जिन्दाबाद!' ही चिल्लाने का विचार है।

१८ अक्तूबर, १९३९

: १२ :

बीस बरस

महायुद्ध खत्म हुआ और विजेता राष्ट्रों के बड़े-बड़े लोग वार्साई के शीश-महल में दुनिया को फिर से गढ़ने के लिए बैठे। उनमें से अटलांटिक-पार से आये हुए एक साहब ने प्रजातन्त्र और आत्मनिर्णय की और एक ऐसे राष्ट्र-संघ की बढ़-बढ़कर बातें कीं कि जिससे शान्ति स्थापित होने का भरोसा हो सके। लेकिन दूसरे लोगों को, जो कि अब विजय पाने के कारण सुरक्षित होगये थे, आम लोगों से सम्बन्ध रखनेवाली इस आदर्शवादी बात में आगे कोई फायदा नहीं दीखता था। जनता में जोश पैदा करने का अपना काम वह कर चुकी थी और अब मजबूत दिमाग़-वाले यथार्थवादी लोगों के योजना बनाने के काम में उसे दखल न देने देना चाहिए था। पाँचों बड़े-बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधि जमा हुए और फिर तीन बाद में शामिल हुए और उनकी मेहनतों से वार्साई की संधि निकल पड़ी। इस सन्धि से युद्ध की सारी उम्मीदें और आदर्शवाद उस ज़मीन में गहरे दफ़ना दिये गये जिसमें न जाने कितने बहादुर जवान आदमियों के नश्वर अस्थिपञ्जर पड़े होंगे। इस संधि से उनके साथ दग़ाबाज़ी हुई।

वार्साई की संधि के इस युग में हम बीस बरस रह लिये हैं और हरेक नया साल दुनिया-भर के लोगों के लिए लड़ाई और क्रान्ति, आतंक और मुसीबत लाया है; मगर फिर भी इन पुराने राजनीतिज्ञ पहरेदारों की, जिनकी वजह से लड़ाई हुई थी और जिन्होंने यह सुलह की थी, हुकूमत जारी ही रही और वे निहायत इतमीनान से उन्हीं

पुराने तरीकों से चिपटे रहे जिनकी वजह से बार-बार ऐसी बरबादियाँ हुई हैं। लेकिन सब जगह ऐसा नहीं था, क्योंकि एक लम्बा-चौड़ा भूखण्ड ऐसा भी था जहाँ एक नयी व्यवस्था आगयी थी और जो लगातार पुरानी को चुनौती दे रही थी।

इटली में मुसोलिनी उठा और दुनिया ने फासिज्म का नाम सुना। यूरप के बहुतेरे देशों में तानाशाहियाँ कायम हुईं। अभी तक कभी न देनेवाली महँगाई ने जर्मनी के मध्यम-वर्गों को कुचल डाला। इसी बीच जेनेवा में या किसी दूसरी जगह समझदार आदमी जमा हुए और निहायत फुरसत के साथ उन्होंने निःशस्त्रीकरण के फायदों या मुआवजों के सवाल पर चर्चाएँ कीं।

अचानक एक भारी आर्थिक मंदी ने दुनिया का गला दबा लिया। धनी और अभिमानी इंग्लैण्ड के कान खड़े होगये और वैभवशाली अमरीका हिल उठा। साल-पर-साल यह मन्दी फैलती ही गयी, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बिलकुल रुक गया और धधकते हुए अक्षरों में उसने लिखा कि पूँजीवादी ढाँचे का खातमा होकर रहेगा।

हिटलर आया जो वार्साई का बच्चा था पर उससे बदला लेने को उतारू था। उसने हैवानियत और बेरहमी से भरे दमन का एक नया नमूना पेश किया। अपनी जनता की राय तक को ठुकरा इंग्लैण्ड ने उसकी पीठ ठोकी और आशा बाँधी कि वह सोवियट के बढ़नेवाले तूफान को रोकनेवाला सूरमा साबित होगा। घटना-चक्र और भी तेजी से घूमता गया। एक घटना दूसरी से आगे बढ़ने लगी और आक्रमण पर आक्रमण होने लगे। इंग्लैण्ड इन सबका विरोध करते हुए लेकिन फिर भी अपनी कार्रवाइयों से बढ़ावा-सा देते हुए पास खड़ा रहा। यही मंचूरिया में और बाद में अबीसीनिया में हुआ। बहुत-कुछ ब्रिटिश सरकार के इशारे पर

ही आस्ट्रिया पर कब्जा कर लिया। उसके बाद सितम्बर १९३८ में चेकोस्लोवाकिया की दुखद घटना घटी।

यह सब बीता हुआ इतिहास है। मगर हम उसकी ओर फिर ध्यान देते हैं, क्योंकि उसे भूलने में खतरा है। वाइसराय ने हमें बीस बरस पीछे ले जाकर अच्छा ही किया है। कम से कम इसकी वजह से हम इतिहास के पन्नों में दबी पड़ी हुई घटनाओं से अपने दिमागों को ताजा करेंगे और उनसे सबक सीख लेंगे। हम चीन में अंग्रेजों की नीति को याद करेंगे जिसने हमले की तरफ़ से आँखें फेर ली थीं। साथ ही हम म्यूनिक की भी याद करेंगे, जो दुनिया के इतिहास की धारा को पलटनेवाली घटना थी। और स्पेन को और उसके साथ किये गये विश्वासघात की बेहद डरावनी बातों को तो भूल ही कौन सकता है? हमें याद आयेगा कि म्यूनिकवाले आदमी ही अब भी इंग्लैण्ड के काम-काज के सर्वेसर्वा हैं और वही उसकी नीति को चला रहे हैं। इसमें ताज्जुब ही क्या है कि उन्होंने हिन्दुस्तान में उसी ब्रिटिश नीति का नया वक्तव्य दिया, जोकि खुद ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बराबर बूढ़ी हो चुकी है। यह नीति तो तमाम नरम और आजादी को चाहनेवाले लोगों को कुचलने, यूरप व हिन्दुस्तान दोनों जगहों के प्रतिगामियों को खुश करने, अपने साम्राज्य को सुरक्षित करने और अपने आर्थिक व दूसरे स्थापित हितों की हिफ़ाजत करने के ही लिए है।

क्या यह सच नहीं है कि जर्मनी के पोलैण्ड पर हमला कर देने के बाद भी मि० नेविल चेम्बरलेन जर्मनी को सन्तुष्ट करने और उसकी शक्ति और शस्त्र-बल को रूस की तरफ मोड़ने के सपने देख रहे थे? लड़ाई की घोषणा के पहले ब्रिटिश पार्लमेण्ट की जो निपटारा करनेवाली बैठक हुई, उसमें इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री अटक-अटक और सँभल-सँभलकर बोले

और अपने कंजर्वेटिव (अनुदार) साथियों तक में उन्होंने ऐसा गुस्सा भड़का दिया कि वे चिल्लाकर इस लिबरल-नेता से कहने लगे कि वह राष्ट्र के पक्ष में बोले। मि० चेम्बरलेन ने जनमत की शक्ति को भाँप करके उसी रात जर्मनी को अपनी आखिरी चेतावनी भिजवा दी।

हमले के खिलाफ और जनतन्त्र के पक्ष में लड़ी जानेवाली इस लड़ाई के नेता ये हैं। म्यूनिक और स्पेन के भूत जैसे दुनिया के पीछे पड़े हैं, वैसे ही उनके पीछे भी पड़े हुए हैं और शान्ति और आजादी को ये नेता लोग नहीं ला सकते। क्या हिन्दुस्तान, जो कि नाराजी और जिद के साथ उनकी विदेशी नीति के खिलाफ रहा है, अब उन्हीं के हाथ की कठपुतली बनने पर राजी हो सकता है? लेकिन इस सवाल का जवाब तो वाइसराय पहले ही दे चुके हैं।

बीस बरस बीत गये हैं और याददाश्त के बाहर जा चुके हैं। वाइसराय का कोई वक्तव्य भी उन्हें वापस नहीं बुला सकता। हिन्दुस्तान ने उनसे बहुत-कुछ सीखा है, अपनी ताकत बढ़ायी है और बहुत से भेद-विभेदों के होते हुए भी उसने ध्येय की एकता पैदा की है। वह पीछे नहीं हटेगा और वह कमजोर होगा, उसे रास्ता बतानेवाले खराब होंगे तो भी दुनिया उसे ऐसा नहीं करने देगी, क्योंकि आज दुनिया में सबसे महत्त्व की बात है पुरानी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था का खात्मा होना और इन टूटे अण्डों को फिर से नहीं जोड़ा जा सकता। नष्ट होती हुई इस व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करनेवाला ब्रिटिश साम्राज्य कूच करेगा और मौजूदा आर्थिक प्रणाली की जगह दूसरी आकर रहेगी।

हम पीछे नहीं हट सकते और न इस गतिशील दुनिया में एक जगह खड़े ही रह सकते हैं। और वे लोग जो इस बात को नहीं समझते या घटनाओं से कदम मिलाकर नहीं चल सकते, उनकी पहले से ही कोई

पूछ नहीं रह गयी है और वे उसी तरह से अलहदा हो जायेंगे कि जैसे कूच करती हुई फौज में से आवारागर्द आदमी हो जाते हैं।

कांग्रेस ने इंग्लैण्ड की सरकार और जनता के आगे दोस्ती और सहयोग का हाथ बढ़ाया था और चाहा था कि हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड के बीच जो लम्बा झगड़ा है वह खत्म हो जाये। यह एक बहादुरी का प्रस्ताव था जो कि इन एकमात्र सम्भवनीय शर्तों पर किया गया था कि हिन्दुस्तान को आज़ादी दी जाये और बराबरी की भावना से किसी भी सम्मिलित कार्रवाई में एक दूसरे को सहयोग मिले। कांग्रेस ने कोई अधिकार या सत्ता अपने लिए नहीं माँगी थी। वह तो हिन्दुस्तानियों के लिए यह अधिकार चाहती थी कि वे अपनी राष्ट्रीय पंचायत चुनकर उसके द्वारा अपना विधान बनायें और सत्ता प्राप्त करें। इस समस्या का यही एकमात्र जनतन्त्रात्मक हल था। यह सबके लिए भला था और मुमकिन था कि उसकी वजह से इंग्लैण्ड से मित्रता का सम्बन्ध कायम हो जाता।

वह प्रस्ताव ठुकरा दिया गया है। लेकिन समय-चक्र चलता जा रहा है और जल्दी ही ऐसा मौका आ सकता है कि उस प्रस्ताव को भी अमल में लाने का वक्त न रह जाये। हिन्दुस्तान के लाखों-करोड़ों आदमियों को अब पीछे रोककर नहीं रखा जा सकता और अगर उनके लिए एक दरवाजा रोक भी दिया गया है तो वे दूसरे दरवाजे खोल लेंगे।

१९ अक्तूबर, १९३९

: १३ :

१६१६–३६

पिछले अध्याय में हमने बहुत थोड़े में यूरप के पिछले बीस बरसों पर नजर डाली है। हिन्दुस्तान की परिस्थिति को समझने की खातिर भी ऐसा करना जरूरी था, क्योंकि यूरप दुनिया भर के तूफानों का केन्द्र रहा है और उसके भीतरी संघर्ष और विरोध के धक्के बहुत दूर-दूर पहुँचे हैं। हिन्दुस्तान ने इस चलते-फिरते और दुखभरे नाटक को बड़ी फ़िक्र और दिलचस्पी के साथ देखा है और उसके सम्बन्ध में अपनी राय ज़ोरदार शब्दों में व साफ़-साफ़ ज़ाहिर करदी है। चूंकि हिन्दुस्तान साम्राज्यवाद का विरोध करता आ रहा था, इसलिए लाजमी तौर पर उसकी सहानुभूति हमलों के शिकार होनेवाले मुल्कों से रही और खुद अपने हित के लिए भी वह फ़ासिज़्म और नात्सीवाद की बढ़ती हुई लहर का मुकाबला करने को प्रेरित हुआ। चीन, अबीसीनिया, आस्ट्रिया, फ़िलस्तीन, चेकोस्लोवाकिया और स्पेन की घटनाओं से हिन्दुस्तानियों को गहरा धक्का पहुँचा और इनके बारे में इंग्लैण्ड की जो साम्राज्यवादी नीति है उसपर उन्होंने नाराज़गी और निन्दा ज़ाहिर की। हिन्दुस्तान को भविष्य का और उस लड़ाई का ख़याल आने लगा जो आये बिना न रहनेवाली जान पड़ती थी और इस सम्बन्ध में उसने अपनी नीति तय की। ज्यों-ज्यों ज़माना बदलता गया हिन्दुस्तान के विचारों में विकास होता गया और उसने अपने आपको बदलती हुई परिस्थितियों में ढाल लिया।

१९१९ का साल हिन्दुस्तान के लिए दिशा-परिवर्तन का समय था।

मांटेग्यू आकर लौट गये थे और उनकी रिपोर्ट प्रकाशित होगयी थी। जैसी कि हमेशा हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों की नीति में रहा है, उसके लिए वक्त नहीं रह गया था। हिन्दुस्तानियों ने भारी बहुमत से उसको और उस क़ानून को जो इसके मातहत बनाया गया था, ठुकरा दिया। कुछ नामी हिन्दुस्तानी, जो कि अबतक कांग्रेस में थ, दूसरी तरह सोचते थे, और उन्होंने कांग्रेस को छोड़कर नरम दल बना लिया। लेकिन उनका अलग होना ही इस बात को, जाहिर कर रहा था कि राष्ट्र कहाँ है ? क्योंकि मुट्ठीभर लोग ही उस भारी बहुमत के खिलाफ़ थे। १६१९ की प्रस्तावित सुधार-योजना को जो अंग्रेज़ सरकार आज हमें दे रही है, हमनें उसी साल बड़ी हिकारत के साथ ठुकरा दिया था। १९१९ में भी तो वह जैसी चाहिए वैसी न थी।

रौलट ऐक्ट आया और हिन्दुस्तान के राजनैतिक मंच पर महात्मा गांधी के रूप में एक बड़ी ज़बर्दस्त तात्त्विक शक्ति प्रकट हुई जो हमारे राजनैतिक जीवन में एक क्रान्ति लायी। पंजाब का मार्शल लॉ, जलियाँ-वाला बाग का हत्याकाण्ड, खिलाफ़त-आन्दोलन और असहयोग—बस हिन्दुस्तान की जनता में एक हलचल मच गयी, कि जैसी अबतक कभी नहीं देखी गयी थी। स्वराज हमारा ध्येय था और उसीके लिए हम लड़ रहे थे, इस प्रस्तावित विधान या उस वायदे के लिए नहीं जो कि ब्रिटिश मंत्रीगण हमसे खुशी-खुशी करलें।

इन हाल की घटनाओं पर नज़र डालने की हमें ज़रूरत नहीं है, हालाँकि घटना-चक्र इतनी तेजी से घूमता रहा है कि ये हाल के वाक़यात आज बहुत पुराने-से पड़ गये जान पड़ते हैं और आज की पीढ़ी के बहुत-से लोगों को उनका पता तक नहीं है। उनकी याददाश्त कमज़ोर है। लेकिन इन बरसों में हिन्दुस्तान का नक्शा बदल गया है और खेतों

के गरीब और नाचीज किसान तक की आज पहले से बहुत काफी कायापलट हो चुकी है।

बारह बरस पहले मद्रास में कांग्रेस ने स्वतन्त्रता की बात कही थी और दो बरस बाद रावी-तट पर हमने उसकी प्रतिज्ञा ली और उसे पाने का पवित्र संकल्प किया। उसके बाद सविनय आज्ञा-भग आया और हिन्दुस्तान के नर-नारियो ने मिल-जुलकर तकलीफो और कुर्बानियो के बीच फिर से वह प्रतिज्ञा ली। एक साम्राज्य ने अपनी ताकत से उन्हें कुचल देने और उनमें फूट पैदा कर देने की कोशिशें कीं और थोड़े दिनों के लिए उसे ऊपरी कामयाबी मिली भी; लेकिन आजादी की उस तेज ज्योति को जो हमारे दिलों में जोश भर रही थी और मन में रोशनी कर रही थी—कौन कुचल सकता था, कौन बुझा सकता था ?

फिर गोलमेज परिषद् का सूना-सूना सिलसिला शुरू हुआ और अग्रेजों की कुटिल राजनीति ने हिन्दुस्तान के उन सब लोगों को, जो उसके आजाद होने की इच्छा के विरोधी और प्रतिगामी थे, इकट्ठा और संगठित करने की कोशिश शुरू की। उसके बाद आया १९३५ का ऐक्ट और हमने उसे नामंजूर किया। तो भी लम्बे बहस-मुबाहिसे के बाद हमने मन्त्रि-मण्डल बनाने का फैसला किया। इसका निर्णय तो इतिहास ही करेगा कि तब हमने ठीक किया था या गलत; मगर हम उस ऐक्ट के खोखलेपन को और उससे हमारे चारों ओर जो खाइयाँ होगयी थीं उन्हें तो जान ही चुके हैं। पीढ़ियों से साम्राज्यवादी और धौंस जमानेवाली स्वेच्छाचारी हुकूमत के फलस्वरूप हम बड़े-बड़े मसलों में घिर गये। अपने-अपने इलाके में मनमानी करनेवाले देशी राजाओं की अग्रेज अधिकारियों ने हिमायत और मदद की। एक पुराने ज़माने की भूमि-पद्धति जनता पर भारी बोझ बन रही थी। हमारे शासकों की विदेशी हितों

मांटेग्यू आकर लौट गये थे और उनकी रिपोर्ट प्रकाशित होगयी थी। जैसी कि हमेशा हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों की नीति में रहा है, उसके लिए वक्त नहीं रह गया था। हिन्दुस्तानियों ने भारी बहुमत से उसको और उस क़ानून को जो इसके मातहत बनाया गया था, ठुकरा दिया। कुछ नामी हिन्दुस्तानी, जो कि अबतक कांग्रेस में थ, दूसरी तरह सोचते थे, और उन्होंने कांग्रेस को छोड़कर नरम दल बना लिया। लेकिन उनका अलग होना ही इस बात को, जाहिर कर रहा था कि राष्ट्र कहाँ है ? क्योंकि मुट्ठीभर लोग ही उस भारी बहुमत के खिलाफ़ थे। १६१९ की प्रस्तावित सुधार-योजना को जो अंग्रेज़ सरकार आज हमें दे रही है, हमनें उसी साल बड़ी हिकारत के साथ ठुकरा दिया था। १९१९ में भी तो वह जैसी चाहिए वैसी न थी।

रौलट ऐक्ट आया और हिन्दुस्तान के राजनैतिक मंच पर महात्मा गांधी के रूप में एक बड़ी ज़बर्दस्त तात्त्विक शक्ति प्रकट हुई जो हमारे राजनैतिक जीवन में एक क्रान्ति लायी। पंजाब का मार्शल लॉ, जलियाँ-वाला बाग का हत्याकाण्ड, खिलाफ़त-आन्दोलन और असहयोग—बस हिन्दुस्तान की जनता में एक हलचल मच गयी, कि जैसी अबतक कभी नहीं देखी गयी थी। स्वराज हमारा ध्येय था और उसीके लिए हम लड़ रहे थे, इस प्रस्तावित विधान या उस वायदे के लिए नहीं जो कि ब्रिटिश मंत्रीगण हमसे खुशी-खुशी करलें।

इन हाल की घटनाओं पर नजर डालनें की हमें ज़रूरत नहीं है, हालाँकि घटना-चक्र इतनी तेजी से घूमता रहा है कि ये हाल के वाक़यात आज बहुत पुरानें-से पड़ गये जान पड़ते हैं और आज की पीढ़ी के बहुत-से लोगों को उनका पता तक नहीं है। उनकी याददाश्त कमज़ोर है। लेकिन इन बरसों में हिन्दुस्तान का नक्शा बदल गया है और खेतों

के गरीब और नाचीज किसान तक की आज पहले से बहुत काफी कायापलट हो चुकी है।

बारह बरस पहले मद्रास में कांग्रेस ने स्वतन्त्रता की बात कही थी और दो बरस बाद रावी-तट पर हमने उसकी प्रतिज्ञा ली और उसे पाने का पवित्र संकल्प किया। उसके बाद सविनय आज्ञा-भंग आया और हिन्दुस्तान के नर-नारियों ने मिल-जुलकर तकलीफों और कुर्बानियों के बीच फिर से वह प्रतिज्ञा ली। एक साम्राज्य ने अपनी ताकत से उन्हें कुचल देने और उनमें फूट पैदा कर देने की कोशिशें कीं और थोड़े दिनों के लिए उसे ऊपरी कामयाबी मिली भी; लेकिन आजादी की उस तेज ज्योति को जो हमारे दिलों में जोश भर रही थी और मन में रोशनी कर रही थी—कौन कुचल सकता था, कौन बुझा सकता था?

फिर गोलमेज परिषद् का सूना-सूना सिलसिला शुरू हुआ और अंग्रेजों की कुटिल राजनीति ने हिन्दुस्तान के उन सब लोगों को, जो उसके आजाद होने की इच्छा के विरोधी और प्रतिगामी थे, इकट्ठा और संगठित करने की कोशिश शुरू की। उसके बाद आया १९३५ का ऐक्ट और हमने उसे नामंजूर किया। तो भी लम्बे बहस-मुबाहिसे के बाद हमने मन्त्रि-मण्डल बनाने का फैसला किया। इसका निर्णय तो इतिहास ही करेगा कि तब हमने ठीक किया था या ग़लत; मगर हम उस ऐक्ट के खोखलेपन को और उससे हमारे चारों ओर जो खाइयाँ होगयी थीं उन्हें तो जान ही चुके हैं। पीढ़ियों से साम्राज्यवादी और धौंस जमानेवाली स्वेच्छाचारी हुकूमत के फलस्वरूप हम बड़े-बड़े मसलों में घिर गये। अपने-अपने इलाके में मनमानी करनेवाले देशी राजाओं की अंग्रेज अधिकारियों ने हिमायत और मदद की। एक पुराने जमाने की भूमि-पद्धति जनता पर भारी बोझ बन रही थी। हमारे शासकों की विदेशी हितों

और उद्योगों को संरक्षण देने और अपने संरक्षण और विशेषाधिकार की नीति के कारण न तो हमारा व्यापार ही तरक्की कर सकता था और न उद्योग-धन्धे ही। हमारी आर्थिक नीति ऐसी बनायी गयी थी कि वह लन्दन शहर का ही भला कर सके। ब्रिटिश हितों की खातिर हमारी मालगुजारी को बड़े पैमाने पर गिरवी रखकर नौकरियाँ सुरक्षित की गयी थीं। यह था वह 'प्रान्तीय स्वराज' जो हमें मिला। इसमें हालाँकि जनता के चुने हुए मंत्री लोग हुकूमत की कुर्सियों पर बैठाये गये थे, लेकिन शासन का साज-सामान तो वही पुराने ढंग का, तानाशाही और नौकरशाही का था। उसे वे नयी-नयी बातें बिल्कुल पसन्द न आती थीं और वह उसमें रोड़े अटकाने में अपनी तरफ से कोई कसर नहीं रखती थी। इससे भी बदतर बात जो थी वह यह थी कि देश में विच्छेदकारी वृत्तियों और प्रतिगामी दलों को बढ़ावा देने की उनकी कोशिश लगातार जारी थी ताकि उसी शासन की जड़ कमजोर पड़ जाये जिसमें सहयोग देने का वे दम भरते थे।

इतना होते हुए भी, प्रान्तीय सरकारों ने बहुत-कुछ अच्छे-अच्छे काम किये और जनता के बोझ को थोड़ा-बहुत हल्का किया। लेकिन तकलीफें उनकी हमेशा बढ़ती ही रहीं और साफ़ नज़र आने लगा कि हिन्दुस्तान की समस्या तबतक सुलझ नहीं सकती, जबतक कि जनता के हाथ में सच्ची ताक़त न आ जाये। स्वेच्छाचारी और गैरज़िम्मेदार सरकार तो हथियारों के बल पर देश को कब्ज़े में करके उसपर हुकूमत चला सकती थी; लेकिन जनता की चुनी हुई और जिम्मेदार सरकार ऐसा तभी करेगी जबकि उसके पास असली ताक़त होगी और उसमें भी जनता की राय होगी। बीच की कोई भी स्थिति अस्थायी होती और ज्यादा अर्से तक नहीं चल सकती, क्योंकि ताक़त तो मिली

थी, पर उत्तरदायित्व नहीं दिया गया था।

तो, त्रिपुरी-कांग्रेस में इन पिछली घटनाओं के अनिवार्य और आवश्यक फलस्वरूप 'राष्ट्रीय माँग' पेश की गयी। 'प्रान्तीय स्वराज'—जैसा भी वह था—अपने आप खत्म हो चुका था और उसकी जगह हिन्दुस्तान का ही बनाया हुआ शासन-विधान—भारतीय स्वराज का हुक्मनामा—आना जरूरी था। यह माँग कोई नयी न थी, क्योंकि कांग्रेस विधान-पंचायत की माँग बरसों से करती आ रही थी। कांग्रेस ने १९३५ का शासन-विधान कभी मंजूर नहीं किया था। तमाम प्रान्तीय धारासभाओं का सबसे पहला प्रस्ताव इसी अस्वीकृति पर जोर डालने और विधान-पंचायत की माँग करने के बारे में था। तो यह माँग नयी नहीं थी। हाँ, उसमें अब लाजमीपन और जुड़ गया था। संघर्ष को छोड़कर अब दूसरा कोई रास्ता नहीं रहा था।

युद्ध बीच में आ पड़ा और सब कुछ अस्तव्यस्त हो गया और हम नये तौर-तरीकों से सोचने के लिए मजबूर हुए। हिन्दुस्तान की उस वक्त की व्यवस्था निहायत गैरवाजिब और आगे न चल सकनेवाली हो गयी। हमारे सामने दो रास्ते थे और उनमें से किसी एक को हमें पसन्द करना था—या तो आगे बढ़कर स्वतन्त्रता को हासिल करें और राष्ट्र को आजाद बनायें या फिर प्रान्तीय स्वशासन के अँधेरे की छाया की तरफ लौट जायें, जहाँ हमपर प्रभुतावादी केन्द्रीय सरकार का कब्जा रहे। युद्ध से और दूसरे मसले भी उठ खड़े हुए; मगर फिलहाल तो हम अपनी अन्दरूनी हालत को ही लें।

पीछे हटने की तो हिन्दुस्तान संभावना, और कल्पना तक नहीं कर सकता था। मौजूदा परिस्थितियों में काम चलना मुश्किल हो गया था। इसलिए लाजमी तौर पर हिंदुस्तान ने अपनी पुरानी 'राष्ट्रीय-

माँग' दुहरायी और स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में अपना सहयोग देने का अभिवचन दिया। इस बात पर भी हिन्दुस्तान ने जोर नहीं दिया कि उसे बिना उसकी राय लिये और उसके अपनी घोषणा कर चुकने पर भी वह लड़ाई में शरीक देश मान लिया गया। कोई भी आत्म-सम्मान रखनेवाला देश उसकी जैसी स्थिति में इससे बढ़कर सुन्दर, स्पष्ट और उदारता का अभिवचन नहीं दे सकता था। इसमें सौदा पटाने की बाज़ारू भावना बिलकुल नहीं थी।

फिर भी इसको हिकारत के साथ ठुकरा दिया गया है और हमसे कहा गया है कि हम मुड़कर २० साल पहले उस चीज़ की तरफ़ देखें, जिसे हमने उसी वक्त यह कहकर अलग फेंक दिया था कि वह विचार करने लायक नहीं है। वे सोचते हैं कि हम हिन्दुस्तान की पिछली पीढ़ी के इतिहास को भूल जायें, वर्तमान को न देखें, सारी दुनिया में जो कुछ हो रहा है उसपर ध्यान दें, अपनी गम्भीर प्रतिज्ञाओं को तोड़ दें और अपने साम्राज्यवादी शासकों के इशारे पर उन सपनों और आदर्शों का गला घोट दें, जिनसे हमें जिन्दगी मिली है, ताक़त हासिल हुई है!

वक्त गुज़रता जा रहा है दुनिया बदलती जारही है और कल की राष्ट्रीय माँग इतिहास की पुरानी घटना हो चुकी है। कल शायद वह भी नाकाफी हो जाये।

२० अक्तूबर, १९३९

: १४ :

आजादी खतरे में है !

लन्दन की अनगिनती दीवारों और घरों पर और इग्लैण्ड-भर में मोटे-मोटे अक्षरों में ये वाक्य लिखे हुए हैं—"आजादी खतरे में है। अपनी पूरी 'ताकत' लगाकर उसे बचाओ" यह ब्रिटिश सरकार की अपनी जनता से अपील है कि वे लड़ाई में शरीक हों और आजादी के लिए अपनी जानें कुर्बान कर दें। किसकी आजादी के लिए ? हिंदुस्तान की आजादी के लिए नहीं, यह हम जानते हैं; क्योंकि ऐसा हमसे कहा *गया है। ब्रिटिश और दूसरे साम्राज्यवादों के गुलाम देशों के लिए भी* नहीं, क्योंकि हमारी माँग के बावजूद इंग्लैण्ड के सम्राट् उस बारे में समझदारी के साथ खामोश हैं। क्या इंग्लैण्ड यूरप की आजादी के लिए लड़ रहा है, जैसा कि मि० चेम्बरलेन ने कहा है ? यूरप के किस देश के लिए और कौनसी जनता के लिए ? हमें खयाल आता है एक छोटे से देश का कि जो किसी दिन था और जिसे चेकोस्लोवाकिया कहते थे। हालैण्ड के प्रधानमन्त्री ने साल भर पहले जिसके बारे में कहा था, "वह दूर-दराज का देश जिसके बारे में हम कुछ नहीं जानते" और फिर उसीका खात्मा करने चले थे। एक दिन स्पेन में भी एक बहादुर जनसत्तात्मक प्रजातन्त्र था; लेकिन उसको उन लोगो ने मटियामेट कर दिया जो कि उसके दोस्त बनने का ढोंग रचते थे और जनतन्त्र की लल्लो-चप्पो करते थे।

एक दिन पोलैण्ड भी था। पर अब नहीं है ? क्या पुराना पोलैण्ड *फिर उठेगा ? क्या मि० चेम्बरलेन यह मानते हैं या इसके लिए लड़ते* हैं ? आधा पोलैण्ड आज उस आजादी से भी ज्यादा पा गया है

जो उसे पहले भी मिली होगी और आज मास्को की पार्लमेण्ट में उसके प्रतिनिधि उसकी तरफ से बोलते हैं। यह अजीब सी बात है कि जबकि हम हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय पंचायतों और विधानों पर लगातार बात ही किये जाते हैं, तब युद्ध में पड़ा एक देश कुछ हफ्तों में ज़्यादा आज़ादी-वाला विधान लेकर उठ खड़ा होता है।

इंग्लैण्ड किसलिए लड़ रहा है? मि० चेम्बरलेन किसकी आज़ादी के लिए इतने उतावले हैं? अगर वह अंग्रेज़ों की आज़ादी है तो उन्हें अपने आदमियों से अपील करने का पूरा हक़ है। लेकिन बर्नार्ड शॉ और दूसरे लोगों ने हमें बताया है कि किस तरह इंग्लैण्ड के हरे-भरे और मनोरम प्रदेशों से आज़ादी युद्ध-कालीन क़ानूनों की वजह से तेज़ी के साथ हवा होती जा रही है। जर्मनी के जिस फ़ासिज्म और प्रभुतावाद की अंग्रेज़ों ने निन्दा की है, वे ही धीरे-धीरे इंग्लैण्ड में घुसे आ रहे हैं और अंग्रेजों की जनतंत्रात्मक क्षमताओं को मार रहा है। इंग्लैण्ड आज जनतंत्रात्मक देश नहीं है और जिस साम्राज्यवाद का उसने बाहर लालन-पालन किया था, वही फ़ासिज्म के बाने में उसके पास वापस लौट रहा है।

जब हमारे पूछने पर भी अंग्रेज हमें बताते नहीं, तो हमें कैसे मालूम हो कि इंग्लैण्ड किसलिए लड़ रहा है? लेकिन दिखावटी खेल जो हो रहा है, उससे हमें रोशनी मिल सकती है और हमारे सवालों का जवाब मिल जाता है। भले ही सरकारी अफ़सरों के ओठ सिले हुए हों, मगर उनके कामों से उनकी मंशा साफ़ दिखाई दे जाती है। शांति के समय जैसा हमने साम्राज्यवाद का पूरा बोलबाला देखा, वैसा ही युद्ध के जमाने में भी हम देख रहे हैं। और ब्रिटेन का शासकवर्ग अपने साझे के हिस्से और स्थापित स्वार्थों से चिपका हुआ है। दूसरों की कीमत पर अपने हिस्सों को बढ़ाने की जो आज़ादी उसे इस समय मिली हुई है, उसे गँवा

देने का उसका इरादा नहीं है। यही आजादी है कि जिसके लिए ब्रिटेन के शासक लड़ रहे हैं। इसी आजादी की रक्षा के लिए वे अपने देश के पौरुष और यौवन का आवाहन कर रहे हैं और हमारे पौरुष को भी चुनौती देना चाहते हैं।

लार्ड जेटलैंण्ड हमसे कहते है—"सम्राट की सरकार इस स्थिति को कबूल करने में असमर्थ है।" और वह 'स्थिति' यह है कि कांग्रेस ने मांग की है कि हिन्दुस्तान को 'स्वतन्त्र देश' घोषित कर दिया जाये और उसे अधिकार हो कि बिना किसी बाहरी दखल के ऐसी राष्ट्रीय पंचायत के जरिये वह अपना विधान बना ले कि जो व्यापक-से-व्यापक मताधिकार पर चुनी गयी हो। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के बारे में वह समझौते से काम ले और समझौते से ही अल्पसंख्यकों के अधिकारों को संरक्षण दे। यह उससे हो नहीं सकता। इस प्रकार एक सीधा जवाब पाकर हमारा भी बोझ हल्का हो गया है।

जेटलैंण्ड साहब आगे कहते हैं—'इतने दिनों से इंग्लैण्ड का हिन्दुस्तान के साथ जो संबंध रहा है, उससे सम्राट की सरकार की हिन्दुस्तान के प्रति कुछ जिम्मेदारियां हो जाती हैं। इसलिए हिन्दुस्तान के शासन के स्वरूप को तैयार करने में कोई भी दिलचस्पी न दिखाकर वह उसे यों ही छोड़ नहीं सकती।' हमने खुद स्पष्ट रूप से सोचा था कि सम्राट् की सरकार के आर्थिक या औद्योगिक या दूसरे हितों के प्रति जो जिम्मेदारियां हैं, उन्हें वह भूल या दरगुजर कर नहीं सकेगी और उनका आजादी से जो प्रेम है, वह जब इन जिम्मेदारियों के साथ टकरायेगा तो सरकार कड़ाई के साथ उसको दबायेगी। उन उदारमना मार्क्विस के इस बचाव और इस सफाई के लिए हम उनके मशकूर हैं। अब इसकी चर्चा न की जाये कि हिन्दुस्तान की आजादी की घोषणा के रास्ते में साम्प्रदायिक

मामलों से रुकावट आती है। रुकावट डालनेवाला तो लंदन का नगर है और हैं वे सब, जिनका कि वह प्रतिनिधित्व करता है। लार्ड और कॉमन-सभा वाले तो उसकी मर्जी पर चलनेवाले हैं।

लम्बे बहस-मुबाहसों और इनायतभरी सलाहों और मुलाकातों और साम्राज्यवाद के फ़ौलादी पंजों को ढकने और छिपाने के खिलवाड़ से हम कुछ उकता-से गये हैं। अब तो हम असलियत को देखना और उसका सामना करना ज्यादा पसन्द करते हैं। हिन्दुस्तान में स्वेच्छाचारी हुकूमत करते रहना और विधान को बिल्कुल रोक देना आजादी के साथ होनेवाले इस मजाक से कहीं अच्छा है। हमारे लिए भी दफ्तरों की कुर्सियों से बँधे रहने और हमारे ऊपर थोपे गये विधान के कैदी बने रहने से बेहतर यह है कि हम बयाबान में बसें।

सम्राट् की सरकार हमारी स्थिति को कबूल करने में असमर्थ है। हमारे लिए भी यह असंभव है कि हम उनकी स्थिति को या स्वतंत्र राष्ट्र को छोड़कर और किसी भी स्थिति को कबूल करें। इस प्रकार दोनों आमने-सामने खड़े हैं और बीच में है एक चौड़ी खाई जिसे पाटा नहीं जा सकता। अब तो भविष्य—लड़ाई का और क्रांतिकारी तब्दीलियों का भविष्य—ही हमारे बीच फैसला करेगा। हम भविष्य का महज इन्तजार ही नहीं करेंगे; बल्कि उसे बनाने में मदद देंगे। इस वक्त तो हम दो खुली बेबसियों की टक्कर को मंजूर करें और भविष्य के बारे में सोचें और उसके लिए अपने को तैयार करें।

लेकिन तबतक हम कम-से-कम एक बार ब्रिटिश सरकार के आदेश को कबूल कर लें और अपनी जनता को याद दिला दें कि—

"आजादी खतरे में है! अपनी पूरी ताकत लगाकर उसे बचाओ!!"

८ नवम्बर, १९३९

: १५ :

रूस और फ़िनलैण्ड

रूस और फिनलैण्ड का झगड़ा युद्ध में बदल गया है। किसी ऐसे छोटे देश के साथ हमारी सहानुभूति होना स्वाभाविक ही है जिसपर एक बड़ी ताक़त ने हमला किया है। लाजिमी है कि नात्सी हमलों की हाल की मिसालों के साथ हम रूस के अकारण किये गये आक्रमण की तुलना करें। क्या हम भूल सकते है कि वरसों से सोवियट रूस ने ऐसे सब आक्रमणों की निन्दा की है और ऊँची आवाज से हमलावर राष्ट्र के खिलाफ़ कार्रवाई करने की माँग की है?

ये प्रतिक्रियाएँ अनिवार्य है। मगर फिर भी हम यह याद रखें कि हम युद्ध के दिनो में रह रहे है और हमारे चारों तरफ एकत्तर्फ़ा खबर और प्रोपेगैण्डा का जाल फैला है। अगर हम इन खबरों और प्रोपेगैण्डा की कमजोर और फिसलानेवाली नींव पर अपनी आखिरी राय क़ायम कर लेंगे, तो ऐसा करना न सिर्फ असुरक्षित ही होगा बल्कि हम उससे ग़लत रास्ते पर जा सकते है। हमारे लिए घटनाओं को सही दृष्टिकोण से देखना और पक्षपातपूर्ण प्रोपेगैण्डा से बहक न जाना उतना जरूरी पहले कभी न था, जितना कि आज है। फ़िनलैण्ड के साथ हमारी सहानुभूति है, लेकिन उन सत्ताओं के साथ नहीं जो मतलब के लिए फ़िनलैंड से बुरा फायदा उठा रही है। फ़ासिस्ट इटली तक पुकारकर कहता है—'हाय, बेचारा नन्हा-सा फिनलैण्ड!' और रूस द्वारा फ़िनलैण्ड पर किये गये आक्रमण पर बड़ी गंभीरता के साथ भय प्रकट करता है।

हम ऐसे जमाने में रह रहे है कि जो बहुत ही हल्ले-गुल्ले और

आक्रमणमूलक सत्ता-राजनीति का ज़माना है। आज मनुष्य के व्यवहारों और अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून में हिंसा और हिंसा की धमकी का बोलबाला है और जहाँतक सरकारों का सम्वन्ध है, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य रहे ही नहीं हैं। दुनिया में 'मीन कैम्फ़' का सिद्धान्त नात्सियों के बल या चालों के वनिस्वत कहीं अधिक प्रभावशाली रूप में फैला हुआ है। यह सिद्धान्त कोई नया नहीं है, हालाँकि इतनी स्पष्टता और वेहयाई के साथ शायद ही कहीं वतलाया गया होगा जितना नात्सी दुनिया के इस धर्म-ग्रंथ में वताया गया है। पुराने साम्राज्यवादों ने तो ठिकाने लगकर इज्ज़त की वाहरी पोशाक पहन ली और मीठी और नरम भाषा में वोलने लगे, लेकिन वह नीति जिसने गुज़रे जमाने में उनपर अधिकार रखा और इस जमाने में भी रखती है 'मीन कैम्फ' की नीति है; क्योंकि वह साम्राज्यवाद का भी उसी तरह सार है, जिस तरह वह नात्सीवाद का सार है। दोनों में फर्क यह है कि नात्सीवाद इस नीति को घर-वाहर दोनों जगह लागू करता है। साम्राज्यवाद उसे खासकर वाहर लागू करता है और घर पर जनतन्त्र का दिखावा करता है। लेकिन जव फ़ासिज्म की प्रतिक्रिया और रीति-नीति पुराने साम्राज्यवादों के घरों में घुस आती है तो वह फर्क कम हो जाता है। युद्धकालीन परिस्थितियों के वुर्के में फ्रांस आज सैनिक तानाशाही शासन में रह रहा है; इंग्लैण्ड ज्यादा-से-ज्यादा प्रतिगामी होता जा रहा है।

सोवियट रूस की इंग्लैण्ड और फ़्रांस ने वरसों से अवहेलना और वेइज्ज़ती की, तो वह भी उनपर चढ़ वैठा है और उसने उन्हें दिखा दिया कि वह भी सत्ता-राजनीति का खेल सफलतापूर्वक खेल सकता है। दुनिया भौंचक रह गयी और यूरोप में सारा संतुलन ही एकाएक वदल गया। रूस एक ताक़तवर राष्ट्र वन गया और उसकी इच्छा की भी वक़त होने

लगी। लोग तेज़ी से क्रेमलिन के महल में कदमबोसी के लिए जाने लगे। रूस ने अवसरवादी का खेल खेला और पश्चिमी देशों की कूटनीति का जो नमूना था, उसीके मुताबिक आश्चर्यजनक होशियारी के साथ खेला। उसने कहा कि क्रियात्मक रूप से वह भी यथार्थवादी है। और यथार्थवाद के नाम पर जो कुछ उसने किया, उससे हमें बहुत दुख पहुँचा है और यूरोप और सुदूर पूर्व में हाल में उसकी जो नीति रही है, उसे समझना बहुत मुश्किल है।

हमारा विश्वास है कि वास्तविक राजनीति में सोवियट रूस ने जो ये दुस्साहसपूर्ण कार्य किये उनसे उसके उद्देश्य को नुकसान ही हुआ है, चाहे सत्ता-राजनीति की भाषा में उसकी ताक़त बढ़ गयी हो। कारण यह है कि रूस की शक्ति तो उन आदर्शवादों और सिद्धान्तों में थी जिनका कि वह समर्थन करता था। वे सिद्धान्त भले ही आज भी वहाँ हों—कौन जानता है ?—लेकिन आदर्शवाद तो कमजोर पड़ता जा रहा है और दुनिया इस हानि से बहुत-कुछ खो बैठी है। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि लड़ाई के इन दिनों में भी निरे अवसरवाद से मिलनेवाली ऐसी कामयाबी से जिसमें कोई नैतिक सिद्धान्त नहीं है कोई भी देश बहुत दूर नहीं जा सकता।

लेकिन रूस के बारे में फ़ैसला करते समय हमें याद रखना चाहिए कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने उसके साथ जो कुछ किया है, उसीका बदला वह उन्हें चुका रहा है। ये राष्ट्र आज अगर डरके मारे हाथ जोड़ रहे हैं, क्योंकि उनके साथ चालाकियाँ चली गयी हैं और उन्हें हराया गया है, तो इससे हमारे हृदय में उनसे सहानुभूति होना जरूरी नहीं है।

इंग्लैंड और कुछ दिन पहले फ़ांस की बुनियादी नीति सोवियट की नीति के खिलाफ़ रही है। उन्होंने इस आशा से नात्सी जर्मनी के आगे

समर्पण कर दिया कि हेर हिटलर पूर्व की ओर बढ़ेगा और सोवियट को खतम कर देगा। उन्होंने रूस के साथ ऐसे वक्त में भी, जबकि खतरा उनके सिर पर खड़ा था, सुलह करने से इनकार कर दिया। अपनी साजिशों में ये नाकामयाब रहे। अब भी जबकि लड़ाई चल रही है हर वक्त अन्दर-ही-अन्दर यह कोशिश जारी है कि उसे सोवियट-विरोधी युद्ध बना दिया जाये। पिछले तीन महीनों में जो कुछ हुआ है उसके बावजूद अब भी यह मुमकिन समझा जाता है कि घटना-चक्र एकदम पलटे और पश्चिमी राष्ट्र रूस के खिलाफ संयुक्त हमला करने के लिए जर्मनी और इटली के साथ मिल जायें। फ्रेंच सरकार आज जितनी सोवियट-विरोधी है, उतनी और कोई सरकार नहीं है। हाल ही में रूस के पोलैण्ड पर हमला करने से भी पहले ब्रिटिश, अमरीकन और फ्रेंच अखबारों में रूस पर जोरों के हमले हुए हैं। खबर है कि इटली फ़िनलैण्ड को हथियार, हवाई जहाज़ों की मशीनें और गोला-बारूद भेज रहा है। इटली के वालंटियर भी वहाँ भेजे जायेंगे, ऐसी संभावना है।

साफ़ है कि यह मामला रूस और फ़िनलैण्ड के बीच का ही नहीं है, बल्कि उससे बहुत-कुछ ज्यादा है। इस सबसे यही पता चलता है कि उस सोवियट-विरोधी मोर्चे ने जिससे रूस के राजनेता बरसों से डरते आरहे हैं, ऐसी अजीब शक्ल अख़्तियार की है। इस बात से डरकर इस खतरे का मुकाबिला करने के लिए रूस ने अपने चारों तरफ़ क़िलेबन्दी करने की कोशिश की है और बाल्टिक राज्यों में उसकी जो नीति रही है, वह भी इसी बात को ज़ाहिर करती है। फ़िनलैण्ड का डर उसे नहीं है, बल्कि डर उसे यह है कि कहीं फ़िनलैण्ड के प्लेटफार्म पर कूद-फाँदकर दूसरे राज्य उसपर हमला न कर दें।

कुछ बरसों से यह बात सब जानते हैं कि नात्सियों ने कूटनीति से

फ़िनलैण्ड में होकर रूस पर हमला करने की योजनाएँ बनायी थीं। नक्शे पर निगाह डालने से पता चलेगा कि यह कितना व्यावहारिक है और किस प्रकार फिनलैण्ड की सरहद से लेनिनग्रेड के बड़े नगर तक आसानी से फौज जा सकती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए सोवियट सरकार की अपने इस महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध केन्द्र को बचाने की उत्सुकता समझ में आ सकती है।

जबसे इंग्लैण्ड-फ्रांस-जर्मनी की यह लड़ाई शुरू हुई है, तभी से सोवियट की नीति संभावित हमले से अपने को बचाने और अपनी स्थिति को मजबूत करने की रही है। यह नीति (संधि के बावजूद भी) नात्सियों और अंग्रेजों के दावों के खिलाफ़ रही है। असल में वह स्वार्थपूर्ण रूप से सोवियट-समर्थक रही है। हाल ही में रूस ने जो-कुछ किया है, उससे हम सहमत नहीं हैं, लेकिन दुश्मनों के संभावित मेल के खिलाफ़ अपने बचाव की उसकी हार्दिक इच्छा को हम पूरी तरह से समझ सकते हैं। नतीजा यह हुआ है कि इस नीति से मित्र-राष्ट्र जितने कमजोर हुए हैं, उससे ज्यादा नात्सी जर्मनी कमजोर हुआ है। जर्मन सत्ता उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व में शिकंजे में आ गयी है और अगर सोवियटों को नहीं हटाया जायेगा, तो इन दिशाओं में नात्सियों के बढ़ने के तमाम रास्ते बन्द हो जायेंगे।

हम फिर इस बात को याद रखें कि ब्रिटिश और फ्रेंच साम्राज्यवाद को जितनी घृणा नात्सीवाद से है, उससे कहीं ज्यादा सोवियट रूस से है। इस बात की संभावना है, और इसको हम नामंजूर नहीं कर सकते कि कुछ राष्ट्र आपस में मिल जायें और सोवियट के खिलाफ मोर्चा बनाकर उसे नष्ट करने की धमकी दें। हम नहीं सोचते कि इनको इसमें जीत हो सकती है। लेकिन रूस का जो नक्शा [illegible] बन गया है, उसमें

कोई रुकावट आ गयी या वह ख़त्म हो गया, तो यह बड़े दुःख की घटना होगी। यह जरूर है कि इस प्रयोग में बहुत-सी अवांछनीय बातें भी हुई हैं, जिनपर हमने बहुत अफ़सोस किया है; लेकिन फिर भी लाखों-करोड़ों सर्व-साधारण लोग उसपर आशा बांधे हुए हैं।

सोवियट रूस ही था जिसने ख़ुशी के साथ फ़िनलैण्ड को आजादी दे दी और सिर्फ़ कुछ ही दिन गुज़रे फ़िनलैण्ड के प्रधान मन्त्री ने खुद कहा था कि सोवियट की मांगों से फ़िनलैंड की आजादी को कोई खतरा नहीं हुआ। लेकिन फ़िनलैण्ड के पीछे छिपकर तो दूसरी ताक़तें वार करने लगीं और आज फ़िनलैण्ड में जो कशमकश चल रही है, वह इसी संघर्ष का फल है।

इसलिए हम होशियार रहें और एकतर्फ़ा व पक्षपातपूर्ण खबरों पर समय से पहले निर्णय न करें। लेकिन जहांतक हिन्दुस्तान के हम लोगों का सम्बन्ध है उनके लिए तो नसीहत स्पष्ट है। आज दुनिया के हरेक देश को अपने बचाव का उपाय करना होगा और हरेक आदमी को अपनी ही ताक़त पर भरोसा करना होगा। हम भी अपनी शक्ति का अपने ही अहिंसात्मक लेकिन प्रभावशाली ढंग से निर्माण करें, जिससे हम साम्राज्यवाद के हर तरह के हमलों का मुकाबला करके हिन्दुस्तान की आजादी हासिल कर सकें।

३ दिसम्बर, १९३९

: १६ :

अब रूस का क्या होगा ?

पिछले कुछ महीनों में बहुत-से हेर-फेर हुए हैं, बहुतेरी मुसीबतें आयीं हैं और दुनिया और भी गहरे दलदल में फँसती जा रही है। भविष्य अनिश्चित और अन्धकारपूर्ण है और वह ज्वलन्त आदर्शवाद जो कि तीस बरसों के संघर्षों और विश्वासघातों में भी किसी तरह बच रहा था, आज गायब होता नजर आता है। दुनिया में लड़ाई और हिंसा, आक्रमण और कूटनीति और विशुद्ध अवसरवाद का बोलबाला है और आगे आनेवाली चीजों की शक्ल और भी अस्पष्ट और विरूप होती जाती है। राजनीतिज्ञों की लच्छेदार भाषा की कोई परवा नहीं करता, न उनपर कोई भरोसा करता है और न उनके वायदों पर ही किसीको यकीन आता है। नयी आनेवाली व्यवस्था और सच्चा होनेवाला सपना अब कहाँ चला गया ? किसके पेट से वह पैदा होगा ? क्या इस बढ़ती हुई बदअमनी के आकाश में विश्वबन्धुता और स्वतन्त्रता के उज्ज्वल भाग्य-नक्षत्र का उदय होगा ?

शायद हमारा निराश होना उचित नहीं है, और हम श्रद्धा और साहस खो बैठे हैं। भविष्य ऐसा अन्धकारपूर्ण नहीं है जैसा आज की दुनिया हमें सोचने को मजबूर कर रही है। मगर उस भविष्य की जड़ें वर्तमान ही में हैं और वह उसी जमीन पर पनपेगा भी, जिसपर आज हम खड़े हुए हैं। इसीसे आज हम हिम्मत छोड़े बैठे हैं। लड़ाई और उसके साथ आनेवाले आतंक से भी हम उतने निराश नहीं होते जितने उन आदर्शों की कमजोरी से कि जिन्होंने अबतक हमें ताकत दी है। वे

आदर्श मौजूद ज़रूर हैं; लेकिन अन्देशे पैदा हो गये हैं और वे मन को डगमगा रहे हैं। क्या मानव-जाति इन आदर्शों को प्रत्यक्ष करने के लिए तैयार है? क्या वह निकट भविष्य में ही उन्हें पा सकती है?

करीब-करीब सभी जगह (हालाँकि हिन्दुस्तान में उतनी नहीं) प्रगतिशील शक्तियों का कमजोर पड़ जाना आज सब बातों से अधिक महत्त्व का दुःख की बात है। धक्के-पर-धक्के लगने से वे चकनाचूर होकर गिर पड़े हैं और उस अस्त-व्यस्त और मायूस फौज की तरह हो गये हैं जो नहीं जानती कि अब किधर मुड़ना है? आशाओं और आकांक्षाओं का उनका प्रतीक सोवियट रूस उस ऊँचे सिंहासन से उतर आया है, जहाँ उसके उत्कट बहादुरों ने उसे बिठा दिया था और दिखावटी राजनीतिक लाभ के लिए उसने अपनी नैतिक प्रतिष्ठा और मित्रता को बेच डाला है।

रूस के बारे में उदासीन रहना किसीके लिए कभी आसान नहीं रहा; या तो उसकी खूब तारीफ की गयी है और उसे बढ़ावा दिया गया है या फिर उससे निहायत नफरत की गयी है। ये दोनों ही रवैये लाज़मी तौर पर ग़लत थे; लेकिन फिर भी दोनों समझ में आ सकते थे। जो लोग स्थापित स्वार्थों और पुराने विशेषाधिकारों को छाती से लगाये हुए थे और देखते थे कि रूस उन दोनों की जड़ें उखाड़ फेंकेगा, उनमें उसके लिए घृणा होना स्वाभाविक था और जो लोग पुरानी व्यवस्था में होनेवाले संघर्षों और मुसीबतों से ऊब गये थे, उनके दिमाग़ में एक अधिक उपयुक्त और अधिक वैज्ञानिक आर्थिक प्रणाली पर खड़ी हुई एक नयी व्यवस्था के लिए उत्साह भर आया था। इस बड़े भारी कार्य से वे जोशीले लोग इतने खुश हो गये कि उसके साथ जो बहुत-सी बुराइयाँ आयीं, उनको उन्होंने दरगुज़र या माफ़ कर दिया वह ठीक ही था, सबसे ज्यादा वक़त तो रूस में हुए बुनियादी हेरफेर की थी, फिर

भी यह उसके साथ कोई उपचार नहीं था कि जो भी चीज उसकी तरफ से होती, उसे बिना सोचे-समझे मंजूर कर लिया जाता। अगर कोई राष्ट्र या जनता आत्म-तुष्ट हो जाती है और तमाम आलोचनाओं को अनसुना कर देती है तो वह कभी खुशहाल नहीं हो सकती।

रूस ने जो योजनाएँ बनायीं और कई दिशाओं में जो अद्भुत उन्नति की, उससे उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी। तब आयीं ढेर की ढेर आपत्तियाँ, जिन्होंने उसकी आशाओं पर अँधेरा छा दिया। भले ही वे सब या अधिकांश आपत्तियाँ उचित भी ठहरतीं, लेकिन इतने बड़े पैमाने पर ऐसे षड्यन्त्र और बिगाड़ ऐसे देश में होने ही क्यों चाहिएँ कि जो एक महान् क्रांति में से निकल चुका हो? अन्दरूनी हालत अच्छी नहीं थी। हिंसा होने लगी और आलोचनाओं को दबाया जाने लगा। लेकिन चोटी पर होनेवाले झगड़ों का आम जनता के ऊपर कोई असर नहीं पड़ा और वह तरक्की करती रही। यह आर्थिक व्यवस्था अपने आपमें मुनासिब ही थी।

रूस की अन्दरूनी हालतों के बारे में चाहे कुछ भी शंकाएँ रही हों, लेकिन बाहरी नीति के बारे में किसीको कोई शक न था। हर काल यह नीति शान्ति पर, सामूहिक सुरक्षितता पर और आक्रमण का विरोध करनेवाले लोगों को सहायता और बढ़ावा देने पर टिकी रही। उस समय जबकि नात्सी और फासिस्ट ताकतें खुले आम लेकिन निर्लज्जतापूर्ण आक्रमण करती जा रही थीं और इंग्लैंड और फ्रांस अपनी विदेशी नीति से उनको मदद पहुँचा रहे थे, तब सोवियट रूस अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्पष्ट और सुसंगठित नीति का प्रतीक बना हुआ था। चूँकि उसने पच्छिमी पूँजीपति ताकतों की धोखेभरी साजिशों में उनका साथ नहीं दिया, इसलिए उसकी अवहेलना की गयी, उसका अपमान किया गया और उसे नीचा दिखाया गया।

में वे अपने आक्रमणों और विश्वासघातों को छुपाकर, जिन लोगों पर दमन किया जा रहा है उनके हिमायती बनकर, इस आक्रमण के विरुद्ध उठ खड़े होने का दिखावा करने लगे हैं। समाजवाद और सोवियट रूस के साम्यवादी राष्ट्र के प्रति उनको जो घृणा थी उसे काम करने के अनुकूल वायुमण्डल अब मिल गया है। जो राष्ट्र-संघ आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया पर बलात्कार होने के वक्त मज़े से चैन की नींद सोता रहा था, जिसने म्यूनिक के समझौते को बड़ा तत्त्वज्ञानी बनकर मंजूर कर लिया था, जिसने स्पेन के मामले में दस्तन्दाज़ी न करने की बदनाम नीति की तरफ से आँखें मूंद ली थीं और पोलैंड पर जो नात्सी हमला हुआ उसके बारे में जिसने एक शब्द तक नहीं कहा था, वह अकस्मात् जाग पड़ा है और सोवियट रूस पर चोट करने का एक हथियार बन रहा है।

लेकिन हर जगह—यूरप, अमरीका और एशिया में—प्रगतिशील विचारों पर जो इसका असर पड़ा है, दुख की बात दरअसल वही है। जिनके हाथ में आज रूस की सरकार है जिन्होंने अपने उद्देश्य पर इतनी गहरी चोट की है कि जितनी एक या बहुत से दुश्मन भी मिलकर नहीं कर सकते थे। सद्भावनाओं की जो बड़ी पूँजी उनके पास थी, उसे उन्होंने खो दिया और उसके साथ हमले को जोड़कर उन्होंने समाजवाद तक के उद्देश्य को हानि पहुँचायी। उन दोनों में कोई ज़रूरी वास्ता नहीं है और उन्हें दूर-दूर रखना ही अच्छा है। लेकिन सोवियट के आक्रमण की हिमायत और तरफ़दारी करना या चुपचाप रहकर उसे मंजूर कर लेना समाजवाद के साथ बुरा करना है। कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने सोवियट सरकार की हरेक प्रवृत्ति का समर्थन करना धर्म बना लिया है और जो कोई ऐसी प्रवृत्ति की आलोचना या निन्दा करता है, उसे वे विधर्मी और बाग़ी करार देते हैं। यह अन्ध-विश्वास है, जिसका विवेक से कोई

सम्बन्ध नहीं है। क्या इसी बुनियाद पर हम यहाँपर या किसी और जगह आजादी की इमारत खड़ी कर सकेंगे? दिमाग की सलामती और अपने मकसद की सचाई छोड़ देने से खुद हमें और हमारे उद्देश्य को भी खतरा ही हो सकता है। दूसरी किसी जगह हमारे लिए किये गये फैसलों से हम बँधे हुए नहीं हैं। हम अपने निर्णय आप करते हैं और अपनी नीति खुद बनाते हैं।

रूस के खिलाफ जो विगड़े और इकतरफा प्रचार की बाढ़ इधर आ रही है, उससे हमें होशियार होना चाहिए। विदेशों में या हिन्दुस्तान में रूस पर जो बेदर्दी के आक्रमण हो रहे हैं, उनसे हमें सतर्क रहना पड़ेगा। अगर हमें समाजवाद में श्रद्धा है तो उसको कायम रखना होगा और भरोसा रखना होगा कि समाजवादी व्यवस्था ही दुनिया की बुराइयों को दूर कर सकती है। हमें यह याद रखना होगा कि बहुत-सी बुराइयों के होते हुए भी सोवियट रूस ने इस आर्थिक पद्धति को क़ायम करके बहुत बड़ा काम किया है और अगर इस योजना का, जो भविष्य के लिए बहुत आशाप्रद है, अन्त हो जाये, या वह कमजोर हो जाये, तो वह बड़े दुख की बात होगी। हम उसमें हिस्सेदार न बनेंगे।

लेकिन हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि सोवियट सरकार ने बहुत से मामलों में बहुत ज्यादा गलती की है और हिंसा का, अवसरवाद का और सत्तावाद का बहुत आसरा लिया है। अपने साधनों को उसने बुराइयों से बरी रखने की कोशिश नहीं की, और इसलिए इन साधनों के साथ मेल बैठाने के लिए उनके उद्देश्यों को इधर-से-उधर किया जा रहा है। साधन तो उद्देश्य नहीं हैं। हाँ, वे उनपर काबू रखते हैं। लेकिन साधनों का उद्देश्य के साथ मेल होना चाहिए, नहीं तो उद्देश्य का रूप बिगड़ जायेगा और उस ध्येय से बिल्कुल भिन्न हो जायेगा जो हमारे लक्ष में था।

सलिए हिन्दुस्तान की ओर से हम अपनी दोस्ताना हमदर्दी रूस के समाजवाद के प्रति दिखाते हैं। अगर उसे तोड़ने की किसी भी प्रकार की कोशिश की जायेगी तो उसको हम बहुत नापसन्द करेंगे। लेकिन रूस की सरकार की राजनीतिक चालों और आक्रमणों से हमारी सहानुभूति नहीं है। फ़िनलैण्ड के खिलाफ़ जो लड़ाई हो रही है, उसमें हमारी सहानुभूति फ़िनलैण्ड के लोगों के साथ है कि जिन्होंने अपनी आज़ादी को कायम रखने के लिए इतनी बहादुरी से लड़ाई लड़ी है। अगर रूस इसमें हठ किये जाता है तो इसका परिणाम उसके और दुनिया के लिए घातक होगा।

और यह भी हमें याद रखना होगा कि संक्रमण और परिवर्तन के इस क्रांतिकारी युग में जब कि हमारे पुराने आदर्श गड़बड़ हो गये हैं, और हम नये मार्ग की खोज में हैं, तो हमें अपने मन को स्वस्थ और ध्येय को दृढ़ बनाये रखना चाहिए और उन साधनों और तरीकों पर भी अटल रहना चाहिए कि जो उचित हों और हमारे आदर्शों और ध्येयों के अनुरूप हों। इन ध्येयों की प्राप्ति हिंसा या सत्तावाद या अवसरवाद से नहीं होगी। हमें अहिंसा का पालन करना होगा। उचित कर्तव्य में डटना होगा और इस प्रकार उस आज़ाद हिन्दुस्तान का निर्माण करना होगा कि जिसके लिए हम पसीना बहा रहे हैं।

१६ जनवरी, १९४०

: १७ :

लड़खड़ाती दुनिया

पिछले कुछ हफ्तों में हिन्दुस्तान को अचानक अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं और उसकी हिन्दुस्तान में होनेवाली प्रतिक्रिया के बारे में गभीर होकर सोचना पड़ा है। हममें से कुछ लोग कई बरसो से अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों में टाँग अड़ाते रहे हे और कभी-कभी देश के बहुतेरे लोगों में अबीसीनिया, फिलस्तीन, चेको-स्लोवाकिया, स्पेन और चीन के बारे में थोड़ी देर को दिलचस्पी पैदा होती रही है। मगर बुनियादी तौर पर तो हम एक राष्ट्र के नाते अपने ही राष्ट्रीय मसलों में बहुत ज्यादा मशगूल रहे। यूरोप में लड़ाई छिड जाने से लाजमी तौर पर विदेश की घटनाओं में और भी ज्यादा दिलचस्पी पैदा होनी चाहिए थी। पर यह सब होने भी आखिर वह लड़ाई तो दूरदराज की ही थी और हमारी उत्सुकता एक दर्शक की-सी थी। १० मई हिन्दुस्तान के इतिहास में मशहूर है। इस दिन पश्चिमी यूरोप के निचले देशों, हालैण्ड और बेलजियम, पर हमला हुआ। बाद में जो घटनाएँ एक के बाद एक तेजी से घटित हुई उन्होने हमारे दिमागों में थोड़ी देर की सरगर्मी पैदा करदी है और लड़ाई से हो सकनेवाले नतीजों को हमारे पास ला दिया है। नयी समस्याएँ अचानक हमारे सामने आ गयी हैं, और हमें एक दम नयी परिस्थितियों का सामना करना है।

ऐसी विकट परिस्थितियों में कांग्रेस कार्य-समिति की पिछली दो बैठकें हुई और समिति ने उनसे अपना मेल बैठाने की कोशिश की। जनता ने कार्य-समिति के प्रस्ताव देखे हैं और उनके बारे में दलीलें भी

हुई हैं। अगर हम उस अजीव और वदलनेवाली दुनिया को, जिसमें हम रहते हैं, समझना चाहते हैं तो यूरप में जो-कुछ हुआ उसपर और आगे उसके क्या-क्या नतीजे निकलेंगे इसपर निष्पक्ष होकर विचार कर लेना अच्छा होगा। किसी इच्छा के साथ सोचना-विचारना ही तो कभी काम का नहीं होता, लेकिन आज तो वह खतरनाक है। आज भले ही और सारी चीजें इतना वदल गयी हों कि पहचानी भी न जा सकें, लेकिन हम सवों की पुरानी लीक पर चलते जाने की, पुराने नारे वुलन्द करते रहने की और पुरानी वातों को ही सोचते रहने की वहुत ज्यादा आदत पड़ गयी है। वुनियादी सिद्धान्तों और उद्देश्यों में एक खास स्थायित्व और सिलसिला होना चाहिए, लेकिन दूसरी तरफ़ असलियत चाहती है कि हम अपने आपको उनके साथ निभालें।

क्या-क्या हो चुका है? यूरोप का नक़शा विलकुल पलट गया है और वहुत-से राष्ट्र अव नहीं रहे हैं। पोलैण्ड गया, डेनमार्क और नार्वे ने सर झुका दिया, हालैंड की हार हुई, वेलजियम ने घुटने टेक दिये और फ्रांस का पतन हुआ—एक दम और पूरी तौर से। ये सव जर्मन-साम्राज्य के पेट में समा गये। वाल्टिक देशों और वसरेविया को करीव-करीव सोवियट रूस ने हड़प लिया।

ये उलट-फेर वहुत वड़े-वड़े हैं मगर फिर भी दिन-पर-दिन यह अधिक-से-अधिक दिखाई देता जारहा है कि यह तो जो-कुछ होनेवाला है, उसकी भूमिका भर है। हम महज एक वड़ी दूर-दूर फैली लड़ाई और उससे होनेवाली भयंकर वरवादियों को ही नहीं देख रहे हैं, वल्कि आज हम एक वड़े महत्वपूर्ण क्रान्ति-युग में रह रहे हैं—जो आज तक के इतिहास के प्रश्नों में आये हुए युग से भी अधिक व्यापक और विस्तीर्ण है। इस युद्ध का परिणाम-कुछ भी हो, यह इन्किलाव तो

अपना काम पूरा करके ही रहेगा। जबतक यह होता रहेगा, तबतक हमारी इस धरती पर शांति और संतुलन कायम नहीं हो सकता।

हमें यह समझ ही लेना चाहिए कि पुरानी दुनिया बीत चुकी है—चाहे वह हमें पसन्द हो या नहीं। जो लोग उसके सबसे ज्यादा प्रतीक रहे हैं, उनका कोई अस्तित्व नहीं रहा। वे तो उस गये-गुज़रे कल के भूत मात्र बनकर रह गये हैं।

अगर अन्त में नात्सी लोग जीते—जैसा कि अच्छी तरह मुमकिन है—तो वे यूरप और दुनिया की क्या हालत कर डालेंगे इसमें कोई शक नहीं रह गया है। वे जर्मनी के नेतृत्व और कब्जे में एक नये ढंग का यूरोपीय संघ बना डालेंगे—यूरोप को एक नात्सी साम्राज्य बना डालेंगे। छोटे-छोटे राष्ट्र नहीं रहेंगे और न रहेगा प्रजातन्त्र—जैसा कि हमने उसे समझा है—और न पूँजीवादी व्यवस्था रहेगी जैसी कि अबतक चली आरही है। एक प्रकार का राष्ट्रीय पूँजीवाद यूरप में फूले-फलेगा और बड़े-बड़े उद्योग जर्मनी के प्रदेश में केन्द्रित हो जायेंगे और दूसरे बड़े-बड़े देश—जिनमें फ्रांस भी शामिल होगा—करीब-करीब खेतिहर देश रह जायँगे। इस प्रकार की प्रणाली एक सामूहिक महा-राष्ट्रीय अर्थनीति पर खड़ी की जायगी और उसपर सत्ताधारियों का कब्जा होगा। नात्सी साम्राज्य के उपनिवेश, खासकर अफ्रीका में, हो जायेंगे, मगर वह दूसरे गैर-यूरोपियन देशों की अर्थनीति को भी कब्जे में करने और उनके निवासियों की श्रम-शक्ति का उपयोग करने की कोशिश में रहेगा। इस तरह के शक्ति-शाली सत्ताधारी संघ का आर्थिक भार भयंकर हो जायेगा और रही-सही दुनिया को अपने-आप उसके साथ निबाह करना और चलना पड़ेगा।

तो ऐसी है नात्सियों की योजना। अगर यह पूरी हुई तो इग्लैंण्ड का

क्या होगा ? अगर जर्मनी की पूरी-पूरी विजय हुई तो इंग्लैण्ड में ऐसा कोई राष्ट्र नहीं रह जायेगा—जिसकी कोई पूछ हो। यूरप में उसका कोई असर वाकी नहीं रह जायेगा; साम्राज्य उसका छिन जायेगा। फिर चाहे वह जर्मनीकृत यूरोपीय संघ में शामिल हो चाहे न हो, इसका कोई मूल्य न होगा। अंग्रेज़ी राज्य का केन्द्र हटकर दूसरी जगह, वहुत मुमकिन है कनाडा में, चला जायेगा और वे लोग अमरीका के संयुक्त-राष्ट्र से निकट सम्पर्क स्थापित कर लेंगे या उसी-में मिल भी जायेंगे।

यह वहुत-कुछ सोवियट रूस पर निर्भर रहेगा। इसम शक़ नहीं कि रूस को नात्सियों की ताक़त का इतनी तेज़ी से वढ़ना क़तई नापसंद है, क्योंकि वह आगे जाकर उसके लिए खतरनाक हो सकता है। फिर भी चाहे जो हो वह इस परिवर्तन के मुआफ़िक हो जायेगा, वशर्ते कि लड़ाई वहुत अर्से तक न चलती रही और लड़नेवाले थक न गये।

जर्मनी की तेज़ी से जीत होती गयी तो इस तरह नात्सी साम्राज्य यूरप में कायम हो जायेगा, जिससे उसके कब्जे में वड़े-वड़े प्रदेश आ जायेंगे। पूरब में उसका सम्बन्ध जापान से हो सकता है। दो और संघ कायम रहेंगे—सोवियट रूस और संयुक्तराज्य अमरीका—जो दोनों के दोनों खासकर जर्मनी के दुश्मन हैं। भले ही लड़ाई खत्म हो चुके मगर इन शक्तिशाली साम्राज्यों में भी भविष्य में होनेवाली लड़ाई के वीज वने रहेंगे।

और अगले ही कुछ महीनों में अगर नात्सियों की जीत न हुई तो क्या होगा ? शायद एक अर्से तक लड़ाई चलेगी, जिसमें दोनों पक्ष बुरी तरह थक जायेंगे और दोनों को भारी नुकसान वैठेगा। इंग्लैण्ड और यूरप का आर्थिक ढाँचा विखर जायेगा और उसका एक ही मुमकिन नतीजा

यह होगा कि एक मुस्तलिक आर्थिक प्रणाली की बुनियाद पर राष्ट्रों का संघ या विश्व-संघ कायम होगा—और उत्पत्ति, निर्माण और वितरण पर संसार का बड़ा नियन्त्रण रहेगा। आज की पूँजी-वादी प्रणाली मिट जायेगी। ब्रिटिश साम्राज्य का खात्मा हो जायेगा। छोटे-छोटे राष्ट्र स्वतन्त्र इकाई बनकर नहीं रह सकेंगे। हो सकता है कि धन का अर्थ भी बदल जाये।

इसलिए हर हालत में इस युद्ध से मूलभूत राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन होगा जो कि मौजूदा हालत के ज्यादा मुआफ़िक होगा, जिसमें राष्ट्रों के बीच निकटतर सम्बन्ध स्थापित हो जायेगा और अन्तर्राष्ट्रीय रुकावटें मिट जायेंगी। जर्मनी की ताकत आज उसकी अदम्य शक्ति और बड़ी फौजों में नहीं है जितनी इस बात में है कि शायद आप ही आप वह ऐतिहासिक घटनाओं का निर्माता हो गया है। वह इतिहास को बुरी दिशा में ले जाने की कोशिश में है, थोड़ी देर को वह उसमें सफल भी हो सकता है। फ्रांस और इंग्लैंड की कमजोरी का खास कारण यही हुआ कि वे ऐसी प्रणालियों और ढाँचों से चिपटे रहे, जो बर्बाद होनेवाले थे। उनके साम्राज्य में या उनकी आर्थिक प्रणाली में कोई चीज ऐसी थी जो नष्ट होनी थी। उनको पिछले बीस बरसों में बार-बार मौका मिला था कि वे अपने आपको इतिहास की परिस्थितियों के अनुकूल बना लें और सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता पर टिकी हुई एक वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था कायम करने में नेतृत्व करें। वे पिछले जमाने से मिले अपने लाभों को न छोड़ पाये और स्थापित स्वार्थों और साम्राज्य से चिपटे रहे और आज जब वे उनसे हाथ धो बैठे हैं, तो अब क्या हो सकता है?

कुछ समय के लिए फ्रांस तो मिट ही गया, लेकिन इंग्लैंड ने अब

भी सवक़ नहीं लिया। वह अब भी साम्राज्य की बात कर रहा है और अपने खास हितों व स्वार्थों को बनाये रखना चाह रहा है। आज यह देखकर अफ़सोस है कि एक महान् जाति इतनी अन्धी हो गयी है कि उसे और कुछ नहीं सूझ रहा है। सूझता है तो सिर्फ़ यही कि एक वर्ग के संकुचित हित कायम रहें। वह सारा खतरा उठाने को तैयार है; लेकिन ऐसा कार्य करने को तैयार नहीं जिससे वह दुनिया के साथ हो जाये और बड़े-बड़े कदम से चलनेवाली महान् ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के अनुकूल बन सके।

१६ जुलाई, १९४०

: १८ :

हमारा क्या होगा ?

जर्मनी की हार होगी कि जीत ? इससे यूरोप और दुनिया के भविष्य में बेशक बड़ा फर्क पड़ेगा। फिर भी दोनों में से कोई एक बात होने से ही ऐसी खास तब्दीलियाँ होंगी जिनका असर काफी गहरा होगा। छोटे-छोटे राष्ट्र मिट जायेंगे और उनकी जगह या तो विश्व-संघ कायम हो जायेगा, या तीन या चार संघ-राज्य कायम हो जायेंगे। अगर दूसरी बात हुई तो भीतरी और बाहरी दोनों तरह के लड़ाई-झगड़े चलते रहेंगे। अन्दरूनी झगड़े इस कारण रहेंगे कि साम्राज्य में उन दूसरे राष्ट्र या देश-वासियों पर जबरन शासन होता ही है, जो अपने आपको आजाद करने की कोशिश करते हैं। बाहरी झगड़े इस कारण रहेंगे कि दूसरे संघ-राज्यों या साम्राज्यों से उनका मुकाबला रहेगा। हरेक शायद कोशिश करे कि उसके प्रदेशों में स्वावलम्बी अर्थनीति (autarchy) कायम हो, परन्तु इसमे सन्तुलन या स्थायित्व पैदा नहीं हो सकता और शांति से या फिर लड़ाई से एक अकेला विश्व-संघ स्थापित होकर रहेगा। अनिवार्य रूप से ऐसा होकर रहेगा क्योंकि इसको छोड़कर दूसरा रास्ता तो आपस में बड़ी-बड़ी बरबादियाँ करते रहने और जंगली हालत में चले जाने का है। आजाद राष्ट्रों के सच्चे संगठन से ही ऐसा विश्व-संघ बन सकेगा। जबरन थोपी हुई व्यवस्था के मानी तो यह होंगे कि जिसे संघ कहा जाता है वह तो एक ऐसा संघ-राज्य होगा, जिसके अन्दर उसीकी बरबादी के बीज मौजूद होंगे।

युद्ध का नतीजा कुछ भी हो, यह साफ दिखाई देता है कि अंग्रेजी

साम्राज्य का खात्मा हो जायेगा। इसके लिए काफी कारण हैं कि ऐसा क्यों होना चाहिए, मगर युद्ध-चक्र ने यह बात स्पष्ट करदी है। भले ही कई संघ-साम्राज्य बन जायें, लेकिन आज ब्रिटिश साम्राज्य की जैसी बनावट है, उस शक्ल में तो वह नहीं रहेगा। हो सकता है कि इंग्लैण्ड-अमरीका का सम्मिलित संघ बन जाये और दूसरे देश भी उसमें शरीक हो जायें या एक संघ-साम्राज्य कायम हो जाये। ऐसे संघ या साम्राज्य में इंग्लैण्ड का दर्जा निचला रहेगा। आज इंग्लैण्ड के पास जो दूर-दूर फैला हुआ साम्राज्य है उस किस्म का साम्राज्य आइंदा न रहेगा; भले ही संभाव्य विश्वव्यापी संघ-साम्राज्य में उसकी कोई जगह रहे तो रहे। ऐसी दूर-दूर बिखरी हुई सल्तनत के लिए यह भी लाज़मी है कि समुद्रों और दुनिया के व्यापारिक रास्तों पर कब्ज़ा हो; साथ ही हवाई ताक़त भी काफी बढ़ी-चढ़ी हो। दुनिया भर पर हावी होसके ऐसी ताक़त आज न कोई देश हासिल कर सकता है, न राज्यों का कोई गुट। अगर साम्राज्य कायम रहे, तो वे खास तौर पर संधिबद्ध साम्राज्य होंगे और मुमकिन है उनके कुछ दूर बसे हुए उपनिवेश भी रहें जिनसे कोई खास फ़र्क न पड़नेवाला हो।'

लड़ाई शुरू होनें के क़रीब एक बरस पहले कई राष्ट्रों का एक संघ स्थापित होने की सम्भावना पर बहस हुई थी। क्लेरेन्स स्ट्रेट के 'अब संघ' लेख ने बहुत ध्यान खींचा था। दूसरे कई प्रस्ताव भी थे। क़रीब-क़रीब सबमें एक खास बड़ी खामी यह थी कि वे दुनिया को ऐसी निगाह से देखते थे, मानो उसमें सिर्फ़ यूरप और अमरीका ही हों। चीन, हिन्दुस्तान और पूरब के दूसरे मुल्कों की बिल्कुल उपेक्षा की गयी थी। इन प्रस्तावों पर हालांकि बहुत बहस हुई और उनका स्वागत भी हुआ, मगर लड़ाई के पहले की दुनिया में उनपर अमल न हो सका। उनकी मुख़ालफ़त

करने की किसी भी बड़े देश की जरा भी मर्जी न थी। तो जबकि इससे बड़ा भारी परिवर्तन हो सकता था, वह समय अब गुजर गया। और आज कुछ देश और सरकारें इस खोये हुए मौके पर बुरी तरह पछता रहे हैं। जबकि फ्रांस का प्रजातन्त्र तड़फड़ा रहा था, इग्लैण्ड की सरकार ने तात्कालिक खतरे से मजबूर होकर फ्रास से मिलकर सघ बनाने का अजीब प्रस्ताव पेश किया। तब इसके लिए वक्त कहाँ रहा था ? और इंग्लैण्ड के मामले में भी वक्त नहीं रहा है। लेकिन इससे बिजली की तरह पता चल गया कि स्वतन्त्र राष्ट्रों के पुराने विचार और ब्रिटिश साम्राज्य के विचार भी अब काम के नहीं रहे।

और फिर भी कुछ लोग अब भी 'औपनिवेशिक स्वराज' की या उस-जैसी बात करते हैं। यह नही समझते कि यह खयाल अब मुर्दा हो गया है; उसे फिर जिन्दगी नहीं दी जा सकती। और कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान का बँटवारा कर दो और उनकी बुनियाद बड़ी अजीब और बेहूदी है। वे भूल जाते है कि दुनिया के अब और ज्यादा टुकडे करने की जरूरत नही। जरूरत है एकीकरण की, राष्ट्रों का सघ बनाने की। दुनिया अब छोटे-छोटे राज्यों को ज्यादा बर्दाश्त नही कर सकती।

तब, हमारी आजादी का क्या होगा ? क्या उससे आज के राष्ट्रों का सगठन नष्ट न होगा ? और विश्व-सघ में उसका कैसे निबाह होगा ? यह तो बिल्कुल सही है कि हम ब्रिटिश साम्राज्य का खात्मा इस कारण चाहते हैं कि साम्राज्यवाद से किसी सच्चे सघ की पैदायश होना नामुमकिन है। और किसी भी हालत में हिन्दुस्तान इस साम्राज्य में रहनेवाला नही है। लेकिन जिस आजादी को हम हासिल करना चाहते हैं, वह दूसरे राष्ट्रों के झुण्ड से अलग या उसके अलावा एक राष्ट्र के रूप में नहीं समझी जा रही है। हमने तो हमेशा

यही समझा है और उसीको पाना हमारा मक़सद है कि दुनिया का घनिष्ठ संगठन वन जाये और संघ या सम्मेलन के ज़रिये काम चले और उससे मिलकर हमें खुशी होगी। लेकिन हमसे यह कहा जाना कि हम औपनिवेशिक दर्जा मंजूर कर लें और हमारी मर्ज़ी के खिलाफ़ किसी खास तरह का संघ हमपर लादना तो आज की दुविधा के हालत में वड़ी वेहूदा वात है और किसी भी हालत में हम उसे वर्दाश्त करनेवाले नहीं हैं—चाहे उसका नतीजा कुछ भी क्यों न हो ?

लड़ाई का तीसरा लाज़िमी नतीजा यह भी हो सकता है कि मौजूदा पूँजीवाद खत्म हो जाये और विश्वव्यापी आर्थिक प्रणाली में सुन्दर व्यवस्था और नियन्त्रण लाया जाये। इसके साथ-ही-साथ पूँजीवादी प्रजातन्त्र भी वदल जायेगा, क्योंकि यह सम्पन्न और समृद्ध राष्ट्रों की शान-शौक़त की प्रणाली है। आइन्दा आनेवाले वुरे दिनों में वह नहीं चल सकती। इस तरह का प्रजातन्त्र तो अभी से ही लड़ाई के वजन से चूर-चूर हो गया है।

यह वड़े दुर्भाग्य की वात होगी कि प्रजातन्त्र खुद ही मिट जाये और डिक्टेटरशाही कोई शक्ल उसकी जगह आ जाये। यह खतरा है और हमें इससे अपनी रक्षा का प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन आज पश्चिम में जिस किस्म का प्रजातन्त्र नष्ट होते हुए हमनें देखा है उससे कहीं अधिक योग्य और कुछ अंशों में भिन्न प्रकार का प्रजातन्त्र ही आज जीवित रह सकता है।

आज जो घटनाचक्र घूम रहा है उसमें हम कहाँ हैं, हिन्दुस्तान कहाँ है ? यह काफी स्पष्ट हो चुका है। हम नात्सीवाद के विल्कुल खिलाफ़ हैं और हमारे खयाल से सारी दुनिया पर नात्सी जर्मनी का हावी हो जाना एक दुःखदायी घटना होगी। लेकिन हम तो इस वात से उकता गये और घवड़ा गये हैं कि हमपर ब्रिटिश साम्राज्यवाद थोपा जाये, भले ही वह

अब आखिरी घड़ियाँ गिन रहा हो—और हम इस या किसी दूसरे साम्राज्यवाद के औज़ार बनने के पहले बर्बाद हो जाना मंज़ूर कर लेंगे।

यह बड़े अचम्भे की बात है कि अब भी हिन्दुस्तान की आज़ादी ब्रिटिश सरकार के गले में अटकी हुई है और अचरज है कि वे अब भी पुराना शाही तरीका काम में लाते हैं और हमसे उम्मीद करते हैं कि हम उनके हुक्मों को मानें। अब भी वे हमको तकलीफ और नुकसान पहुँचाकर धमकियाँ देते हैं। अब भी वे हमें अपनी नसीहतें सुनाते हैं। जो कुछ हो रहा है उसे वे अब भी नहीं देखते। क्या उनका खयाल है कि वे जो नीति हिन्दुस्तान में अख्त्यार कर रहे हैं उससे वे इस लड़ाई के लिए ताकत हासिल कर लेंगे? क्या उनका खयाल है कि धमकियाँ देने और मजबूर करने से हिन्दुस्तान का दिल वे जीत लेंगे और उसकी मदद पा लेंगे? इस तरीके से थोड़ा पैसा उन्हें मिल सकता है, लेकिन इससे सोने-चाँदी से भी जिसकी कीमत कहीं ज्यादा है ऐसी रकम वे अपने नाम लिखा रहे हैं। हिन्दुस्तान में जो कुछ हो रहा है उसपर और छुटभैयों के कारनामों पर नाराजगी है।

हम लोगों के लिए जोकि महीनों से धीरज के साथ इन्तज़ार कर रहे हैं और जान-बूझकर कोशिश नहीं कर रहे हैं कि अंग्रेज़ों को उनके इस मुसीबत के वक्त हैरान करें यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद का काम करते रहना एक दैवी प्रकाश है। हममें से बहुत-सों की हमदर्दी अंग्रेज लोगों में है। मगर यह देखे बिना हम नहीं रह सकते कि अंग्रेज़ों का लड़ाई का एक मोर्चा हिन्दुस्तान में है और वह हमारे खिलाफ़ है। अगर ऐसा है तो चाहे अंजाम कुछ भी हो, हम उसका मुकाबला करेंगे। एक बात तो तैशुदा है ही। किसीको यह अधिकार नहीं है कि हमपर हुकूमत चलाये।

१७ जुलाई, १९४०

यही समझा है और उसीको पाना हमारा मक़सद है कि दुनिया का घनिष्ठ संगठन वन जाये और संघ या सम्मेलन के ज़रिये काम चले और उससे मिलकर हमें ख़ुशी होगी। लेकिन हमसे यह कहा जाना कि हम औपनिवेशिक दर्जा मंजूर कर लें और हमारी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ किसी खास तरह का संघ हमपर लादना तो आज की दुविधा के हालत में बड़ी वेहूदा वात है और किसी भी हालत में हम उसे वर्दाश्त करनेवाले नहीं हैं—चाहे उसका नतीजा कुछ भी क्यों न हो ?

लड़ाई का तीसरा लाज़िमी नतीजा यह भी हो सकता है कि मौजूदा पूंजीवाद खत्म हो जाये और विश्वव्यापी आर्थिक प्रणाली में सुन्दर व्यवस्था और नियन्त्रण लाया जाये। इसके साथ-ही-साथ पूंजीवादी प्रजातन्त्र भी वदल जायेगा, क्योंकि यह सम्पन्न और समृद्ध राष्ट्रों की शान-शौक़त की प्रणाली है। आइन्दा आनेवाले बुरे दिनों में वह नहीं चल सकती। इस तरह का प्रजातन्त्र तो अभी से ही लड़ाई के वजन से चूर-चूर हो गया है।

यह वड़े दुर्भाग्य की वात होगी कि प्रजातन्त्र ख़ुद ही मिट जाये और डिक्टेटरशाही कोई शक्ल उसकी जगह आ जाये। यह खतरा है और हमें इससे अपनी रक्षा का प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन आज पश्चिम में जिस किस्म का प्रजातन्त्र नष्ट होते हुए हमनें देखा है उससे कहीं अधिक योग्य और कुछ अंशों में भिन्न प्रकार का प्रजातन्त्र ही आज जीवित रह सकता है।

आज जो घटनाचक्र घूम रहा है उसमें हम कहाँ हैं, हिन्दुस्तान कहाँ है ? यह काफी स्पष्ट हो चुका है। हम नात्सीवाद के विल्कुल खिलाफ़ हैं और हमारे खयाल से सारी दुनिया पर नात्सी जर्मनी का हावी हो जाना एक दुःखदायी घटना होगी। लेकिन हम तो इस वात से उकता गये और घवड़ा गये हैं कि हमपर ब्रिटिश साम्राज्यवाद थोपा जाये, भले ही वह

अब आखिरी घड़ियाँ गिन रहा हो—और हम इस या किसी दूसरे साम्राज्य-वाद के औजार बनने के पहले बर्बाद हो जाना मजूर कर लेंगे ।

यह बड़े अचम्भे की बात है कि अब भी हिन्दुस्तान की आजादी ब्रिटिश सरकार के गले में अटकी हुई है और अचरज है कि वे अब भी पुराना शाही तरीका काम में लाते है और हमसे उम्मीद करते है कि हम उनके हुक्मो को मानें । अब भी वे हमको तकलीफ और नुक़सान पहुँचाकर धमकियाँ देते है । अब भी वे हमें अपनी नसीहतें सुनाते है । जो कुछ हो रहा है उसे वे अब भी नही देखते । क्या उनका खयाल है कि वे जो नीति हिन्दुस्तान में अख्त्यार कर रहे है उससे वे इस लडाई के लिए ताकत हासिल कर लेंगे ? क्या उनका खयाल है कि धमकियाँ देने और मजबूर करने से हिन्दुस्तान का दिल वे जीत लेंगे और उसकी मदद पा लेंगे ? इस तरीके से थोडा पैसा उन्हें मिल सकता है, लेकिन इसमे सोने-चाँदी से भी जिसकी वकत कहीं ज्यादा है ऐसी रकम वे अपने नाम लिखा रहे है । हिन्दुस्तान में जो कुछ हो रहा है उसपर और छुटमैयों के कारनामों पर नाराजगी है ।

हम लोगों के लिए जोकि महीनो से धीरज के साथ इन्तजार कर रहे है और जान-बूझकर कोशिश नही कर रहे है कि अंग्रेजों को उनके इस मुसीबत के वक़्त हैरान करें यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद का काम करते रहना एक दैवी प्रकाश है । हममें से बहुत-सों की हमदर्दी अंग्रेज लोगो से है । मगर यह देखे बिना हम नही रह सकते कि अंग्रेजों का लडाई का एक मोर्चा हिन्दुस्तान में है और वह हमारे खिलाफ़ है । अगर ऐसा है तो चाहे अंजाम कुछ भी हो, हम उसका मुकाबला करेंगे । एक बात तो तैशुदा है ही । किसीको यह अधिकार नहीं है कि हमपर हुकूमत चलाये ।

१७ जुलाई, १९४०

: १६ :

एशियाई संघ

जो कोई व्यक्ति घटनाओं के क्रम को देखता रहा है और भविष्य के परदे के भीतर झाँक सकता है, वह इस नतीजे पर पहुँचेगा कि हम एक युग के सिरे पर आचुके हैं। वह युग जिससे हमारी अवतक जान-पहचान थी, मर चुका है या हमारे सामने मरने के लिए तड़प रहा है। लेकिन वास्तव में इसके मानी यह नहीं हैं कि दुनिया अव न रहेगी। इसका यह भी मतलव नहीं है कि सभ्यता वरवाद हो जायेगी। लेकिन इसका इतना मतलव ज़रूर है कि उन वहुतेरी चीजों की—जिन्हें हम जानते हैं—जैसे राज-नैतिक स्वरूपों, आर्थिक ढाँचों, सामाजिक सम्वन्धों और इनसे सम्वन्धित हमारी तमाम वातों में एक वड़ी भारी कायापलट होनेवाली है। अगर कोई सोचता हो कि दुनिया इसी रूप में चलती रहेगी, जिसमें कि हम उसे देखते आ रहे हैं, तो उसका ऐसा सोचना फ़ज़ूल है।

यह मानी हुई वात है कि छोटे-छोटे देशों के दिन लद गये। यह भी पक्की वात है कि अपने-आप अकेले खड़े रहनेवाले वड़े देशों तक का ज़माना भी गुज़र गया। सोवियट-संघ (रूस) या संयुक्तराष्ट्र अमरीका जैसे वड़े-वड़े देश भले ही अकेले रह सकें, मगर सम्भव है उन्हें भी दूसरे देशों के समूहों के साथ शामिल होना पड़ जाये।

इसका एक ही वुद्धिसम्मत हल है और वह है स्वतन्त्र देशों का एक विश्व-संगठन। शायद हममें इतनी समझ नहीं है कि उस हल को ढूंढ़ निकालें या इतनी ताक़त नहीं कि उसे प्रत्यक्ष कर सकें।

अगर निकट भविष्य में कोई विश्व-संघ न वननेवाला हो और अगर

एकान्त राष्ट्रों का जमाना न रहा हो, तो ऐसी हालत में क्या होने की सम्भावना है ? हो सकता है कि राष्ट्रों के समूह या बड़े संघ बन जायँ। इसमें बड़ा भारी खतरा है, क्योंकि इससे एक-दूसरे के विरोधी जमाव होंगे और इसलिए बड़े पैमाने पर लड़ाइयाँ चलते रहने की सम्भावना है।

यह भी मुमकिन है कि इन समूहों के बनने से एक बड़े विश्वव्यापी राष्ट्र-समूह की नींव तैयार हो।

यूरप में लोग यूरपीय संघ या संगठन की बात करते हैं; कभी-कभी वे उसमें संयुक्तराष्ट्र अमरीका और ब्रिटिश उपनिवेशों को भी मिला लेते हैं। पर वे हमेशा चीन और भारत को छोड़ देते हैं। वे समझते हैं कि इन दोनों महादेशों की अवहेलना की जा सकती है। हिन्दुस्तान या चीन की अवहेलना के आधार पर कोई विश्वव्यापी व्यवस्था नहीं हो सकती और न हम यूरपीय और अमरीकन शक्तियों का एशिया और अफ्रीका का यह शोषण ही कभी बर्दाश्त कर सकते हैं।

अगर फेडरेशन बनने को हो तो हिन्दुस्तान का निबाह किसी यूरपीय संघ से नहीं हो सकता, क्योंकि वहाँ वह अर्ध-औपनिवेशिक दर्जे के भरोसे पड़ा रहेगा। इसलिए यह साफ है कि इन परिस्थितियों में एक पूर्वीय (एशियाई) संघ होना चाहिए जो पश्चिम का विरोधी न हो, बल्कि ऐसा होते हुए भी अपने ही पैरों पर खड़ा हो, आत्मनिर्भर हो और उन सबसे सम्बन्धित हो जो विश्वशान्ति और विश्वसंघ के लिए प्रयत्नशील हों।

ऐसे एशियाई संघ में अनिवार्यतः चीन और भारत, बर्मा और लंका होंगे और नेपाल और अफगानिस्तान को उसमें निकलना चाहिए। इसी प्रकार मलाया को भी। और कोई वजह नहीं कि स्याम और ईरान भी क्यों न शामिल हों और कुछ दूसरे राष्ट्र भी। वह स्वतन्त्र राष्ट्रों का एक ऐसा

: २० :

चीन और भारत

भारत और चीन युग-युगान्तर से दो पृथक् और पुरातन सभ्यताओं और संस्कृतियों के प्रतीक रहे हैं। वे दोनों एक दूसरे से बहुत भिन्न होते हुए भी अनेक बातों में समान हैं। सब पुराने देशों की तरह, उन्होंने अपने चारों ओर अपनी पुरानी रूढ़ियों और परम्पराओं के रूप में तरह-तरह के खण्डहर जमा कर रखे हैं। इनसे उनकी प्रगति में अड़चन पड़ती है लेकिन इस बेकार मलबे के ढेर के नीचे खरा सोना भी दबा पड़ा है जो उन्हें इन सब युगों में नष्ट होने से बचाता रहा है। भारत और चीन दोनों को जिस अवनति और दुर्भाग्य ने आ घेरा है, उनसे भी भीतर का वह सोना पिघल नहीं पाया है—जिससे कि वे भूतकाल में महान् बने थे और जिससे आज भी उनकी एक विशेष स्थिति है। कवि इक़बाल के शब्दों में भारत की भाँति चीन के विषय में भी यह कहा जा सकता है :

> यूनानो मिस्रो रोमाँ सब मिट गये जहाँ से
> अबतक मगर है बाक़ी नामोनिशाँ हमारा;
> कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
> सदियों रहा है दुश्मन दौरे ज़माँ हमारा।

बरसों से और विशेषकर पिछले तीन या कुछ ज्यादा बरस से चीन अग्नि-परीक्षा में से निकल रहा है। चीन की जनता के उस बेहिसाब सकट का अन्दाजा हम कैसे लगायें, जिनपर एक साम्राज्यवादी राष्ट्र ने चढ़ाई और हमला किया है; जिनपर अपने नगरों में हर रात बम बरसाये जाते

शक्तिशाली समूह होगा जिससे न केवल उनका अपना ही बल्कि संसार भर का हित होगा। केवल भौतिक शक्ति ही शक्ति नहीं होगी बल्कि कुछ और भी होगी जिसके कि वे इतने युगों से प्रतीक रहे हैं इसलिए यह मौका है कि हम एशियाई संघ की बात सोचें और इसके लिए जान-बूझ-कर प्रयत्न करें।

इस एशियाई संघ का औरों से भी बढ़कर दो राष्ट्रों से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध होगा। वे राष्ट्र होंगे सोवियट रूस और अमरीका।

पश्चिमी सभ्यता के पतन की बहुत चर्चा है। जहाँतक पश्चिम के आर्थिक साम्राज्यवाद और पूँजीवादी व्यवस्था का प्रश्न है, यह शायद ठीक भी है। लेकिन अन्त में जाकर यूरोपीय सभ्यता में जो कुछ सबसे अच्छा है उसे तो रहना ही चाहिए। यह सब होते हुए भी मेरे खयाल से यह सच है कि आज की सभ्यता खत्म हो रही है और उसकी राख में से एक नयी सभ्यता का निर्माण होगा। मुझे आशा है कि पूर्व और पश्चिम की अच्छी से अच्छी बातें नहीं मिटेंगी। पश्चिम ने जिस विज्ञान का नेतृत्व किया है उसके बिना किसी राष्ट्र का काम नहीं चल सकता। वह विज्ञान, और वह वैज्ञानिक स्पिरिट और तौर-तरीके आज जीवन के आधार बन गये हैं। विज्ञान में जहाँ एक ओर सत्य की खोज है, वहाँ दूसरी ओर मानव जाति की उन्नति की चाह है। लेकिन उस विज्ञान का उपयोग जिस बुरे उद्देश्य के लिए किया गया है उसने पश्चिम को बरबादी में डाला है। यहीं भारत और चीन अपने नियंत्रणकारी प्रभाव और संस्कृति और संयम के लम्बे इतिहास लेकर सामने आते हैं।

इसलिए हम भविष्य की ओर देखें और पूर्वीय (एशियाई) संघ के लिए प्रयत्न करें और यह न भूलें कि विराट् विश्वसंघ की दिशा में यही एक क़दम है।

: २० :

चीन और भारत

भारत और चीन युग-युगान्तर से दो पृथक् और पुरातन सभ्यताओं और संस्कृतियों के प्रतीक रहे हैं। वे दोनों एक दूसरे से बहुत भिन्न होते हुए भी अनेक बातों में समान हैं। सब पुराने देशों की तरह, उन्होंने अपने चारों ओर अपनी पुरानी रूढ़ियों और परम्पराओं के रूप में तरह-तरह के खण्डहर जमा कर रखे हैं। इनसे उनकी प्रगति में अड़चन पड़ती है लेकिन इस बेकार मलबे के ढेर के नीचे खरा सोना भी दबा पड़ा है जो उन्हें इन सब युगों में नष्ट होने से बचाता रहा है। भारत और चीन दोनों को जिस अवनति और दुर्भाग्य ने आ घेरा है, उनसे भी भीतर का वह सोना पिघल नहीं पाया है—जिससे कि वे भूतकाल में महान् बने थे और जिससे आज भी उनकी एक विशेष स्थिति है। कवि इक़बाल के शब्दों में भारत की भाँति चीन के विषय में भी यह कहा जा सकता है :

> यूनानो मिस्रो रोमां सब मिट गये जहां से
> अबतक मगर है बाक़ी नामोनिशां हमारा;
> कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
> सदियों रहा है दुश्मन दौरे ज़मां हमारा।

बरसों से और विशेषकर पिछले तीन या कुछ ज्यादा बरस से चीन अग्नि-परीक्षा में से निकल रहा है। चीन की जनता के उस बेहिसाब सकट का अन्दाजा हम कैसे लगायें, जिनपर एक साम्राज्यवादी राष्ट्र ने चढ़ाई और हमला किया है; जिनपर अपने नगरों में हर रात बम बरसाये जाते

हैं और जिन्हें एक प्रथम श्रेणी के शक्तिशाली राष्ट्र की लायी हुई आधुनिक भयंकरता का सामना करना पड़ा है। पिछले दो-तीन महीनों में लंदन को वमवारी से बहुत भारी नुकसान हुआ है; लेकिन उस चुंगकिंग का खयाल कीजिए जो वरसों से वमवारी सहकर भी अवतक जी रहा है। हम उस मुसीवत का अन्दाज नहीं लगा सकते, और न हम उस दृढ़ संकल्प और चिरस्मरणीय साहस को नाप सकते हैं जिससे उन्होंने इन विपत्तियों और संकटों का विना विचलित हुए और विना झुके मुकावला किया है। इतिहास के उषाकाल से आजतक चीनवासियों के गौरवशाली इतिहास में कई गौरवशाली युग आये और अच्छे-अच्छे काम हुए हैं। लेकिन निश्चय ही पिछले तीन साल तो इस महान् इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होंगे।

इन वर्षों में भूतकाल वड़े वेग से वर्तमान में वदला है और आनेवाले युग की तैयारी हो रही है। राष्ट्र के संकट की आग में तलछट और खण्डहर जल रहे हैं और शुद्ध धातु निकल रही है। भारत में भी हमने इन संकटों और परीक्षणों में अपना भाग लिया है और निकट भविष्य में और भी लेने की बहुत कुछ संभावना है। तो, जो राष्ट्र सो रहे थे, या गुलामी में पड़े हुए थे उनका अव पुनर्निर्माण हो रहा है; चीन और भारत में नवयौवन आ रहा है।

भविष्य में दोनों को वहुत वड़ा कार्य करना है। इसलिए दोनों को साथ रहना चाहिए और एक दूसरे से सीखना चाहिए।

नवम्वर, १९४०

चीन और स्पेन
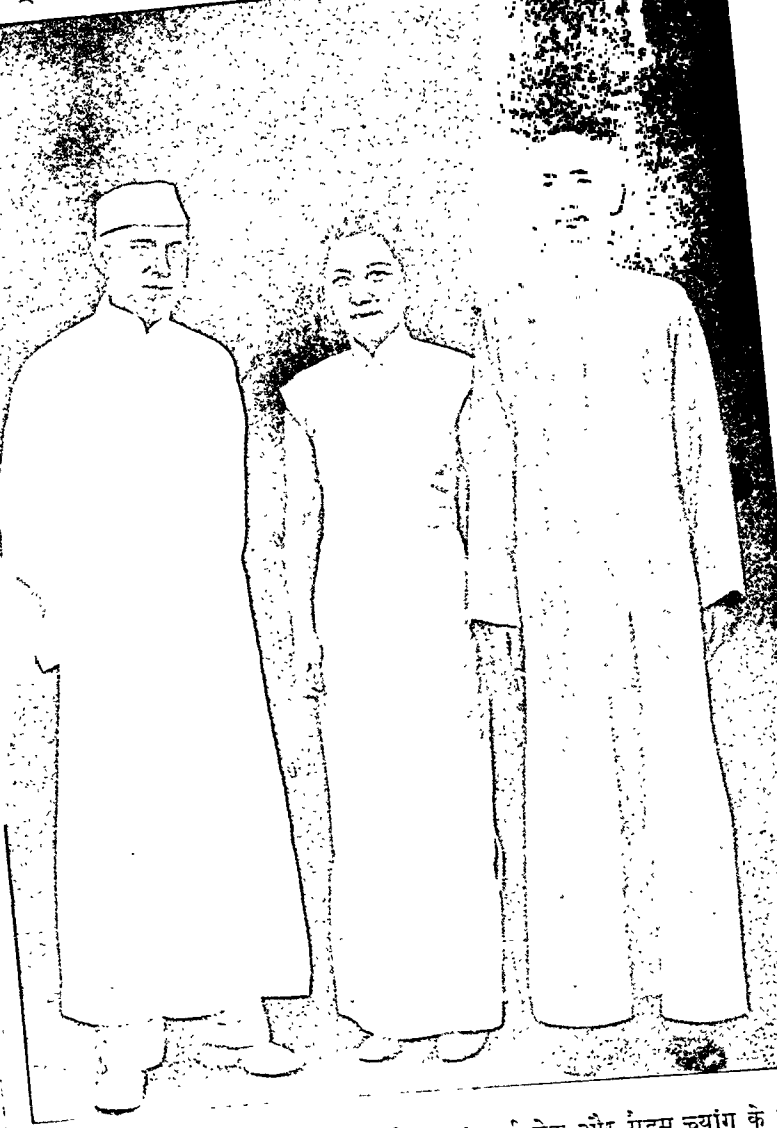
पं० जवाहरलाल नहरू : चीन म मार्शल च्यांगकाई शेक और मेडम च्यांग के

: १ :

नया चीन

खबरों की एजेंसियां हमें यूरप की खबर देती हैं और बताती हैं कि हिटलर क्या कहता है या नेविल चेम्बरलेन किस बात से इनकार करते हैं, मगर चीन के बारे में हमें कोई खबर ही नहीं मिलती। हाँ, कभी-कभी इतना जरूर सुन लेते हैं कि हवाई हमला हुआ और उसमें सैकड़ों-हजारों लोग मारे गये। यह भी हमारी बहुत-सी बदक़िस्मत बेबसियों में से एक है कि विदेशों की खबरें पाने के लिए हमें क़रीब-क़रीब एकदम ब्रिटिश एजेंसी पर निर्भर रहना पड़े, जो खबरों को हमारे दृष्टिकोण से न देखकर निश्चय ही ब्रिटिश साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से देखती है। उसके लन्दन के दफ्तर तै करते हैं कि क्या (खबर) पाने में हमारी भलाई है, और उसका थोड़ा-सा कटा-छँटा हिस्सा रोज-ब-रोज हमारे पास भेज दिया जाता है। लार्ड जैटलैण्ड या और कोई साहब जो कुछ कहते हैं, वह मजेदार हो सकता है, लेकिन दुनिया की खबर महज वही तो नहीं होती। मगर रायटर का अब भी खयाल है कि हम भारत-मंत्री के दफ्तर के बड़े अफसरों के मुँह से निकले सुनहले शब्दों की उत्सुक होकर बाट जोहा करते होंगे; और उधर दुनिया की वह असली खबर जिसके जानने को हम उत्सुक होते हैं, हमें दी नहीं जाती।

जो कोई आदमी पूरब में मलाया या जावा गया है, वह जानता है कि वहाँ और हिन्दुस्तान में मिलनेवाली खबरों में जमीन-आसमान का फ़र्क़ है! वहाँ क्या चीन, क्या सुदूर पूर्व, क्या अमरीका और क्या यूरप—सबकी ताजी खबरें ही क्यों, नया दृष्टिकोण भी पहुँचाया जाता है और

रायटर से खबरें पाते रहने के बाद यह तबदीली अच्छी लगती है। वे ताजा खबरें अमरीका की एजेंसियों के ज़रिये मिलती हैं जो बदकिस्मती से हिन्दुस्तान में नहीं पहुँचने पातीं।

इसलिए चीन के बारे में हिन्दुस्तान में हमें खबरें मिलतीं ही नहीं। दरअसल खबरों की कमी नहीं है बशर्ते कि हम उन्हें पा सकें। आज चीन हर मानी में 'समाचार'-रूप बना हुआ है।

चीन स्वयं समाचार इसलिए भी है कि जो-कुछ वहाँ हो रहा है उसका दुनिया के लिए, एशिया के लिए और हिन्दुस्तान के लिए बड़ा महत्त्व है। चीन दुनिया के खास मुल्कों में से एक है और तमाम दुनिया को देखते हुए यूरप के छोटे-छोटे लड़ाका देशों की बनिस्बत उसका महत्त्व ज्यादा है। हर हालत में एशिया और हम हिन्दुस्तानवालों के लिए चीन और उसके भविष्य का विशेष महत्त्व है।

चीन इसलिए भी समाचार है कि वहाँ जापान की फ़ौजों ने बड़ी खौफ़नाक बरबादी ढायी है! क्या हम समझते हैं कि हम जो छोटी-मोटी खबरें पढ़ा करते हैं उनका असली मतलब क्या होता होगा? उनका मतलब होता है बड़े-बड़े शहरों पर रोज़ाना बमबारी, लाखों का खून और मौजूदा लड़ाई के तरीकों की बेरहमी और हैवानियत।

लेकिन सबसे ज्यादा समाचारवाला देश वह अपने वीरतापूर्ण मुकाबले की वजह से है और इसलिए भी है कि उसने अपनी मुश्किलों को बड़ी बहादुरी के साथ हल किया है। सिर्फ़ एक महान् राष्ट्र ही ऐसा कर सकता था—महान् राष्ट्र इसलिए नहीं कि उसने भूतकाल में बड़े-बड़े काम किये हैं, बल्कि इसलिए कि उसने भविष्य में अपना दावा कायम कर दिया है। इस बदलती हुई दुनिया में भविष्य-वाणी करना मुश्किल है; लेकिन हरेक बात यही जाहिर करती है कि मौजूदा संकट में चीन की

जीत होगी। जहाँतक फौज का ताल्लुक है, चीन दो वरस की लड़ाई के वाद भी आज लडाई शुरू होने पर जितना मजबूत था उससे कही ज्यादा ताकतवर है। वह मजबूत हो गया है, सगठन उसका बढ़ गया है और उसकी साधन-सामग्री भी अच्छी हो गयी है। लडाई के कुछ ऐसे तरीके भी उसने निकाल लिये है जो उसके लड़ाई में कमजोर होने और बडी-बड़ी खाली पड़ी हुई जगहों ही के खयाल से मुनासिब है। चीनी लोगों में हौसला बहुत ज्यादा है और सिपाही और किसान एक मकसद लेकर साथ-साथ आगे बढते है। बहुत-से पुराने सेनापति, जो डरपोक, समझौते के लिए तैयार व अयोग्य थे, उनकी जगह तजुर्बेकार जवान लोग आ गये है। शुरू में ये पुराने लोग राजनीतिक दृष्टि से हटाये जाने लायक नही थे; लेकिन जब बरबादी हुई और उनकी नाकाबिलीयत जाहिर हुई तो उन्हें हटना पड़ा। आज विदेश के फौजी हल्कों में यह बात सब अच्छी तरह से जानते है, और ऐसे लोगों में जर्मन सेनापति भी शामिल है, कि अगर कोई गैरमामूली बात न हो गयी तो चीन की जीत होगी—देर भले ही उसमें लग जाये। चीनी लोग और उनके नेता काम को कम मानकर नही रह जाते, वे तो दूरदेशी से कहते है कि जहाँतक उनका सबध है लड़ाई तो अभी शुरू ही हुई है।

ऐसी कौनसी असाधारण घटना हो सकती है जो चीन की कामयाबी के मौकों को खतरे में डाल दे? यह तो बहुत ही नामुमकिन है कि चीन के प्रतिरोध को कुचलने में जापान अकेला रहकर ही कामयाब हो सके, लेकिन अगर सयुक्तराष्ट्र अमरीका या इग्लैण्ड जानबूझकर चीन-विरोधी नीति अख्तियार करते है तो उससे फर्क पड़ सकता है। लेकिन सयुक्तराष्ट्र ऐसा नही करेगा, क्योंकि ऐसा करने से वह अपनी तमाम सुदूर पूरब की नीति के खिलाफ जावेगा। और इग्लैंड? मि० नेविल चेम्बरलेन

का यह इंग्लैंड कुछ भी कर सकता है ! कुछ भी हो, आज तो वह निश्चित रूप से चीन के पक्ष में है। कल वह क्या हो जायेगा, यह सिर्फ़ मि० चेम्बरलेन ही जानते हैं।

इस लड़ाई, इस हैवानियत और इस मारकाट के पीछे चीन में कुछ ऐसा हो रहा है जिसका महत्त्व है। एक नये चीन का निर्माण हो रहा है जिसकी जड़ें उसकी अपनी ही संस्कृति में जमी हुई हैं और सदियों के आलस और कमज़ोरियों को दूर करके अब एक मज़बूत, सुसंगठित और आधुनिक चीन उठ रहा है, जिसकी दृष्टि मनुष्यता की होगी। संकट के इन बरसों में चीन ने जो एकता प्राप्त करली है, वह आश्चर्यजनक और प्रेरणा देनेवाली है। वह एकता सिर्फ़ अपने बचाव के लिए ही नहीं है, बल्कि वह एकता काम करने और अपना निर्माण करने के लिए भी है। लड़ाई के मोर्चों के पीछे चीन के समुद्री किनारे के पिछले प्रदेशों में बड़ी-बड़ी योजनाएँ अमल में आ रही हैं जो देश की सूरत ही बदले डाल रही हैं। हवाई जहाजों से बमबारी के लगातार खतरों के होते हुए भी उद्योग-धन्धों में बढ़ती हो रही है और खास दिलचस्पी की चीज तो यह है कि तोपों की कान फोड़ डालनेवाली आवाज़ों के बीच भी छोटे-छोटे और घरेलू उद्योगों के लिए सहकारिता की योजना बनने जा रही है। इन घरेलू और छोटे उद्योगों से एक बड़ा फ़ायदा यह है कि वीरान हिस्सों में उन्हें जल्दी से चालू किया जा सकता है और खतरे के मौक़े पर उन्हें हटाया भी जा सकता है।

यह है नया चीन जिसका लड़ाई के धुएँ और बरबादी के बीच बेमिसाल पैमाने पर निर्माण हो रहा है। हमें उससे बहुत-कुछ सीखना है।

१५ जून, १९३९

: २ :

चीन में

कुछ महीने हुए एक मित्र ने मुझसे कहा कि तुम हमेशा गयी-गुजरी बातों में फँसे रहते हो। उनसे अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर चर्चा चल गयी थी और उन्हें बीती हुई बातों से मेरा लगाव होना पसन्द न था। मंचूरिया, अबीसीनिया, चेको-स्लोवाकिया और स्पेन यह सारी-की-सारी बदकिस्मती और बर्बादी की दर्दनाक कहानी है और मैं हमेशा गलती का पक्ष लेता हुआ दिखाई दिया। वे तो यथार्थवादी नीति के हामी थे इसलिए उन्होंने कहा कि उन देशों से दोस्ती रखी जाये कि जो अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से ऊँचे दर्जे के हैं, या कम-से-कम उन्हें बहुत ज्यादा नाराज़ तो नहीं किया जाये।

मैंने माना कि उन्होंने जो दोषारोपण किया है, उसका मैं अपराधी हूँ; हालांकि यह मानने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ कि मैं यथार्थवादी नहीं हूँ।

इस चर्चा से हमारे सामने यह सवाल आता है कि यथार्थवाद या वास्तविकता क्या है? क्या मौके से थोड़ी देर का फायदा उठा लेना ही इसकी कसौटी होनी चाहिए। या कोई दूरदेशी का दृष्टिकोण हमें सामने रखना चाहिए? क्या सिद्धान्तों और आदर्शों की ओर भी कोई बुनियादी कसौटियाँ है या हम सिर्फ बाज़ारू भाषा में ही उनकी बात सोचें? हमारी इस मौजूदा दुनिया में जिसमें किसी भी देश के लिए अब यह मुमकिन नहीं रहा कि वह अलग रह सके और जहाँ हरेक राजनैतिक संकट से दूसरे सुदूर देशों में हलचल मच जाती है, क्या हम केवल एक ही राष्ट्र

का यह इंग्लैंड कुछ भी कर सकता है ! कुछ भी हो, आज तो वह निश्चित रूप से चीन के पक्ष में है। कल वह क्या हो जायेगा, यह सिर्फ़ मि० चेम्बरलेन ही जानते हैं।

इस लड़ाई, इस हैवानियत और इस मारकाट के पीछे चीन में कुछ ऐसा हो रहा है जिसका महत्त्व है। एक नये चीन का निर्माण हो रहा है जिसकी जड़ें उसकी अपनी ही संस्कृति में जमी हुई हैं और सदियों के आलस और कमज़ोरियों को दूर करके अब एक मज़बूत, सुसंगठित और आधुनिक चीन उठ रहा है, जिसकी दृष्टि मनुष्यता की होगी। संकट के इन वरसों में चीन ने जो एकता प्राप्त करली है, वह आश्चर्यजनक और प्रेरणा देनेवाली है। वह एकता सिर्फ़ अपने वचाव के लिए ही नहीं है, वल्कि वह एकता काम करने और अपना निर्माण करने के लिए भी है। लड़ाई के मोर्चों के पीछे चीन के समुद्री किनारे के पिछले प्रदेशों में वड़ी-वड़ी योजनाएँ अमल में आ रही हैं जो देश की सूरत ही वदले डाल रही हैं। हवाई जहाजों से वमवारी के लगातार खतरों के होते हुए भी उद्योग-धन्धों में वढ़ती हो रही है और खास दिलचस्पी की चीज़ तो यह है कि तोपों की कान फोड़ डालनेवाली आवाज़ों के वीच भी छोटे-छोटे और घरेलू उद्योगों के लिए सहकारिता की योजना वनने जा रही है। इन घरेलू और छोटे उद्योगों से एक वड़ा फ़ायदा यह है कि वीरान हिस्सों में उन्हें जल्दी से चालू किया जा सकता है और खतरे के मौक़े पर उन्हें हटाया भी जा सकता है।

यह है नया चीन जिसका लड़ाई के धुएँ और वरवादी के वीच वेमिसाल पैमाने पर निर्माण हो रहा है। हमें उससे वहुत-कुछ सीखना है।

१५ जून, १९३९

हैं ? लेकिन डगमगाती किश्ती थोड़ी देर के लिए थमती है और जितनी देर थमी रहती है, हमें अपने काम पर लग जाना होता है।

बहुत दिनों की हिचकिचाहट के बाद मैंने चीन जाना तै कर लिया। चीन जाना मैंने इसलिए तै किया कि वह दूर है तो भी हवाई सफ़र ने उसे हमारे बहुत पास ला दिया है और दो-तीन दिन में हम वहाँ पहुँच सकते हैं। वहाँ जाना भी आसान है और जरूरत आ पड़े तो फौरन लौटा भी जा सकता है। हालाँकि मुझे हिचकिचाहट हो रही थी; लेकिन मैंने जाना ही तै किया, क्योंकि चीन के साथी हाथ से इशारा करके मुझे बुला रहे थे और अतीत की स्मृतियाँ मुझे जाने के लिए प्रेरित कर रही थीं। भारत और चीन की वेदना और विजय का लम्बा इतिहास मेरी आँखों के सामने आ गया और मौजूदा मुसीबतें अरब लोगों की तरह अपने डेरे-डण्डे उठा-उठाकर चुपचाप चली जा रही हैं। वर्तमान भी बीतेगा और भविष्य में विलीन हो जायेगा। और भारत बना रहेगा, चीन भी बना रहेगा और अपनी और दुनिया की भलाई के लिए दोनों मिलकर काम करेंगे।

चीन जाने की एक वजह और भी है। चीन ने आजादी की लड़ाई में जो गौरवपूर्ण साहस दिखाया है उसका और उस दृढ़ निश्चय का वह प्रतीक है जो अक आपदाओं और अद्वितीय सकटों में भी अमिट रहा है और अपने शत्रु के मुकाबले के लिए उसने जो एकता दिखायी, उसका भी वह प्रतीक है। मैं उसको श्रद्धांजलि देने और उसका अभिनन्दन करने जा रहा हूँ।

दोस्तों ने मुझे आ सकनेवाले खतरों की चेतावनी दी है। उन्होंने मुझपर जोर डाला है कि मैं इस पागलपन के दुस्साहस को छोड़ दूँ! लेकिन, अगर हमारे लाखों चीनी भाई इन खतरों को बहादुरी से उठा

की है कि उनके पीछे क्या-क्या छिपा है ? भारत और चीन मेरे दिमाग में एक-दूसरे में मिल जायँगे और मुझे उम्मीद है कि मैं अपने साथ चीनियों का साहस, उनका अजेय आशावाद और अपने सामने खड़ी हुई मुसीबत के समय कंधे-से-कंधा भिड़ाकर सोचने की शक्ति अपने साथ लाऊँगा।

१८ अगस्त, १९३९

: ३ :

चीन-यात्रा के संस्मरण

चीन की यात्रा में मैंने हरेक शाम को दिनभर की घटनाओं और अनुभवों को लिखते जाना शुरू किया। पहले भी डायरी रखने का शुभ संकल्प मैंने कई मर्तबा किया था; पर दूसरे कई अच्छे इरादों की तरह यह संकल्प भी बहुत जल्द निर्बल पड़ गया; लेकिन इस बार मैंने सोचा कि अपने अनु वों को उनके ताजे रहते लिख डालना अच्छा है, ताकि हिन्दुस्तान के अपने दोस्तों और साथियों को भी उसका आनन्द ले लेने दूं। इसलिए मैंने शुरू तो किया, मगर दिमाग़ में यह बात जरूर थी कि मैं यह सिलसिला जारी नहीं रख सकूंगा। कलकत्ते से जिस दिन रवाना हुआ उसी साँझ को अपने अनुभवों की पहली लेखमाला मैंने सेगोन से भेज दी। पहले दिन मैं कुनमिंग पहुँच गया और उसदिन थका हुआ था, तो भी दूसरे दिन का वर्णन लिख लिया और अगले दिन बड़े तड़के उसे डाक में डलवा दिया। मैं चुंगकिंग पहुँचा और उस रात को फिर बड़ी देर तक बैठा लिखता रहा। इसी तरह चौथी रात को भी लिखता रहा। लेकिन ये दोनों पिछले लेख हिन्दुस्तान नहीं भेजे गये। कुछ तो इसका कारण यह था कि मैंने सोचा कि दिनभर के व्यस्त व भारी कार्यक्रम के बाद रोजाना लिखने का नियम पालन करना बड़ा मुश्किल है और कुछ कारण यह था कि मेरे वर्णन या संस्मरण हवाई डाक से भी हिन्दुस्तान बड़ी देर से पहुँचेंगे और फिर उन दिनों चुंगकिंग में लड़ाई के कारण पत्रों पर सेंसर था। हालाँकि जो कुछ मैं लिखता था सेंसर को उसपर कोई ऐतराज़ हो नहीं सकता था, फिर भी इस सब सोच-विचार के बाद

मैंने यह भी किया कि इस सफ़र का लिखना बन्द कर दूँ। लेकिन असल में ठीक-ठीक सबब तो यही था कि मुझे वक़्त नहीं मिलता था।

सिर्फ़ चार रोज़ तक तो मैंने लिखा; लेकिन बाद में अपने ऊपर लगा हुआ यह काम मैंने छोड़ दिया। लेकिन घटनाएँ एक के बाद एक घटित होती गयीं और नये-नये अनुभव दिमाग़ में भरते गये। मैंने अपना अधिकांश वक़्त चुंगकिंग में बिताया और फिर चेंगतू गया। मेरा इरादा तो दूसरी कई जगहें देखने का था—ख़ास करके उत्तर-पश्चिम का भाग—जहाँ कि एट्थ रूट आर्मी (Eighth Route Army) ने जापानी फ़ौजों को रोक लिया था—मैं देखना ही चाहता था। फिर अपना कांग्रेस का डाक्टरी दल भी तो था। वहाँ जाकर उसका काम देखने की भी मेरी इच्छा थी ही। लेकिन यह सब नहीं होना था। जब मैं चेंगतू में था मेरे पास एक सन्देश पहुँचा—पहले-पहल मुझे काफ़ी अचरज हुआ कि वह ब्रिटिश ब्राडकास्ट के ज़रिये पहुँचा—कि राष्ट्रपति ने मुझे शीघ्र स्वदेश में बुलाया है। मैं फ़ौरन चुंगकिंग को लौट पड़ा और हिन्दुस्तान आनेवाले एक हवाई जहाज़ में जगह पाने की कोशिश की। इस कोशिश में कामयाब न हो पाया, तब चीन सरकार ने मेरी मदद की और मुझे एक उनका स्पेशल कंपनी का हवाई जहाज़ दिया जो मुझे तीन ही घंटे में ल्यासियो ले आया। यह बर्मा की सरहद पर है। इरादा मेरा था कि नयी सड़क मार्ग से लौटूँगा, मगर हुआ यह कि मुझे उसके ऊपर उड़कर आना पड़ा।

हाँ, तेरह दिन में मैंने इस महान् देश की यात्रा समाप्त की। वे तेरह दिन बड़े व्यस्त रहे और मैं चाहता तो क्या-क्या दृश्य मैंने देखे, किन-किन लोगों से मैं मिला, क्या-क्या मैंने अनुभव किया—यह सब लिखकर आसानी से एक किताब तैयार कर सकता था। मैंने पाँच हवाई

हमले देखे—जबकि मैं खोदी हुई अँधेरी गुफा में बैठा था, लेकिन कभी-कभी आसमान में होनेवाली लड़ाई को देखने के लिए झांक लेता था। जापान के बम बरसानेवाले हवाई जहाज सर्चलाइट की किरणों से देख लिये जाते थे। वे जहाज आसपास के अँधेरे में बड़े तेज़ चमकते थे और पीछा करनेवाले चीनी हवाई जहाजों के हमले से बचने की कोशिश करते थे। जब सरपर मौत मँड़रा रही थी तब मैंने भी देखा कि चीनी गिरोहों में आश्चर्यजनक शांति से काम हो रहा है। लड़ाई की भयानक सरगर्मी के बावजूद मैंने देखा कि नगर में जिन्दगी की चहल-पहल साधारण गति से हो रही है। मैंने फैक्टरियां देखीं, गर्मियों के स्कूल देखे, सैनिक शिक्षणालय देखे, जवानों के डेरे देखे, और देखे शिक्षणालय—जो मानो अपनी पुरानी जड़ से उखड़कर बांस के छप्परों में आगये थे और नया जीवन और बल पा रहे थे। गांवों की सहयोग-सभा के आन्दोलन और घरेलू धन्धों की उन्नति ने मुझे बड़ा लुभा लिया। मैं विद्वानों से, राजनेताओं से, सेनापतियों से और नवीन चीन के नेताओं से मिला और सबसे ज्यादा बढ़कर तो मुझे चीन के सर्वश्रेष्ठ नेता और अधिनायक, प्रधान सेनापति च्यांग-काई-शेक से कई मर्तबा मिलने का सुअवसर मिला। चीन के संगठित होने और अपने आपको स्वतन्त्र करने के दृढ़ संकल्प को मैंने उनमें मूर्त्तिमान् देखा। यह भी मेरा सद्भाग्य था कि मैं उस देश की सर्वश्रेष्ठ महिला श्रीमती च्यांग से मिला जिनसे राष्ट्र को लगातार प्रेरणा मिलती रही है।

लेकिन चाहे मैं वहांके प्रमुख और प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों से मिला, पर कोशिश मेरी हमेशा यही रही कि मैं चीन के निवासियों को समझ सकूं और उनसे कुछ प्रेरणा ले सकूं। मैंने उनके विषय में और उनके गौरवपूर्ण सांस्कृतिक इतिहास के सम्बन्ध में बहुत पढ़ा था और मैं उस वास्त-

विकता को देखना चाहता था। वास्तविकता मेरी आशा के अनुकूल ही निकली—मैंने उस जाति को विज्ञ, गंभीर और अपने महान् अतीत के अनुकूल बुद्धिमान ही नहीं पाया, बल्कि मैंने पाया कि वे बड़े बलिष्ठ जीवन और शक्ति से परिपूर्ण लोग हैं—और आधुनिक परिस्थिति से सामंजस्य स्थापित करनेवाले हैं। बाजार में जाते हुए मामूली आदमी के चेहरे पर भी हजारों वर्षों की संस्कृति की छाप है। कुछ हद तक मैंने यही आशा बाँधी थी। लेकिन मुझे जिसने सचमुच प्रभावित किया वह नवीन चीन की अद्भुत शक्ति थी। सैन्य-बल का मैं कोई पारखी नहीं था, पर मैं यह कल्पना तक नहीं कर सकता कि ऐसी जीवनी शक्ति और संकल्पवाली और युग-युग का बल अपने पीछे रखनेवाली वह जाति कभी कुचली जा सकती है।

हर जगह मुझे विपुल सद्भावना और आतिथ्य मिला और मुझे शीघ्र ही विदित होगया कि व्यक्तिगत महत्त्व से यह वस्तु बड़ी है। मुझे भारत का, कांग्रेस का, प्रतिनिधि समझा गया हालांकि मेरी ऐसी कोई हैसियत नहीं थी, और चीनवासी इस बात के लिए उत्सुक और उत्कण्ठित थे कि भारतीयों से मित्रता करें और सम्पर्क बढ़ायें। यह भी तो मेरी हार्दिक इच्छा थी। इसलिए इससे ज्यादा खुशी की बात मुझे और क्या हो सकती थी ?

इस तरह १३ दिन बाद मैं लौट आया—विवश होकर, लेकिन उसे लाजमी समझकर, क्योंकि भारत का बुलावा उस संकट के समय में अनिवार्य था। लेकिन वह मेरा छोटा-सा प्रवास सचमुच मेरे ही लिए नहीं, हिन्दुस्तान और चीन के लिए कीमती होगया है।

एक अफसोस मुझे रहा। मैं मेडम सन यात-सेन से न मिल सका, कि जो तबसे चीन की क्रांति की जीवन-ज्योति और आत्मा बनी हुई है

जबसे कि उस क्रांति का वह विधायक उठ गया। मैंने उनसे १२ बरस पहले आध घण्टे मुलाकात की थी, तबसे मेरी इच्छा रही थी कि मैं उनसे फिर मिलता मगर बदकिस्मती से वे उस समय थीं हांगकांग में और मैं उस तरफ न जा सका।

१

२० अगस्त, १९३९

बमरौली हवाई-अड्डे पर हमें बहुत देर इन्तजार करना पड़ा। इस तरह का इन्तज़ार करना बड़ा बुरा लगता है और कुछ-कुछ उससे झुंझलाहट भी होती है। उस वक्त ठीक-ठीक यह भी तो मालूम नहीं होता कि क्या किया जाये या किस तरह से किया जाये? बहुत देर तक विदाई होते रहना भी बवाल हो उठता है। आखिरकार एयर फ्रांस लाइनर आया और तरीक़े से उतरा। जहाज आने के बाद भी चालीस मिनट फिर रुकना पड़ा। ड्राइवर और दूसरे राहगीरों ने खाया-पिया। और भी झुंझलाहट हुई।

दोपहर को १-३५ पर हम रवाना हुए। जहाज अच्छी तरह से चला। थोड़ी देर बाद हम बनारस पहुँचे और शहर का अच्छा दृश्य देखा। फिर मैं सो गया। बड़ी अचरज की बात है कि मैं हवाई-जहाज में न जाने कितना सोता हूँ। यह तो शायद कुछ-कुछ पिछली थकान और कम सो पाने का नतीजा था। लेकिन कुछ हवाई जहाज के चलने और हिलने-डुलने से भी नींद आ जाती है। कलकत्ते तक के सफर में करीब-करीब मैं सोता रहा। एक बार चौंक कर उठा, तो देखा कि हम लोग पहाड़ी जंगलों के देश में नीचे उड़ रहे हैं। कभी-कभी हम किसी पहाड़ी की चोटी के ऊपर होकर निकल जाते थे। पहाड़ी की

दावलें अजीब हे, और तमाम देश एक अपरिचित-सा—कलकत्ते जानेवाली ट्रेन से हम जो कुछ देखते हैं, उससे बिलकुल निराला ही—दिखाई देता है। कुछ समझ में नहीं आता, कहाँ हैं? लेकिन पता लगाने का कोई जरिया हमारे पास नहीं है और नींद इतनी लग रही है कि कौन तकलीफ करे? गालिबन् हम लोग पूर्वी बिहार के ऊपर उड़ रहे होंगे। बड़ी तेज हवा सामने से आरही है। इससे चाल कम हो जाती है। यों इलाहाबाद से कलकत्ते तक का सफर अच्छी हालतों में ढाई घंटे का होता है और अक्सर तीन घंटे तक लग जाते हैं। पर अब तो उसमें साढ़े तीन घंटे लगते हैं। दमदम हम पाँच बजने के थोड़ी ही देर बाद पहुँचे। कलकत्ता साढ़े पाँच पर।

कलकत्ता

कलकत्ते में अपने दोस्तों को मैंने जानबूझकर अपने आने की खबर नहीं दी थी। थोड़े-से घंटों के लिए दौड़-धूप कराने से फायदा भी क्या? खास तौर से ऐसी हालत में जब कि जहाज के और साथी मुसाफिरों के साथ होटल में ठहरने का मेरा इरादा था। इन हवाई जहाजों से सफर करने में उनके होटलों में जाना और उनके सुपुर्द रहना हमेशा सबसे अच्छा होता है, क्योंकि सवेरे बहुत जल्दी उठना पड़ता है। अगर कोई अपने मित्र के यहाँ ठहरे तो लेट होने और दूसरों को भी लेट करने का और शायद कभी-कभी जहाज छूट जाने तक का खतरा रहता है। इसलिए कम्पनी होटल का ड़ा भी टिकट में शामिल कर लेती है।

चीन के कौंसल-जनरल (प्रमुख राजकीय प्रतिनिधि) को मैंने अपने कलकत्ते से गुजरने की खबर दे दी थी, क्योंकि मैं उनसे मिलने की उम्मीद करता था। वह हवाई-अड्डे पर अपने और दूसरे चीनी दोस्तों के साथ मौजूद थे और यह देखकर अचरज हुआ कि वहाँ पत्र-

प्रतिनिधियों और दूसरे आदमियों की भीड़-सी लगी है ।

मुझे पता चला कि कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर कलकत्ते में हैं । यह एक अच्छा मौका था, जिसे मैं क्यों खोता ? क्योंकि गुरुदेव से मिलना तो हमेशा बड़ी खुशी की बात होती है । अपने होटल से मैं फौरन ही उनके घर पहुँचा और थोड़े से वक्त में उन्होंने एशिया की संस्कृतियों के संगम पर बात की और बताया कि क्यों हिन्दुस्तान को पूर्वी देशों से सम्पर्क बढ़ाना चाहिए ।

इस बात से वह खुश थे कि मैं चीन जारहा हूँ । उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि जापान भी जाना, खास तौर से जापानियों से यह कहने के लिए कि वे आजकल चीन में जो काम कर रहे हैं, उसमें अपनी आत्मा को न गिराएँ । वह इस बात के लिए इच्छुक थे कि हम जापान और जापान की निस्बत अपनी स्थिति साफ़-साफ़ प्रकट करदें । जापान के सैनिकवाद और साम्राज्यवाद और आतंक की, जो उन्होंने चीन में फैला रखा है, हम सख्त मुख़ालफ़त करते हैं; लेकिन जापानियों के प्रति हमारी कोई दुर्भावना नहीं है । उनके साथ हम दोस्ती करना चाहते हैं, लेकिन इस गलत बुनियाद पर नहीं । चीन की मुसीबत तो खौफ़नाक थी ही, जापान का नुक़सान भी कम नहीं था और यह हैवानियत-भरा साम्राज्यवाद उनकी आत्मा को ऐसी चोट पहुँचा रहा है, जो हमेशा बनी रहेगी ।

मैंने उन्हें यक़ीन दिलाया कि मैं जापान जाना बहुत चाहता हूँ । बहुत दिनों से मैं जापान जाना चाह रहा हूँ; लेकिन इस वक़्त वह मुश्किल ही दीखता है; क्योंकि उसमें वक़्त बहुत ज्यादा लगेगा । राष्ट्रीय चीन को पार करके मैं कई मोर्चों पर होकर तो जापान के अधीन भागों में पहुँच नहीं सकता । मुझे हांगकांग वापस आना होगा

और फिर वहाँसे सीधे समुद्र से या हवाई जहाज से जापान जा सकूँगा। इसमें हिन्दुस्तान से जितने दिन बाहर रहने की बात थी, उससे कहीं ज्यादा दिन लग जायँगे। इसके अलावा मुझे अपनी ताक़त पर भरोसा नहीं है कि मैं जापान की सरकार को अमन-चैन के और जन-संबंधीय तरीक़े अख्तियार करने के लिए राज़ी कर सकूँगा। और असल में उस वक्त जापान की सरकार से मिलना भी मुमकिन नहीं था।

चीनी कौंसल-जनरल आये और मुझे अपने स्थान पर ले गये। वहाँ से हम एक चीनी होटल में गये, जहाँपर कलकत्ते के दो दर्जन चीनी लोग दावत के लिए जमा हुए थे। मुझे एक खूबसूरत रेशमी झण्डा भेंट किया गया, जिसपर चीनी ज़बान में कुछ लिखा था। उसमें मेरा हार्दिक अभिनन्दन किया गया था और आगे के सफ़र के लिए शुभ कामनाएँ की गयी थीं। मुझसे साफ़-साफ़ और कुछ माफ़ी-सी माँगते हुए कहा गया कि दावत बहुत मुख्तसिर है, ताकि मुझे देर न हो। चीनियों का भोजन मुझे पसन्द है, पर उनकी दावतों से मुझे डर लगता है। उनका हल्का खाना तक इतना भारी और देर तक चलनेवाला हो जाया करता है कि मुझसे तो बर्दाश्त नहीं हो सकता। दावत बढ़िया हुई, सात बार परोसा गया, और जब मैं आनन्द से खा रहा था, तब अचानक चीनी दावतों के खत्म न होनेवाले सिलसिले की चर्चा सुनकर मैं सहम गया।

वह खुशगवार दावत आपस में सद्भावनाएँ प्रकट करने कराने के बाद खत्म हुई और मैं झटपट अपने होटल में लौट आया। थोड़ी-सी चिट्ठियाँ लिखीं, फिर कुछ दूसरे इन्तजाम। इधर आधीरात का घंटा बजा और उधर मैं सोया। मुझे खबर दी गयी थी कि हमें तीन बजे बुलाया जायेगा, और ३,-४० पर हमें होटल से चल देना होगा। ऐसा

वक़्त हवाई सफ़र का मज़ा बहुत कुछ किरकिरा कर देता है। फिर अगर सफ़र करते हुए कोइ ओंघने लगे तो कोई ताज्जुब नहीं होना चाहिए। इस तरह पहला दिन बीता।

२

२१ अगस्त, १९३९.

चीनी कौंसल-जनरल और दूसरे दोस्त सवेरे साढ़े तीन बजे होटल में आये। हवाई अड्डे पर इतने सवेरे कलकत्ते के अपने दोस्तों और साथियों की भीड़-की-भीड़ देखकर मुझे अचरज हुआ। उनमें बहुत से मुझसे नाराज हुए कि मैंने पहले से अपने आने की खबर क्यों नहीं दी?

सुबह साढ़े-चार बजे हमारा जहाज चला और मुझे अपनी आराम-कुर्सी पर नींद आने लगी। पौ फटी, मैंने जगकर देखा कि समुद्र में विलीन् होते हुए बंगाल की झलक दिखाई देरही है।

अक्याब

सुबह कोई सात बजे हम अक्याब पहुंचे। मैंने देखा कि वहांके हिन्दु-स्तानी मेरा स्वागत करने के लिए इकट्ठे हैं। दिल्ली रेडियो से उन्हें मेरे आने की खबर मिल गयी थी। वहाँसे हमें आधा घंटे ठहरकर चलना था। मुझे फिर नींद आ गयी। और कुछ देर बाद एक कँपकँपी के साथ फिर नींद खुल गयी। साफ़ है कि हम बहुत ऊंचाई पर उड़ रहे थे और बादल हमसे बहुत ऊपर थे। बादलों को छोड़कर कुछ नज़र नहीं आता था।

बैंगकॉक

बैंगकॉक हम लोग अपनी घड़ियों से बारह बजे के करीब पहुँचे; लेकिन बैंगकॉक में उस वक्त एक बजा था। खूबसुरत हवाई-अड्डा था और हिन्दुस्तानियों की बड़ी भीड़ मेरा स्वागत करने को

तैयार थी ! उन्होंने मुझसे कहा कि कोई मील दो मील पर बहुत से हमारे देशवासी इकट्ठे हुए हैं और मेरे लिए वहाँ इन्तजार कर रहे हैं। झटपट मोटर से मैं वहाँ ले जाया गया और चन्द मिनटों तक भाषण देने के बाद मैं फिर लौट आया।

यह कहना गलत है कि हम लोग बैंगकॉक पहुँच गये। शहर तो हवाई-अड्डे से अठारह मील दूर था। आसमान से दूर पर उसकी कुछ झलक हमें मिल गयी थी।

स्याम के पत्रकार मुझसे मुलाकात करना चाहते थे। उनके कुछ सवालों का जवाब मैंने दिया। हिन्दुस्तानी चाहते थे कि मैं वादा करूँ कि वापसी सफर में मैं जरूर बैंगकॉक ठहरूँगा। ठहरना तो मैं चाहूँगा। देश मुझे अपनी तरफ खींचता है और वह हमारा पास-पड़ोसी ही तो है। हवाई जहाज से सिर्फ सात घंटे का रास्ता है। उस देश को स्याम नहीं कहा जाता। वह थाईलैण्ड—'आज़ाद लोगों का देश'—के नाम से मशहूर है। विदेशों में भी हमें शीघ्र ही उसे थाईलैण्ड के नाम से पुकारना पड़ेगा।

बैंगकॉक के हवाई-अड्डे पर फूलों की जैसी खूबसूरत मालाएँ मुझे भेंट की गयी, वैसी मैंने कभी नहीं देखीं। और मालाओं में मेरे तरह-तरह के तजुरबे हैं। बड़ी चतुराई और कलात्मक ढंग से वे बनायी गयी थीं। खूबी के साथ रंगों का मेल उनमें किया गया था।

बैंगकॉक के पास जो हिन्दुस्तानी मुझे मिले, वे हिन्दुस्तान के जुदा-जुदा हिस्सों के थे; लेकिन ज्यादातर उत्तर-पश्चिम के थे। बहुत-से मुसलमान सिक्ख थे। इसलिए मैंने उनसे हिन्दुस्तानी में ही बातचीत की। जब मैं बैंगकॉक छोड़ रहा था, तभी रंगून से बेतार की खबर आयी कि वहाँपर हिन्दुस्तानी मेरे स्वागत की व्यवस्था कर रहे हैं।

सेगौन

बैंगकॉक के हवाई-अड्डे से हम दोपहर को १—४५ पर चल दिये। सफ़र में कोई ख़ास बात नहीं हुई। मुझे कुछ उम्मीद थी कि शायद हम अंगकोर पर होकर गुजरें और उसके खण्डहरों की एक झलक मुझे देखने को मिल जाये; लेकिन वह पूरी न हुई। सेगौन पहुंचने से कुछ पहले हम एक बहुत बड़ी झील पर होकर गुज़रे। हो सकता है वहाँ बाढ़ का पानी इकट्ठा हो गया हो। कोई पाँच बजे हम सेगौन पहुँचे। हिन्दुस्तानियों की भीड़ मालाएँ और खूबसूरत गुलदस्ते लिये खड़ी थी। ज्योंही मैं जहाज से उतरा, एक हिन्दुस्तानी आगे बढ़े और उन्होंने अच्छी फ्रेंच ज़बान में मेरा स्वागत किया। उन्होंने तो ज़ोरदार भाषण ही दे डाला। मैं परेशान था, क्योंकि मुसाफिरों को चुंगी के दफ्तर में जाना था। फौरन ही मैंने और भी महसूस किया कि जैसे मैं फ्रांस के किसी प्रान्त में हूँ। भाषा, दुकानें, चौड़ी छायादार सड़कें, गलियाँ, और अखबार बिकने व बैण्ड बजाने के स्थान इन सबसे मुझे वहाँ फ्रांस की ही याद आयी, गाड़ी से मैं शहर में खूब घूमा, हालांकि पानी पड़ रहा था। शहर बहुत खूबसूरत था। तेज़ रोशनी से जगमगा रहा था। और ख़ास-ख़ास दुकानों पर 'नियन' से होनेवाली रोशनी देखी। बहुत-सी फ्रेंच दुकानें भी वहाँपर थीं। चीनियों का एक पूरा क्वार्टर ही था, और हिन्दुस्तानी दुकानों की खासी तादाद थी।

देखने में इंडोचीन में कोई पाँच हज़ार हिन्दुस्तानी हैं, जिनमें से ज्यादातर मध्यम श्रेणी के लोग हैं और चौकीदार हैं, उनमें से अधिकांश तमिल देश के हैं। करीब-करीब सभी थोड़ी-बहुत फ्रेंच जानते हैं और बहुत से तो खूब बोल लेते हैं। हम लोग तो जैसा देश होता है वैसा ही भेष बना लेते हैं। हिन्दुस्तान में हमने अंग्रेजी को अपना लिया

हैं, और इण्डो-चीन में फ्रेंच को। सरकारी नौकरी में भी बहुत से हिन्दुस्तानी दिखाई दिये। उनमें से ज्यादातर पाण्डचेरी के बाशिन्दे थे। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि पाण्डचेरी के बहुत से हरिजन यहाँ मजिस्ट्रेट हैं।

चीनी लोगों की तादाद तो बहुत है। मुझे बताया गया कि पढ़े-लिखों की तादाद यहाँ बहुत ज्यादा है, कोई ३० फी सदी, जिनमें से बहुत से फ्रेंच जानते हैं। अनामी भाषा लेटिन लिपि में पढ़ायी जाती है। पुराने चीनी अक्षरों का प्रयोग बहुत-कुछ छोड़ दिया गया है।

राजनैतिक जीवन यहाँ लोगों में नहीं और सार्वजनिक सभाओं जैसी चीज मुश्किल से ही कोई जानता है।

शाम को मुझे यहाँके नत्तूकोट्टै मन्दिर में या मन्दिर की परिक्रमा में ले जाया गया। वहाँ बहुत से हिन्दुस्तानी इकट्ठे हुए थे। मुझे बर्मा और लंका में भी पता चला था कि नत्तूकोट्टै मन्दिर ही अक्सर ऐसे जलसों के लिए काम में लिया जाता है, क्योंकि यहाँपर हॉल नहीं हैं। मुझे एक अभिनन्दन-पत्र भेंट किया गया जिसका जवाब मैंने कुछ विस्तार से दिया।

यह देखकर खुशी होती है और अचरज भी होता है कि इन दूर पड़े हिन्दुस्तानियों की बस्ती में अपनी मातृभूमि के लिए इतना प्रेम और अभिमान है। बदकिस्मती से हमसे वे एकदम अलहदा हैं। हमें उनसे निकट सम्पर्क कायम करना चाहिए।

इन देशों का सफर करनेवाले मुसाफिर पर एक बात का असर पडता है वह है चीनियों और हिन्दुस्तानियों की भारी ताकत और हिम्मत। बहुत से चीनी और हिन्दुस्तानी दूर देश चले जाते हैं और बिना किसी के अपनी ही मेहनत से खुशहाल हो जाते हैं।

इस तरह दूसरा दिन ख़त्म हुआ। मन में इस विचार से बड़ा आनन्द आरहा है कि आज सुबह मैं कलकत्ते मे था और दिन में बर्मा और स्याम से होकर गुज़रा और अब मैं इंडो-चीन में हूँ।

३

२२ अगस्त, १९३९

सुबह छः के बाद ही हम सेगौन से चल दिये और उड़ते-उड़ते बादलों से बहुत ऊँचे चले गये। हम बहुत ऊँचाई पर उड़ रहे होंगे, क्योंकि सर्दी काफ़ी मालूम देती थी। नीचे धरती हमें दिखाई नहीं देती थी और कभी-कभी बादल हमें घेर लेते थे और कुछ सूझता नहीं था। कोई पाँच घंटे की उड़ान के बाद ग्यारह बजे हम हैनोय पहुँचे। एयर-फ्रांस से सफ़र का अब अखीर था। हमने अपने हवाई जहाज 'ला विले डी कैलकटा' से विदा ली। मुझे यह देखकर अचरज हुआ और खुशी भी हुई कि जहाज का नाम बँगला में भी एक तरफ़ लिखा था। मेरे खयाल से यह कलकत्ते के लिए, जिसका नाम उस जहाज पर था, एक बड़ी बधाई की बात है!

हैनोय

चीनी कौंसल (राजकीय प्रतिनिधि) और बहुत से हिन्दुस्तानियों ने हमारा स्वागत किया। कौंसल ने बताया कि दोपहर बाद तीन बजे कुनमिंग को जानेवाले जहाज में मेरे लिए एक सीट ले ली गयी है। हिन्दुस्तानी दोस्त चाहते थे कि एक या दो दिन मैं वहाँ ठहरूँ, लेकिन अपने कार्यक्रम में कोई हेरफेर न कर सका।

एक सिंधी सौदागर मुझे अपने घर ले गये। उनकी बहुत बड़ी दुकान थी, जिसमें खिड़कियों पर खूबसूरत-सी फुर्तीली अनामी लड़कियाँ

चीजें बेच रही थी। वहाँके हिन्दुस्तानियों की एक सभा हुई और मैंने भाषण दिया। मैंने देखा कि कुछ सिंधियों को छोड़कर बाकी सब तामिल थे, जिनमें हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। कुछ सिंधियों और दो-तीन मुसल्मानों को छोड़कर कोई भी हिन्दुस्तानी नहीं समझता था, और अंग्रेजी तो उनसे भी कम समझ सकते थे। तामिल के अलावा वे फ्रेंच खूब जानते थे। अपनी फ्रेंच पर भरोसा न करके मैंने हिन्दुस्तानी में भाषण दिया और बाद में एक मुसलमान ने जो शायद वहाँकी मस-जिद के इमाम थे, उसका तामिल में तरजुमा किया।

हिन्दुस्तान में जितनी अंग्रेजी फैली है, उससे भी ज्यादा यहाँ फ्रेंच का राज्य है। भिखारी लड़के-लड़कियाँ तक फ्रेंच भाषा में भीख माँगते हैं। पढ़े-लिखों की तादाद यहाँ ज्यादा मालूम पड़ी।

हैनोय में कोई दो सौ-ढाई-सौ हिन्दुस्तानी हैं। सब कारबार में लगे हैं और उनका काम अच्छी तरह से चल रहा है। वे सब यूरोपियन ढंग के कपड़े पहने हुए थे। बैंगकॉक और सेगोन की तरह धोतियाँ यहाँ नहीं थीं।

मैं मोटर से शहर में होकर गुजरा। वह सेगोन से बड़ा है और वहाँकी चाल-ढाल भी फ्रांसीसी है। दोनों में सेगोन मुझे ज्यादा लुभावना जान पड़ा।

तीसरे पहर सवा तीन बजे मैं हवाई जहाज से कुनमिंग को रवाना हुआ। हिन्दुस्तानियों और चीनियों की भीड़ ने मुझे हार्दिक विदाई दी। जिस जहाज से मैं सफ़र कर रहा था, वह यूरेशिया कम्पनी का था। यह चीनी-जर्मन कारपोरेशन है। जहाज जर्मनी का बना हुआ था और उसका ड्राइवर भी जर्मन था। एयर फ्रांस जहाज से यह बहुत छोटा था, उसमें दस मुसाफिरों के लिए जगह थी। जगह की कमी की वजह से हम बड़े घिरे-से महसूस करते थे।

इस तरह दूसरा दिन खत्म हुआ। मन में इस विचार से बड़ा आनन्द आरहा है कि आज सुबह मैं कलकत्ते मे था और दिन में बर्मा और स्याम से होकर गुज़रा और अब में इंडो-चीन में हूँ।

३

२२ अगस्त, १९३९

सुबह छः के बाद ही हम सेगोन से चल दिये और उड़ते-उड़ते बादलों से बहुत ऊँचे चले गये। हम बहुत ऊँचाई पर उड़ रहे होंगे, क्योंकि सर्दी काफ़ी मालूम देती थी। नीचे धरती हमें दिखाई नहीं देती थी और कभी-कभी बादल हमें घेर लेते थे और कुछ सूझता नहीं था। कोई पाँच घंटे की उड़ान के बाद ग्यारह बजे हम हैनोय पहुँचे। एयर-फ्रांस से सफ़र का अब अखीर था। हमने अपने हवाई जहाज 'ला विले डी कैलकटा' से विदा ली। मुझे यह देखकर अचरज हुआ और खुशी भी हुई कि जहाज का नाम बँगला में भी एक तरफ़ लिखा था। मेरे ख़याल से यह कलकत्ते के लिए, जिसका नाम उस जहाज पर था, एक बड़ी बधाई की बात है!

हैनोय

चीनी कौंसल (राजकीय प्रतिनिधि) और बहुत से हिन्दुस्तानियों ने हमारा स्वागत किया। कौंसल ने बताया कि दोपहर बाद तीन बजे कुनमिंग को जानेवाले जहाज में मेरे लिए एक सीट ले ली गयी है। हिन्दुस्तानी दोस्त चाहते थे कि एक या दो दिन मैं वहाँ ठहरूँ, लेकिन अपने कार्यक्रम में कोई हेरफेर न कर सका।

एक सिंधी सौदागर मुझे अपने घर ले गये। उनकी बहुत बड़ी दुकान थी, जिसमें खिड़कियों पर खूबसूरत-सी फुर्तीली अनामी लड़कियाँ

यॉ ! के मेम्बर भी हैं, चुर्गकिंग से मेरा स्वागत करने के लिए ही आये थे। कुर्नमिंग के मेयर भी वहाँ थे। मुझसे कहा गया कि एक रात मुझे शहर में बितानी होगी और चुंगकिंग दूसरे दिन जा सकूँगा । मैं एक होटल में ले जाया गया।

चीन मेरे लिए एक नया मुल्क था—कथा-कहानी और इतिहास और मौजूदा जमाने के बहादुरी के कामोंवाला अद्भुत देश! और मैं तो हर बात के लिए तैयार था। लेकिन जब मैं होटल में पहुँचा तो मुझे कुछ अचरज हुआ। जितने होटल मैंने देखे थे, उन सबसे वह एकदम निराला था। उसका दरवाज़ा, खूबसूरत चौक और उसका बाहरी रूप बहुत आकर्षक था और खास चीनी ढंग का था। लेकिन होटल के बारे में मेरी जो कल्पना थी उनसे वह ज़रा भी नहीं मिलता था। मैंने उसके मुताबिक ही अपने को बनाया और निश्चित किया कि चीनी ढग ऐसा ही होता होगा। जो कमरा मुझे दिया गया था, वह कुछ छोटा था, लेकिन साफ और आरामदेह था। गरम और ठंडे पानी का इतजाम भी उसमें था। होटल का यह भेद बाद में खुला, जब मुझे बताया गया कि वह पहले मंदिर था पर बाद में उसे होटल बना लिया गया। मुसाफ़िरों के ठहरने के कमरे पादरियो या पुजारियों के लिए रहे होगे, ऐसा दिखाई देता था, हालांकि इसमें शक नहीं कि बाद में उन्हें फिर से बनाया गया और उसमें सामान भी जुदा दिया गया था। फिर भी पुजारी उनमें अच्छी तरह से रहते होंगे। मेरा ध्यान हिन्दुस्तान के झगडों की तरफ गया जो मंदिरों और मसजिदों को लेकर बराबर चलते रहते हैं। लेकिन चीनियों ने मंदिरों को होटल बनाने में कोई रोक-थाम नहीं की और मुझे बताया गया कि बहुत-से मंदिर स्कूल बना लिये गये हैं।

होटल का मैनेजर फ्रांसीसी था। उसने हमको बढ़िया फ्रांसीसी खाना

ज्योंही हम चीन के क़रीब पहुँचे मेरे अन्दर खुशी की एक लहर उठी। कुदरती नज़ारे भी बड़े खूबसूरत थे। पीछे पहाड़ थे और एक नदी उनमें से निकलकर चक्कर खाती हुई घाटी में बह रही थी। जंगल से लदी पहाड़ियाँ ऊपर छायी हुई थीं। कहीं-कहीं हरे-हरे खेत और छोटे-छोटे गाँव थे। नदी करीब-करीब लाल दिखाई देती थी और पहाड़ियों के खुले हिस्से भी गहरे लाल थे। शायद इसी रंग की वजह से हैनोय की नदी 'लाल नदी' कहलाती है।

जब हम पहाड़ों के पास पहुँचे तो बहुत ऊँचाई पर उड़ने लगे और कोई चार हज़ार फीट पहाड़ों के ऊपर पहुँच गये। कुदरती दृश्यों को ऊपर से देखने में धरती से देखने की बनिस्बत बहुत फ़र्क़ पड़ जाता है। नीचे से देखने में जो बहुत खूबसूरत दिखाई देता है ऊपर से उतना नहीं दिखाई देता; लेकिन जो दृश्य मैंनें देखा, वह बहुत खूबसूरत था और तरह-तरह के पहाड़ों की जुदा-जुदा शक्लों की वजह से नीरसता नहीं आने पाती थी। एक गहरी नीली झील, जिसके चारों तरफ़ हरे और लाल पत्थर थे, बड़ी खूबसूरत दिखाई देती थी। उसके बाद ही दूर एक और झील दिखाई दी; लेकिन तभी जहाज का नौकर आया और सब पर्दे गिराकर हमें आगाह क़र गया कि हम पर्दे न उठायें। शायद मैं सोचता हूँ ऐसा लड़ाई के लिए अहतियातन् किया गया होगा। इस तरह मुसाफ़िरों को 'पर्दानशीन' कर दिया गया। हाँ, जर्मन चालक सारा दृश्य देख सकता था।

कुनमिंग आ रहा था और हमें ऐसा लगा कि जहाज़ उतर रहा है। फ़ौरन ही जहाज़ के धरती पर उतरने से हमें हल्का-सा धक्का लगा और हम चीन देश में खड़े थे।

कुनमिंग (यूनानफू)

क्योमिन्तांग के एक प्रतिनिधि, मि० योंग कोंता, जोकि लेजिस्लेटिव

ज्वॉंर के मेम्बर भी हैं, चुर्गकिंग से मेरा स्वागत करने के लिए ही आये थे। कुर्नमिंग के मेयर भी वहाँ थे। मुझसे कहा गया कि एक रात मुझे शहर में बितानी होगी और चुंगकिंग दूसरे दिन जा सकूँगा। मैं एक होटल में ले जाया गया।

चीन मेरे लिए एक नया मुल्क था—कथा-कहानी और इतिहास और मौजूदा ज़माने के बहादुरी के कामोंवाला अद्भुत देश! और मैं तो हर बात के लिए तैयार था। लेकिन जब मैं होटल में पहुँचा तो मुझे कुछ अचरज हुआ। जितने होटल मैंने देखे थे, उन सबसे वह एक-दम निराला था। उसका दरवाज़ा, खूबसूरत चौक और उसका बाहरी रूप बहुत आकर्षक था और खास चीनी ढंग का था। लेकिन होटल के बारे में मेरी जो कल्पना थी उनसे वह ज़रा भी नहीं मिलता था। मैंने उसके मुताबिक ही अपने को बनाया और निश्चित किया कि चीनी ढंग ऐसा ही होता होगा। जो कमरा मुझे दिया गया था, वह कुछ छोटा था, लेकिन साफ और आरामदेह था। गरम और ठंडे पानी का इंतजाम भी उसमें था। होटल का यह भेद बाद में खुला, जब मुझे बताया गया कि वह पहले मंदिर था पर बाद में उसे होटल बना लिया गया। मुसाफ़िरों के ठहरने के कमरे पादरियों या पुजारियों के लिए रहे होंगे, ऐसा दिखाई देता था, हालाँकि इसमें शक नहीं कि बाद में उन्हें फिर से बनाया गया और उसमें सामान भी जुटा दिया गया था। फिर भी पुजारी उनमें अच्छी तरह से रहते होंगे। मेरा ध्यान हिन्दुस्तान के झगड़ों की तरफ़ गया जो मंदिरों और मसजिदों को लेकर बराबर चलते रहते हैं। लेकिन चीनियों ने मंदिरों को होटल बनाने में कोई रोक-थाम नहीं की और मुझे बताया गया कि बहुत-से मंदिर स्कूल बना लिये गये हैं।

होटल का मैनेजर फ्रांसीसी था। उसने हमको बढ़िया फ्रांसीसी खाना

खिलाया और पीने के लिए ईविअन पानी दिया। उसके पास अच्छी फ्रेंच शरावें भी थीं। वैसे लड़ाई के दिनों में चीन में आसानी से रहा जा सकता है, लेकिन कुनमिंग नमूने का चीनी शहर नहीं था। वह सरहद के करीब है, इसलिए विदेशी लोग और विदेशी माल आते रहते हैं। होटल का सारा वायुमण्डल फ्रांसीसी था। होटल के नौकर चीनी वच्चे तक फ्रेंच वोलते थे।

हिन्दी चीन में और यहाँ मुझे अपनी वहुत दिनों की दफ़नायी हुई फ्रेंच का ज़ंग छुड़ाना पड़ा; क्योंकि कुछ आदमियों से वातचीत करने का दूसरा कोई ज़रिया ही नहीं था। हिन्दुस्तानियों से फ्रेंच में वात करना मुझे अजीव मालूम होता है। फिर भी वह उतना अजीव नहीं है जितना हिन्दुस्तानियों का आपस में अंग्रेजी में वातचीत करना।

मोटर से शहर में चक्कर लगाने और पैदल घूमने के लिए मैं गया। पुराना शहर था, जिसकी तीन या चार लाख की आवादी थी। लेकिन लड़ाई की वजह से हाल ही में आवादी वढ़ गयी थी; क्योंकि चीन से वाहर जाने के रास्तों में से कुनमिंग भी एक है। मुझे पता चला कि कुनमिंग और यूनानफू जगहें एक ही हैं। आज शाम तक मैं सोचे वैठा था कि वे दो जुदा-जुदा शहर होंगे! यूनानफू पुराना नाम है, और कुनमिंग नया है और विना किसी फ़र्क़ के दोनों नाम इस्तैमाल किये जाते हैं।

एक चीनी दोस्त के साथ मैं शहर में घूमा और इस कोशिश में रहा कि चीन के वायुमण्डल का अन्दाज़ करूँ, और लड़ाई के निशानात पाऊँ। सिपाहियों की यहाँ-वहाँ विखरी टुकड़ियों के अलावा लड़ाई के कोई निशान न थे। कुनमिंग पर गोलावारी नहीं हुई थी। सड़कों में गोल पत्थर लगे थे और वहाँ रोशनी ज्यादा नहीं थी। दुकानों पर रोशनी

लेकिन काम के खयाल से ज्यादा अच्छी नहीं होती।

चीनी कुली और मजदूर सभी धूप के कारण घास या बाँस के बने टोप लगाते हैं। हैनोय में मैंने देखा कि हरेक औरत और मर्द मज़-दूर टोप की तरह एक मुड़ी टोकरी इस्तैमाल करता है। धूप से बचने की यह सस्ती, अच्छी और हल्की टोपी है। कभी-कभी उसका किनारा इतना बड़ा होता है कि मेंह में भी छाते की तरह काम आता है। मेरे खयाल से हमारे हिन्दुस्तानी किसानों में भी इसी तरह धूप के टोप बनाने और पहनने का शौक पैदा करना चाहिए। इससे उनको बड़ी मदद मिलेगी। मुझे यक़ीन है कि बाँस या सरकंडे के बने धूप के टोप उड़ीसा और मलाबार में पहने भी जाते हैं।

एक भोज में मैं प्रो० तिन तुआन सेन, खानों के एक्सपर्ट मि० के० टी० ह्वांग और चीन के डाक-विभाग के डाइरेक्टर-जनरल, मि० सिन सुंग से मिला। उनसे बहुत दिलचस्प बातें हुईं।

चुंगकिंग का प्रोग्राम जो मेरे लिए रखा गया है, मुझे दिखा दिया गया है। वह बहुत बड़ा है; लेकिन है दिलचस्प। कल दोपहर में चुंगकिंग पहुँचूँगा और वहाँ शायद एक हफ्ते ठहरूँ। उम्मीद है कि रेडिओ पर भी बोलूँ।

मैं इस बात को नहीं भूल पाता कि कल सुबह में कलकत्ते में था। उसके बाद से बर्मा, स्याम और हिन्द-चीन से गुज़रा हूँ और अब मैं चीन में हूँ। इन जल्दी-जल्दी होनेवाली तब्दीलियों के मुआफ़िक होना बड़ा मुश्किल है। मौजूदा परिस्थितियों से हमारे दिमाग़ कितने पिछड़े हुए हैं। हम बीते दिनों की बात सोचे जाते हैं और आज की जो नियामतें हैं उनका फ़ायदा उठाने से इनकार कर देते हैं। तब दुनिया में इतनी लड़ाई और मुसीबत है, तो अचरज क्या है?

२३ अगस्त, १९३९

कुनमिंग की आबहवा बड़ी खुशगवार और ठंडी थी और हैनोय की गर्मी से वह तब्दीली बड़ी अच्छी जान पड़ी। रात को खूब सर्दी थी। उसकी वजह शायद यह थी कि पास ही एक झील थी। यह मुझे सुबह मालूम हुआ। वह झील मेरे कमरे की खिड़की के ठीक पीछे तक आती थी। हमारे होटल का नाम 'ग्राण्ड होटल ड्यू लैक' था।

बड़े तड़के सहन में से एक तीखी आवाज आती हुई मैंने सुनी। वह आवाज फ्रेंच व्यवस्थापिका की थी, जो सफाई और धुलाई की देखभाल करती हुई तेजी और गुस्से से फ्रेंच भाषा में चीनी लड़कों को डांट-फटकार रही थी। और आवाजें भी आ रही थीं जैसे अखबार बेचनेवाले लड़कों की।

कलेवे के बाद हम झील पर घूमने गये। जवान सैनिकों की पार्टियाँ गाती हुई जा रही थीं। इन सैनिकों या नव-सैनिकों में से कुछ तो लड़के ही मालूम होते थे। पन्द्रह बरस से ज्यादा के नहीं। लेकिन विदेशी को चीनियों की उम्र का अन्दाज लगाना मुश्किल है।

दस बजे से बहुत पहले हम हवाई अड्डे पर पहुँच गये। वहाँपर कोलाहल-सा मचा हुआ था। प्रान्तीय सरकार के कोई मेम्बर भी उसी जहाज से सफ़र कर रहे थे और कर्मचारियों को विदाई देनेवालों की भीड़ इकट्ठी थी। यूरेशिया कारपोरेशन के जहाज में हम सवा दस बजे रवाना हुए। जहाज भरा हुआ था और उसमें जगह कम ही थी। सब पर्दे डाल दिये गये थे। कुछ मिनट के बाद हमें बाहर देखने की इजाजत मिली। जाहिरा तौर पर वह तो हवाई अड्डा ही था और उसमें जो कुछ था वह जनता के देखने के लिए नहीं था।

उड़ने के दरमियान ही वेतार से यह खवर हमें मिली कि केन्द्रीय कोमिन्तांग के प्रधान मंत्री, डाक्टर चू चिआ ह्वा दूसरी वहुत-सी संस्थाओं के प्रतिनिधियों के, जिनमें चुंगकिंग के मेयर भी शामिल हैं, नेता की हैसियत से हवाई अड्डे से आपका अभिनन्दन और स्वागत करते हैं।

चुंगकिंग

चुंगकिंग पहुँचने में हमें तीन घंटे से कुछ ज्यादा लगे। रास्ते भर पहाड़-ही-पहाड़ थे और जव हम चुंगकिंग के पास पहुँचे तो पहाड़ों और चट्टानी किनारों के वीच यांग्त्सी नदी चक्कर लगाती हुई दिखाई दी। धरती की सतह ज़रा भी दिखाई नहीं देती थी। मुझे अचरज हुआ कि उस ऊँचे-नीचे मुल्क में हवाई अड्डा किस तरह वनाया गया होगा। इसका जवाव वड़ा दिलचस्प था और मेरे लिए तो वह अनोखा। जहाज़ नदी के वीचों वीच सूखी ज़मीन पर उतरा। वहुत-से वड़े-वड़े लोग वहाँ जमा हुए थे। फ़ौज के कुछ वड़े अफ़सर और डाक्टर चू जिन्होंने वेतार की खवर भेजी थी, उनके प्रमुख थे। ज्योंही मैं जहाज़ से उतरा 'वन्दे-मातरम्' की परिचित और मधुर ध्वनि ने मेरा अभिनन्दन किया। अच-रज से जव मैंने ऊपर देखा तो यूनिफ़ार्म में एक हिन्दुस्तानी को पाया। वह हमारे कांग्रेस मैडिकल यूनिट के धीरेश मुखर्जी थे।

स्वागत में एक छोटा-सा भाषण हुआ और फूलों के गुलदस्ते भेंट किये गये। उसके वाद हम यूनिफ़ार्म में खड़ी लड़कियों और लड़कों की कतार के पास होकर गुज़रे। उन्होंने एक आवाज़ से झण्डे हिलाकर हमारा अभिवादन किया। वाद में नदी पार करने के लिए हम एक नाव पर जा वैठे।

नदी के दूसरे किनारे पर वहुत-सी सीढ़ियाँ हमारे सामने दिखाई
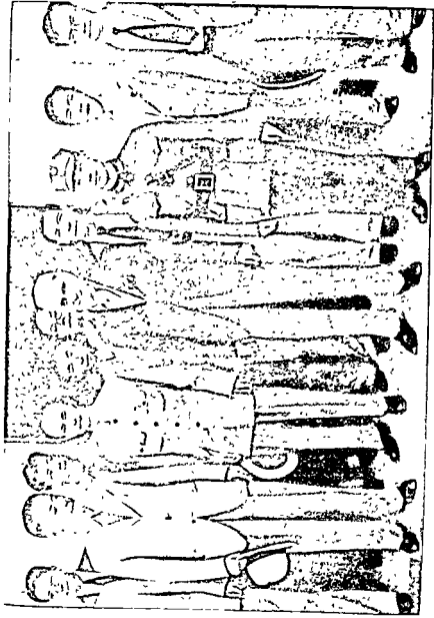
प० जवाहरलाल नेहरू : चीन में डॉ० चु चिया ह्वा (केंद्रीय क्योमिंताग के प्रधान मन्त्री), जनरल चेन चैंग आदि के साथ

दी और मुझसे एक पालकी में (जिसे 'चो से' कहते थे, बैठने के लिए कहा गया। सोचा गया था कि उसमें मुझे ऊपर लेजाया जाये। इस तरह ऊपर ले जाये जाने के विचार पर मुझे हँसी आयी और फुर्ती के साथ मैने सीढियों पर चढना शुरू कर दिया; लेकिन फौरन ही मुझे मालूम हुआ कि ऊपर चढ़ना आसान काम नही है। कोई ३१५ बड़ी सीढ़ियाँ थीं। मै हाँपने लगा और थक भी चला। औरों पर मैंने अपनी ताकत का रौब गालिब तो किया; लेकिन मैंने महसूस किया कि ऐसे हिम्मत के खेल कर सकूँ इतना जवान अब मैं नही रहा हूँ। वहाँसे हमने विदेशी ऑफिस के महमान-घर के लिए, जहाँ मेरे ठहरने का इन्तजाम किया गया था, कार ली। वहाँ फिर हमें कोई सौ सीढ़ियाँ चढनी पडी। चुंगकिंग पहाडों पर फैला हुआ बसा है। कुछ पहाडों के बीच में है, कुछ ऊपर चोटी पर और हमवार रास्ता तो बहुत ही थोड़ा है।

बहुत-से बड़े अफसर और दूसरे लोग मुझसे मिलने आये और मैंने चुंगकिंग का एक हफ्ते का कार्यक्रम जो मेरे लिए बनाया गया था, देखा। सबसे पहले उसी शाम को चार बजे एक मीटिंग थी, जिसमें १९३ संस्थाएँ मेरा स्वागत करने को थीं। इस मीटिंग में हम गये। एक बुजुर्ग राजनेता श्री वू चि-हुई ने अभिनन्दन करते हुए कुछ शब्द कहे, जिनका मैंने जवाब दिया। उसके बाद सन यात-सेन की तस्वीर के सामने राष्ट्रीय नारे लगाये गये और वन्दना की गयी। बाजे चीनी राष्ट्र-गीत बजा रहे थे। सारा दृश्य बडा प्रभावशाली था।

इसी मीटिंग के दरमियान मुझे मालूम हुआ कि जहाँ कहीं प्रधान सेनापति का नाम आता है, वही उनकी इज्जत के लिए सारे लोगो को उठकर खडा होना पड़ता है। इस बार-बार खड़े होने से मीटिंग में बाधा पड़ती है। इसलिए उसे रोकने के लिए मुनासिब यह है कि

उनको नेता या और किसी नाम से पुकार लिया जाया करे, नाम उनका न लिया जाये।

मीटिंग के वाद फ़ौरन ही मुझे भोज में पहुँच जाना था, जिसका इन्तज़ाम बहुत-सी संस्थाओं की तरफ़ से किया गया था। लेकिन तभी गुप्त रूप से खबर मिली कि गोलावारी की उम्मीद की जा रही है। इसलिए खाने का मामला ही खत्म हो गया। जल्दी से हम अपने घर की तरफ़ लौटे। हमने देखा कि सड़क पहले ही से आदमियों से भरी हुई है और सव एक तरफ़ को जा रहे हैं। सरकार की तरफ़ से खतरे का सिगनल अभी नहीं दिया गया था; लेकिन खबर दे दी गयी थी और मर्द-औरतें अपने बचाव के लिए सुरंगों की तरफ़ तेजी से जा रहे थे। चुंगकिंग को एक सहूलियत है। दुश्मनों के जहाजों के आने की खवर जल्दी ही एक घण्टे से भी पहले मिल जाती है।

उसके वाद फ़ौरन ही खतरे का भोंपू वोला और मुझसे कहा गया कि मैं किसी सुरंग में चला जाऊँ। यह बात मैंने बहुत नापसंद की; लेकिन अपने मेजवानों से इनकार भी तो नहीं कर सकता था। हम लोग मोटर में बैठकर एक खास सुरंग में गये जो विदेशमंत्री के घर से मिली हुई थी। सड़कों पर बड़ा जोशीला दृश्य दिखाई दे रहा था। लोग भागकर या तेजी से चलकर सब-के-सब वमवारी से वचानेवाली जुदा-जुदा सुरंगों की ओर जा रहे थे। कुछेक के साथ छोटे-मोटे वण्डल या बक्स थे। माँएँ अपने बच्चों को छाती से लगाये हुए थीं और छोटे-छोटे कुनबे साथ-साथ जा रहे थे। लॉरियाँ आदमी भर-भरकर ले जा रही थीं। किसी तरह की घवराहट वहाँ दिखाई नहीं देती थी। वह तो लोगों का रोजमर्रा का काम था और वे उसके आदी हो गये थे।

हम विदेश-मंत्री की सुरंग में पहुंचे। देखा कि उनके दोस्त जमा होते

वक़्त काटनें के लिए हमने अन्तर्राष्ट्रीय हालत की हाल की पेचीदगी रूस और जर्मनी की प्रस्तावित अनाक्रमण संधि व इंग्लैण्ड, फ्रांस और जापान पर उसका असर इन सवपर चर्चा की। इस संधि से वहुत से चीनी ख़ुश थे, क्योंकि इसे वह जापान के अकेला रह जाने की निशानी समझते थे।

उस सुरंग के अँधेरे में हम दो घंटे तक वैठे रहे। सव एक दम खामोश और एकचित वैठे थे और मुझे वताया गया कि हवाई हमला अमूमन तीन-चार घंटे तक चलता है। तब्दीली के खयाल से यह तजुर्वा मुझे वुरा नहीं लगा; लेकिन अपने मन में मैं यह साफ़ तौर से जानता था कि एक वक्त में घंटों यों ही वन्द पड़े रहने की वनिस्वत मैं चन्द्रमा की ताज़ी और ठंडी रोशनी में जाने का खतरा उठाना ज़्यादा पसन्द करूंगा। मुझे यह ज़्यादा पसन्द होगा कि आदमी से चूहा वनकर विल में वैठ जाने की वनिस्वत लड़ाई के मोर्चे पर जाऊँ या ऊपर आसमान में किसी पीछा करनेवाले जहाज में चक्कर लगाऊँ।

दो घंटे वीते और तव खवर मिली कि जापानी जहाज़ लौटे जा रहे हैं। सत्ताईस जहाज़ आये थे जिनमें से अठारह पहले ही हैंको की तरफ जाते देखे गये थे। वाक़ी नौ भी चले गये। रोशनी हुई और फौरन ही वहाँ पर शोर-गुल और जोश दिखाई देने लगा। वे सव लोग जो इतनी आत्मीयता से दो घंटे तक पास-पास वैठे थे, विना किसी तकल्लुफ़ या दुआ-सलाम के ज़ुदा हो गये और अपने-अपने घरों की तरफ़ तेज़ी से चले गये।

ज्यों-ज्यों आदमी अपनी छिपने की जगहों से वाहर आने लगे, सड़कें फिर भरने लगीं। जिस चाल से लोग गये थे, उससे कहीं धीमे लौट रहे थे। लौटते में हमें लोगों के वहुत-से गिरोह मिले। वे कुदाली

और वेलचा लिये उन जगहों की तरफ़ जा रहे थे जहाँपर कि बमबारी की वजह से नुकसान पहुँचा था। वे उसे ठीक करने जा रहे थे, दूसरे लोग अपने-अपने काम पर। चुंगकिंग में फिर मामूली तौर से कारोबार चलता दिखाई देने लगा। कुछ लोग शायद ऐसे थे जिनका काम ख़तम हो गया था और अपने मुर्दा और झुलसे शरीर में और आधुनिक सभ्यता की प्रगति और महानता का प्रदर्शन कर रहे थे।

हमें अबतक ठीक मालूम नहीं कि इस हमले में क्या हुआ? ज़ाहिरा तौर पर ख़ास शहर तो बच गया; लेकिन इसके सरहदों पर, ख़ासकर एक गाँव पर जो छोटा-सा औद्योगिक केन्द्र था, बम-वर्षा हुई।

५

२४ अगस्त, १९३९

पिछली रात का हवाई हमला, जहाँतक जापानियों का ताल्लुक था, यों ही गया। मालूम होता है कि चीन के पीछा करनेवाले जहाज़ों ने उन्हें शहर से बाहर ही रोक दिया था और थोड़ी मामूली-सी लड़ाई हुई। सर्च-लाइट में कुछ जापानी जहाज़ पहचान लिये गये। इसीलिए जापानी जहाज़ शहर के बाहर मैदाँ पर ही जल्दी-जल्दी बम डालकर चले गये। एक झोंपड़ी बरबाद हो गयी और दो आदमियों के मामूली चोट आयी। कहा जाता है कि पीछा करनेवाले जहाज़ों में से चलायी गयी मशीनगनों के गोले कई एक जापानी जहाज़ों में आकर लगे। जापानी जहाज़ों का कितना नुकसान हुआ, इसका तो पता नहीं। लेकिन ऐसा ख़याल किया जाता है, या उम्मीद की जाती है, कि उन जहाज़ों में से कुछ को लौटने में मजबूरन् जगह-जगह उतरना पड़ा होगा।

अगले कुछ दिनों में अबतक चाँदनी रात रहेगी, शायद हमें

वक़्त काटनें के लिए हमने अन्तर्राष्ट्रीय हालत की हाल की पेचीदगी रूस और जर्मनी की प्रस्तावित अनाक्रमण संधि व इंग्लैण्ड, फ्रांस और जापान पर उसका असर इन सबपर चर्चा की। इस संधि से बहुत से चीनी खुश थे, क्योंकि इसे वह जापान के अकेला रह जाने की निशानी समझते थे।

उस सुरंग के अँधेरे में हम दो घंटे तक बैठे रहे। सब एक दम खामोश और एकचित बैठे थे और मुझे बताया गया कि हवाई हमला अमूमन तीन-चार घंटे तक चलता है। तब्दीली के खयाल से यह तजुर्बा मुझे बुरा नहीं लगा; लेकिन अपने मन में मैं यह साफ़ तौर से जानता था कि एक वक्त में घंटों यों ही बन्द पड़े रहने की बनिस्बत मैं चन्द्रमा की ताज़ी और ठंडी रोशनी में जाने का खतरा उठाना ज़्यादा पसन्द करूंगा। मुझे यह ज़्यादा पसन्द होगा कि आदमी से चूहा बनकर बिल में बैठ जाने की बनिस्बत लड़ाई के मोर्चे पर जाऊँ या ऊपर आसमान में किसी पीछा करनेवाले जहाज में चक्कर लगाऊँ।

दो घंटे बीते और तब खबर मिली कि जापानी जहाज़ लौटे जा रहे हैं। सत्ताईस जहाज़ आये थे जिनमें से अठारह पहले ही हैंको की तरफ जाते देखे गये थे। बाक़ी नौ भी चले गये। रोशनी हुई और फौरन ही वहाँ पर शोर-गुल और जोश दिखाई देने लगा। वे सब लोग जो इतनी आत्मीयता से दो घंटे तक पास-पास बैठे थे, बिना किसी तकल्लुफ़ या दुआ-सलाम के जुदा हो गये और अपने-अपने घरों की तरफ़ तेज़ी से चले गये।

ज्यों-ज्यों आदमी अपनी छिपने की जगहों से बाहर आने लगे, सड़कें फिर भरने लगीं। जिस चाल से लोग गये थे, उससे कहीं धीमे लौट रहे थे। लौटते में हमें लोगों के बहुत-से गिरोह मिले। वे कुदाली

और बेलचा लिये उन जगहों की तरफ जा रहे थे जहांपर कि बमबारी की वजह से नुकसान पहुँचा था। वे उसे ठीक करने जा रहे थे, दूसरे लोग अपने-अपने काम पर। चुगकिंग में फिर मामूली तौर से कारोबार चलता दिखाई देने लगा। कुछ लोग शायद ऐसे थे जिनका काम खतम हो गया था और अपने मुर्दा और झुलसे शरीर से और आधुनिक सभ्यता की प्रगति और महानता का प्रदर्शन कर रहे थे।

हमें अबतक ठीक मालूम नहीं कि उस हमले में क्या हुआ ? जाहिरा तौर पर खास शहर तो बच गया; लेकिन उसके सरहद्दों पर, खासकर एक गाँव पर जो छोटा-सा औद्योगिक केन्द्र था, बम-वर्षा हुई।

५

२४ अगस्त, १९३९

पिछली रात का हवाई हमला, जहांतक जापानियों का ताल्लुक था, यों ही गया। मालूम होता है कि चीन के पीछा करनेवाले जहाजों ने उन्हें शहर से बाहर ही रोक दिया था और थोड़ी मामूली-सी लड़ाई हुई। सर्च-लाइट से कुछ जापानी जहाज पहचान लिये गये। इसलिए जापानी जहाज शहर के बाहर खेतों पर ही जल्दी-जल्दी बम डालकर चले गये। एक झोंपडी बरबाद हो गयी और दो आदमियों के मामूली चोट आयी। कहा जाता है कि पीछा करनेवाले जहाजों में से चलायी गयी मशीनगनों के गोले कई एक जापानी जहाजों में आकर लगे। जापानी जहाजों का कितना नुकसान हुआ, इसका तो पता नहीं। लेकिन ऐसा खयाल किया जाता है, या उम्मीद की जाती है, कि उन जहाजों में से कुछ को लौटने में मजबूरन् जगह-जगह उतरना पड़ा होगा।

अगले कुछ दिनों में जबतक चाँदनी रात रहेगी, शायद कुछ हवाई

हमले और हों। भविष्य में चाँदनी रात का ताल्लुक और-और चीज़ों के साथ हवाई हमलों से भी समझा जाना चाहिए।

आज सुबह मुझे पता चला कि प्रधान सभापति ने पिछली रात के हमले में मेरी हिफ़ाज़त के बारे में अपनी चिंता प्रगट की थी। उन्होंने खबर दी कि मुझे उनकी खास सुरंग में भेज दिया जाये, लेकिन इस खबर के आने से पहले ही मैं तो विदेशी मंत्री के यहाँ चला गया था।

बहुत से लोगों—मन्त्रियों और सेनापतियों—ने मुझे सुजनतापूर्ण निमन्त्रण दिया है कि जब-कभी मौक़ा आये, मैं उनकी सुरंग इस्तैमाल करूँ। मेरा अन्दाज़ है कि बमबारी के इस ज़माने में यह शिष्टाचार और मित्र-भाव की हद है।

सुबह का वक़्त मैंने मिलने-मिलाने में बिताया। पहले मैं कोमितांग के प्रधान कार्यालय में गया, जहाँपर मुझे प्रधान-मंत्री डा० चूचिआ हूवा मिले। कोमितांग का विधान और संगठन मुझे समझाने लगे। यह विधान तो बड़ा पेचीदा है और वह कैसे बना और किस तरह उसका संचालन होता है इस बारे में मुझे बहुत ही धुंधला खयाल रहा। फिर भी मैं इतना तो समझ गया कि कोमितांग कोई ज्यादा जनतंत्रीय संस्था नहीं है, चाहे वह कहलाती जनतंत्रीय ही है। उस दिन, बाद में मैंने कुछ मंत्रियों से शासन की रूपरेखा को समझने की कोशिश की। वह तो और भी पेचीदा है और कोमितांग और सरकार के बीच का सम्बन्ध बड़ा अजीब है। शायद आपसी बातें उनके मजबूत संबंध को क़ायम किये हुए हैं। मैंने कुछ ऐसी किताबें और काग़ज़ात माँगे हैं, जिनसे सरकार और कोमितांग का ढाँचा समझ सकूँ।

उसके बाद मैं विदेश-मंत्री डा० वंग से मिलने गया, जिनका बे-बुलाया मैं पिछली रात सुरंग के भीतर रहा था। बहुत देर तक हम

दिलचस्प बातें करते रहे।

मेरी तीसरी मुलाकात डा० हॉलिंटन के. तांग के साथ हुई जिनके सुपुर्द प्रकाशन का काम है। उनका और उनके काम का मुझपर अच्छा असर पड़ा।

नदी-किनारे के एक रेस्त्रॉं (भोजनालय) में नाश्ते का इन्तजाम बड़े पैमाने पर किया गया था और वह तकल्लुफाना भी था। वह शहर के कारपोरेशन, कोमितांग और नगर-रक्षक-सेना के कमान्डर की तरफ से दिया गया था। ऐसे तकल्लुफाना जल्से—भले ही मेजबान लोग उनमें काफी घरेलूपन ला देते हों—बड़े परेशान करते हैं। नुमायशी तकरीरें हुई जिनका जवाब मैंने गिने-चुने बेजान शब्दों में दिया और फिर उनका तरजुमा हुआ है। मेरे वहाँ पहुँचने और वहाँसे चलने पर फौजी बाजे बजने लगते हैं और सलामी का तो कोई ठिकाना ही नहीं। मुझे डर है कि मेरी बेतकल्लुफ आदतें इस सबसे मेल नहीं खा पातीं।

लेकिन सबसे बड़ी आफत तो खाना है, जो चलता ही रहता है, अखीर जिसका दीखता ही नहीं। और ठीक उसी वक्त जब मैं सोचता हूँ कि चलो खत्म हुआ, तभी मेज पर आधी दर्जन रकाबियाँ और आ धमकती हैं। चीनी खाना या उसकी कुछ चीजें मुझे पसन्द हैं। उनमें कला होती है। लेकिन खाना मेरी समझ में नहीं आता। मालूम होता है कि मजेदार रकाबियों की बहुत-सी किस्में हैं, जो एक के बाद एक चली आती हैं। खानेवाले थोड़ा-थोड़ा करके उन्हें खाते हैं। और तरह-तरह के उम्दा स्वादों का आनन्द लेते जाते हैं। खाने का तरीका मैं पसन्द नहीं करता। मेरा मतलब चॉप स्टिकों से नहीं है जिन्हें होशियारी और लियाकत के साथ इस्तेमाल करना होता है। काश कि मैं उनको इस्तेमाल करने में ज्यादा माहिर होता! सारी रकाबियाँ बीच

हमले और हों। भविष्य में चांदनी रात का ताल्लुक और-और चीज़ों के साथ हवाई हमलों से भी समझा जाना चाहिए।

आज सुबह मुझे पता चला कि प्रधान सभापति ने पिछली रात के हमले में मेरी हिफ़ाजत के बारे में अपनी चिंता प्रगट की थी। उन्होंने खबर दी कि मुझे उनकी खास सुरंग में भेज दिया जाये, लेकिन इस खबर के आने से पहले ही मैं तो विदेशी मंत्री के यहाँ चला गया था।

बहुत से लोगों—मन्त्रियों और सेनापतियों—ने मुझे सुजनतापूर्ण निमन्त्रण दिया है कि जब-कभी मौक़ा आये, मैं उनकी सुरंग इस्तैमाल करूँ। मेरा अन्दाज़ है कि बमबारी के इस ज़माने में यह शिष्टाचार और मित्र-भाव की हद है।

सुबह का वक्त मैंने मिलने-मिलाने में बिताया। पहले मैं कोमितांग के प्रधान कार्यालय में गया, जहाँपर मुझे प्रधान-मंत्री डा० चूचिआ ह्वा मिले। कोमितांग का विधान और संगठन मुझे समझाने लगे। यह विधान तो बड़ा पेचीदा है और वह कैसे बना और किस तरह उसका संचालन होता है इस बारे में मुझे बहुत ही धुंधला खयाल रहा। फिर भी मैं इतना तो समझ गया कि कोमितांग कोई ज़्यादा जनतंत्रीय संस्था नहीं है, चाहे वह कहलाती जनतंत्रीय ही है। उस दिन, बाद में मैंने कुछ मंत्रियों से शासन की रूपरेखा को समझने की कोशिश की। वह तो और भी पेचीदा है और कोमितांग और सरकार के बीच का सम्बन्ध बड़ा अजीब है। शायद आपसी बातें उनके मजबूत संबंध को क़ायम किये हुए हैं। मैंने कुछ ऐसी किताबें और काग़जात माँगे हैं, जिनसे सरकार और कोमितांग का ढाँचा समझ सकूँ।

उसके बाद मैं विदेश-मंत्री डा० वैंग से मिलने गया, जिनका बे-बुलाया मैं पिछली रात सुरंग के भीतर रहा था। बहुत देर तक हम

दिलचस्प बातें करते रहे।

मेरी तीसरी मुलाकात डा० हॉलिटन के. तांग के साथ हुई जिनके सुपुर्द प्रकाशन का काम है। उनका और उनके काम का मुझपर अच्छा असर पड़ा।

नदी-किनारे के एक रेस्ट्राँ (भोजनालय) में नाश्ते का इन्तज़ाम बड़े पैमाने पर किया गया था और वह तकल्लुफ़ाना भी था। वह शहर के कारपोरेशन, कोमितांग और नगर-रक्षक-सेना के कमान्डर की तरफ़ से दिया गया था। ऐसे तकल्लुफ़ाना जल्से—भले ही मेज़बान लोग उनमें काफ़ी घरेलूपन ला देने हों—बड़े परेशान करते हैं। नुमायशी तक़रीरें हुईं जिनका जवाब मैंने गिने-चुने बेजान शब्दों में दिया और फिर उनका तरजुमा हुआ है। मेरे वहाँ पहुँचने और वहाँसे चलने पर फ़ौजी बाजे बजने लगते हैं और सलामी का तो कोई ठिकाना ही नहीं। मुझे डर है कि मेरी बेतकल्लुफ़ आदतें इस सबसे मेल नहीं खा पातीं।

लेकिन सबसे बड़ी आफ़त तो खाना है, जो चलता ही रहता है; अख़ीर जिसका दीखता ही नहीं। और ठीक उसी वक़्त जब मैं सोचता हूँ कि चलो ख़त्म हुआ, तभी मेज़ पर आधी दर्जन रकाबियाँ और आ धमकती हैं। चीनी खाना या उसकी कुछ चीज़ें मुझे पसन्द हैं। उनमें कला होती है। लेकिन खाना मेरी समझ में नहीं आता। मालूम होता है कि मज़ेदार रक़ाबियों की बहुत-सी क़िस्में हैं, जो एक के बाद एक चली आती हैं। खानेवाले थोड़ा-थोड़ा करके उन्हें खाते हैं। और तरह-तरह के उम्दा स्वादों का आनन्द लेते जाते हैं। खाने का तरीक़ा मैं पसन्द नहीं करता। मेरा मतलब चॉप स्टिकों से नहीं है जिन्हें होशियारी और लियाक़त के साथ इस्तैमाल करना होता है। काश कि मैं उनको इस्तेमाल करने में ज्यादा माहिर होता! सारी रक़ाबियाँ बीच

में रख दी जाती हैं और हरेक मेहमान बीच में रखी हुई रसभरी रक़ाबियों में से ही लजीज़ चीज़ें उठाता जाता है और लाज़िमी तौर से रसभरे कुछ टुकड़े मेजपोश पर गिरते जाते हैं।

तीसरे पहर मेरी एक बड़ी मज़ेदार मुलाक़ात मशहूर एट्थ रूट आर्मी (Eighth Route Army) के जनरल ये चियन-यिंग के साथ हुई। आना वोंग उनके साथ थीं, जो मेरी बोली का तरजुमा करती जाती थीं। आना वोंग जर्मन (आर्य) हैं। पर शादी उनकी चीन में हुई है और तन-मन से वह चीन-निवासिनी हैं। जापानी बमों से वह बाल-बाल बच चुकी हैं।

जनरल ये ने एट्थ रूट आर्मी के बारे में बातें कीं और बताया कि अपनी फ़ौजी कारंवाइयों के अलावा और क्या-क्या काम वह कर रही हैं। अपने दृष्टिकोण से उन्होंने चीन की मौजूदा हालत भी समझायी।

उसके बाद में प्रधान मंत्री या ठीक-ठीक कहें तो एक्जीक्यूटिव युअन के अध्यक्ष डा० कुंग से मिलने गया। वहांसे हम एक बड़ी चायपार्टी में गये, जो मेरा स्वागत करने के लिए खास-खास आदमियों की तरफ़ से दी जा रही थी। पार्टी बड़ी मज़ेदार रही और बहुत-से मंत्रियों, उप-मंत्रियों, भूतपूर्व मंत्रियों और सेनापतियों तक से मेरा मिलना हुआ। चीनी जलसेना-नायक ने तो मुझे हैरत में डाल दिया। मैंने चीनी जहाज़ी बेड़े के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कि फ़िलहाल तो जहाजी बेड़े में सिर्फ़ थोड़ी-सी तोपवाली नावें हैं। लेकिन कुछ भी हो जहाजी बेड़े का बाजा तो था ही, जो उस पार्टी में अच्छी तरह से बजाया जा रहा था।

इस पार्टी में मैं जिन लोगों से मिला उनमें सिंकिआंग से आये हुए एक प्रतिनिधि भी थे। वह मेरे सम्बन्ध में फ़ारसी में बोले। मुझे बड़ा अचरज हुआ! मेरे स्वागत में उन्होंने जो कुछ कहा, उसके बस एक-दो

शब्द में समझ सका और उस राजसी भाषा में बातचीत जारी रखने की अपनी नाक़ाबिलीयत पर मुझे अफसोस हुआ।

बहुत-से विदेशी पत्रकार खास तौर से अमरीकन और रूसी पत्रकार, वहाँ मौजूद थे।

चीनियों के नाम तो एक आफत है, खासकर तब जब कि खासी तादाद से मेरा साबका पड़ता है। बहुत से नाम तो क़रीब-करीब एक से ही सुनाई दिये। मेरा अन्दाज़ है कि इसी कठिनाई की वजह से चीनी लोगों को विज़िटिंग कार्डों से मुहब्बत बढी। ज्योंही आप किसी चीनी से मिलेंगे, फौरन ही वह अपना कार्ड निकालकर पेश कर देगा। मेरे पास बीसियों ऐसे कार्ड अभी से ही जमा होगये हैं। हिन्दुस्तान मे कार्डों का आदी न होने की वजह से मेरे पास अपने कार्ड ज्यादा नही हैं; पुराने ज़रूर मेरे पास पड़े हैं। लेकिन वे कबतक चलेंगे ?

बहुत-से मन्त्रियों और दूसरे लोगों के साथ जिनमे, जनरल चैन चेंग भी शामिल थे, भोज हुआ। हम दोनो की एक ज़बान न होते हुए भी जनरल चैन चेंग को मैं बहुत पसन्द करता हूँ। वह बेतकल्लुफाना भोज था और हमारी बातचीतें बड़ी मजेदार हुई। चीनी मुझे बहुत अद्भुत और बढे-चढ़े लोग जान पड़े। उनसे बात करने में मजा आता है, बशर्ते कि ज़बान की मुश्किल बीच में न आ जाये।

रात को कोई हवाई हमला नहीं हुआ।

: १ :

स्पेन के प्रजातन्त्र को श्रद्धांजलि

आज जबकि दुनिया में काली करतूतें की जा रही हैं, संस्कृति तथा सभ्यता नष्ट होती जा रही है और हर जगह हिंसा का जोरो-शोर बोल-बाला है, तब स्पेन और चीन के प्रजातन्त्र राष्ट्रों ने अपने ऊपर आये हुए विकट संकटों का भी बड़े शान के साथ मुकाबला करके उन लोगों के रास्ते में रोशनी करदी है, जो अंधेरी रात में इधर-उधर भटक रहे थे पर कोई रास्ता नहीं दीख पड़ता था। जो हिंसात्मक भयानक काण्ड हुए हैं, उनपर हमें दुख है, लेकिन उस मनुष्यतापूर्ण दिलेरी और साहस पर हम फख्र और उसकी तारीफ करते हैं, जो मौतों में भी मुसकराती रही है और अधिक ताकतवर होगयी है और इन्सान की उस अजेय आत्मा के प्रति भी हम आदर प्रकट करते हैं जो किसी भी बड़ी से-बड़ी ताकत के आगे सिर नहीं झुकाती, चाहे नतीजा कुछ भी क्यों न हो।

स्पेनवासियों के भविष्य को हम बड़ी चिन्ता के साथ देख रहे हैं, लेकिन हम यह जानते हैं कि ये दरअसल कभी नहीं जीते जा सकते, कारण कि स्वयं यह उद्देश्य ही अमिट है, जिसके पीछे इतना अजेय साहस और बलिदान हो रहा है। मैड्रिड, वेलेन्शिया और बार्सीलोना हमेशा जिन्दा रहेंगे और उनकी राख से उठ-उठकर स्पेन के प्रजातन्त्रवादी अपने स्वतन्त्र स्पेन का निर्माण करके अपने अरमान पूरे करेंगे।

हम लोग जो अपनी आजादी के लिए कशमकश कर रहे हैं, स्पेनीय प्रजातन्त्र के इस ऐतिहासिक युद्ध से बहुत प्रभावित हुए हैं क्योंकि यहाँ पर संसारभर की आजादी खतरे में है। हमारी लड़ाई के सरहदी मोर्चे

सिर्फ़ हमारे देश ही में नहीं वल्कि चीन और स्पेन में भी हैं।

इसी बीच लाखों शरणार्थी लोग प्रजातन्त्र-स्पेन में भूखों मर रहे हैं और औरतें और वच्चे ऊपर से दुश्मन की वमवारी ही नहीं सहते वल्कि खाने के वग़ैर मौत से भी लड़ते हैं। इस भयंकर विपत्ति की हिन्दुस्तान उपेक्षा नहीं कर सकता और हमें चाहिए कि हम उनके लिए भोजन और सहायता पहुँचाने का भरसक प्रयत्न करें।

मैं उन लोगों को, जिन्होंने यह आयोजन किया है और स्पेनवासियों के जीवन-मरण के संकट के समय उनकी मदद पहुँचाने के लिए जो लोग इसमें हिस्सा बँटा रहे हैं उन्हें, मुवारकवाद देता हूँ। आज़ादी के उन दीवानों के लिए हम कर तो कुछ भी नहीं सकते, पर कम-से-कम उनके गौरवपूर्ण साहस और जिस उद्देश्य के लिए उन्होंने असीम वलि-दान किया है, उसके प्रति यह श्रद्धांजलि तो भेंट कर ही सकते हैं।

स्पेन-प्रजातन्त्र की जय हो!

२४ जनवरी, १९३९

: २ :

स्पेन में

पिछले साल स्पेन में लडाई चल रही थी और मै वहाँ गया था, पर मैंने ये लेख अब लिखे है और कोशिश की है कि जो कुछ असर मुझपर पडा, उसे लिख डालूँ। बदकिस्मती से मैंने अपनी आदत के मुताबिक घटनाओ की कोई डायरी नहीं रखी, न कोई नोट ही लिये थे और वक्त गुज़र जाने से वे असर गायब होगये और याददाश्त तो बडी अजीब-अजीब चाले खेलती है। फिर भी चूँकि वे काफी साफ़ थे, इसलिए मेरे दिमाग में बहुत कुछ रहा और रहेगा, भले ही नये-नये खतरे और नयी-नयी आफते क्यो न आती जायें। जैसा मैंने चाहा था मैं इन्हें पूरा नहीं लिख सका, इसलिए इन लेखो को अपूर्ण वर्णन ही मानना चाहिए।

१

एक साल पहले और ठीक-ठीक कहूँ तो एक साल और एक हफ्ता पहले १४ जून १९३८ को हम जिनोवा में उतरे थे। हमारा निश्चय स्पेन—प्रजातन्त्र स्पेन जाने का था, इसलिए हम फौरन मार्सेलीज जाने के लिए हवाई जहाज़ पर सवार होगये। हमारा हवाई जहाज़ रिवीयरा के चक्करदार और समुद्रतट के ऊपर होकर उड़ता चला। वहाँ पासपोर्ट लेना-लिवाना, पुलिस के कायदे-कानून मानना वग़ैरा दस्तूर अदा किये गये। बिना आराम किये और खाना खाये हम वहाँ के कई दफ्तरों में गये और एक से दूसरे में भटकते रहे। स्पेन के लिए हमारे

पास एक ख़ास पास था और स्पेन सरकार का वह निमन्त्रणपत्र भी था, जिसमें हमसे वहाँ आने की और उनके प्रतिनिधियों को हमारे लिए तमाम सुविधा करने और सहायता देने की सूचना दी गयी थी।

इस बल पर हमने सोचा कि अब हमारे रास्ते में कोई अड़चन नहीं आयेगी। लेकिन वह हमारी भूल थी। घंटों हम मार्सेलीज़ के एक कोने से दूसरे कोने में,एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर में और वहाँसे भी अगले दफ्तर में भेजे जाने के लिए फिर तीसरे दफ्तर में और फिर चौथे दफ्तर में—भागे-भागे फिरे। हमें पता चला कि कुछ और फ़ोटो ज़रूरी हैं। इसलिए हमने एक फ़ोटोग्राफ़र खोज निकाला, जिसने अपनी ओटो-मेटिक मशीन से मिनटों में फ़ोटो तैयार करके दे दिये।

एक कार्यालय का काम सँभालनेवाली महिला ने बताया कि स्पेन के लिए मेरे पास जो पास है वह ठीक नहीं है। वह लिखा हुआ था अंग्रेज़ी में और एक फ्रेंच कार्यालय को अंग्रेज़ी भाषा पर ध्यान देने की भला क्या ज़रूरत पड़ी थी ? मैंने कहा कि मैं उसके कुछ शब्दों का अनुवाद कर दूँ; लेकिन वह तो अपनी बात पर अड़ी थी। इसलिए हम ब्रिटिश कौंसलेट में गये और वहाँसे दूसरा पास प्राप्त किया। अबकी बार वह फ्रेंच में था। लौटकर उसी हठीली महिला के पास आये। लेकिन उसने कहा कि फ़ीस तो आपने दी ही नहीं है। हम फ़ीस देने को तैयार हुए, तो वह हमारी नादानी पर घृणा के भाव से मुस्करायी। फ़ीस तो पुलिस दफ्तर में जमा होनी चाहिए थी कि जो वहाँसे कुछ मील की दूरी पर था और उसकी रसीद पासपोर्ट के कार्यालय में लायी जानी चाहिए थी।

अधिकारी की आज्ञा का हमें पालन करना पड़ा। पुलिस-दफ्तर हम गये, फ़ीस जमा की और रसीद लेकर विजय की खुशी के साथ लौटे।

महिला ने देखकर कहा—यह क्या ? जरूरी फीस में से आपने तो आधी ही जमा की है ! यह काफी नहीं है। साफ था कि या तो हमने उस महिला की बात गलत समझी, या हममें से किसीने भूल की थी। अब तो इसके सिवा और उपाय ही न था कि थके-माँदे पुलिस-दफ्तर फिर वापस जाते। जल्दी-जल्दी हमें जाना पड़ा क्योंकि कार्यालय के बन्द होने का समय आ गया था।

आखिरकार पूरी-पूरी फ़ीस जमा करके ठीक रसीद ली गयी और कार्यालय की वह महिला हमारी परेशानी पर रहम खाकर हमपर मुस्करायी और अधिकार-पत्र हमें दे दिया। अपने कार्यालय को उसने हमारी वजह से खोले रखा था, हालाँकि शाम हो गयी थी और दूसरे दफ्तर बन्द हो चुके थे।

अब स्पेनिश कौंसलेट का सवाल रहा; क्योंकि उसकी भी इजाजत पाना जरूरी था। हम वहाँ गये। डर था कि कहीं वह बन्द न हो गया हो। बन्द तो वह हो ही गया था; लेकिन हमारे पास जो कागज थे, उन्होंने गजब कर दिखाया। बन्द दरवाजे खोले गये और हमारा बड़ा हार्दिक स्वागत किया गया।

आखिरकार हमारी मनचाही चीज हमें मिली। रात होती जा रही थी और हम भी थके हुए थे। भूख हमें लग रही थी और आँखों में नींद घुल रही थी। खाने में स्पेनिश कौंसल ने हमारा साथ दिया; लेकिन हम उसका साथ क्या दे सकते थे ? हम तो बस बिस्तर और नींद की ही बात सोच रहे थे।

इस तरह हमारा यूरोप का पहला दिन बीता ! अगले दिन तड़के साढ़े चार बजे हम बार्सीलोना का जहाज पकड़ने के लिए हवाई अड्डे की तरफ भागे। हमारे नीचे गहरा नीला भूमध्यसागर था और स्पेन के

समुद्री किनारे की रेखा दूर पर फैली हुई थी। शीघ्र ही हम स्पेनिश भूमि पर उड़ने लगे और लड़ाई और बरबादी के चिह्न खोजने लगे। लेकिन उतनी ऊँचाई से हमें कोई निशान दिखाई नहीं दिया। देश में शान्ति फैली हुई दीखती थी।

अपने मंज़िलेमक़सूद, बार्सीलोना के हवाई स्टेशन पर हम पहुँचे जो शहर से कुछ मील दूर था। कुछ ग़लती होगयी दीखती थी। वहाँ हमसे मिलने के लिए कोई नहीं था और कुछ समय तक हम समझ न पाये कि हमें क्या करना चाहिए? कुछ देर बाट जोहने के बाद हम मोटर-बस से शहर गये। हरे-भरे लहलहाते खेतों के बीच से हम गुज़रे और कहीं-कहीं सड़क के किनारे हमें घरों के खण्डहर भी मिले। ज़ाहिर था कि उनपर हवाई जहाजों ने बम बरसाये होंगे। लेकिन दृश्य शांत था और मर्द और औरतें खेतों में काम कर रही थीं। दूर पर बार्सी-लोना दिखाई दिया। वह समुद्र-तट के सहारे-सहारे फैला हुआ था और ठीक भीतर तक चला गया था। उस भूप्रदेश में जहाँ-तहाँ खड़ी हुई छोटी-छोटी पहाड़ियाँ उससे मिली हुई थीं। धूप लेता हुआ बार्सीलोना बड़ा गौरवशाली दिखाई दिया। मालूम होता था वर्षों के तजुर्बेवाला और ज़ईफ वह है और लम्बा इतिहास उसके पीछे है; लेकिन फिर भी जैसे ताक़त और जान उसमें है और जो कोई परदेसी उसे देखे उसका अपनी मधुर मुसकराहट से वह अपने संकट और दुख के वक़्त भी हार्दिक स्वागत करता है।

बार्सीलोना की चौड़ी और सायादार सड़कों पर हम पहुँचे। सड़कें लोगों से भरी थीं। लोग हँस रहे थे, खुश थे और अपनें काम या कारो-बार पर तेज़ी से जा रहे थे। मुसाफिरों से खचाखच भरी ट्रामें इधर-से-उधर दौड़ रही थीं। दुकानें खुली हुई थीं। थियेटरों, सिनेमा और

नाचघरों में चहल-पहल दिखाई दे रही थी। अचंभित होकर हमने इस बड़े शहर की जिन्दगी के इस चलते-फिरते नज्ज़ारे को देखा। क्या यह उस युद्धकालीन सरकार की राजधानी थी जो विदेशी हमले और घरेलू झगड़ों के खिलाफ जीवन की साँसें ले रही है? उसकी लड़ाई का मोर्चा कुछ ही मील की दूरी पर है और जिन्दगी मौत के किनारे ही चक्कर लगा रही है? क्या यह वही शहर है जिसपर रोज हवाई जहाजों से बम बरसते हैं? और जो लगातार आसमान से मौत का सामना करता आरहा है?

लड़ाई के निशान काफी साफ दिखाई देते थे। बड़ी-बड़ी इमारत खड्हर हुई पड़ी थीं और उनके जले हुए हिस्से दिखाई देते थे। सड़कें और पक्के फ़र्श बम गिरने से टूट गये थे और उनमें गहरे गड्ढे पड़ गये थे। दुकाने खुली तो थीं; लेकिन उनपर सामान बहुत कम था और शान-शौकत की चीजें नजर नहीं आती थीं। आदमियों और औरतों के कपड़े पुराने थे और ज्यादातर फटे थे। हर जगह सिपाही वर्दी में दिखाई देते थे। हालाँकि स्पेनवासियों का जैसा स्वभाव है, वे लोग हँसते थे, मगर चेहरों से उनके गम्भीरता और दुख टपकता था। वहाँके वातावरण में शोक था। स्पेन की औरतें अपनी ओढ़नी में शानदार और आकर्षक लगती थीं जैसी कि वे हमेशा लगा करती हैं। मुँह पर मुस्कराहट थी, पर उनकी काली आँखों से चिन्ता टपकती थी। बिना टोप के वे जाती थीं; क्योंकि टोप अनावश्यक विलासिता की चीज़ थी और अपनी नयी आज़ादी के चिह्नस्वरूप उन्होंने टोप लगाना छोड़ दिया था। लेकिन चाहे वे खुश थे या दुखी, उनकी निगाह में, चाल-ढाल में और निश्चय में अभिमान था।

हम अपने होटल—मैजेस्टिक में पहुँचे और फौरन ही विदेशी ऑफिस

को फ़ोन किया । थोड़ी देर वाद प्रचार और प्रकाशन मन्त्रिमण्डल की एक जवान महिला वहुत-कुछ माफ़ी माँगती हुई हमसे मिलने आयी । वह वड़ी होशियार और सुन्दर थी । उसने हमारा सारा ज़िम्मा लिया और हमारे ठहरने और कार्यक्रम की सारी व्यवस्था की । वार्सीलोना के हमारे थोड़े वक्त के ठहरने में वह हमारी मार्गप्रदर्शिका रही, दोस्त रही और हमारे वहाँ आनें से सम्वन्ध रखनेवाली हरेक वात पर वह ध्यान देती रही ।

इस ख़ूवसूरत शहर में हमने पाँच दिन विताये और पाँचों रात हवाई जहाज़ों से वमवारी हुई । इन पाँच दिनों में नयी-नयी घटनाएँ घटीं और तरह-तरह के अनुभव हुए । जिनकी याद हमेशा वनी रहेगी ।

२१ जून, १९३९

२

क्या सिर्फ़ एक ही साल पहले में स्पेन में था ? तवसे जमाना वीत गया है । धक्के लगे हैं, मुसीवतें आयी हैं । आते-जाते सूरज और चाँद को देख-देखकर दिन गिन-गिनकर तो हमारी ज़िन्दगी के साथ वढ़ती जाती हुई अपनी भावनाओं और अनुभवों का सच्चा अन्दाज़ लगाया नहीं जा सकता । स्पेन में जिन वहादुर, शानदार ज़िन्दगी से भरे-पूरे, राष्ट्र की आशा के प्रतीक मर्द और औरतों से मैं मिला, उनकी शक्लें आज ख़याली शक्लें हैं । वहुत से मर गये और वहुत से पनाहगीर की तरह इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं । लेकिन मन उनकी याद से भरा है और अपने चन्द दिनों स्पेन में ठहरने में जो ख़यालात मैंने उनके वारे में वनाये, वे भी अवतक वने हैं । कभी-कभी तो ये स्मृतियाँ इतनी स्पष्ट होती हैं कि मुझे दीख़ता है कि जैसे कल ही मैं वहाँ था और कभी लगता था कि

जैसे हजार बरस बीत गये हैं और मैं बूढ़ा, बहुत बूढ़ा हो गया हूँ। वक़्त हमारा बड़ा अजीब और धोखे में डालनेवाला साथी है! लेकिन याद-दाश्त की चालें उससे भी अजीब हैं। पुरानी भूली बातें बराबर याद आती हैं, अनजानी दुनिया की झलक आती जाती हैं और मानव-जाति और स्वयं मनुष्यता के आरम्भिक दिनों की धुँधली छाप पड़ती है। हम आदमी बहुत पुराने हैं और 'हव्वा' की बुलबुलों का तराना अब भी हमारे कानों में गूँज रहा है और जन्नत के सपनों से हम परेशान रहते हैं और युगों की दुखभरी कहानियाँ हमें दुखी बनाती हैं।

बार्सीलोना में व उसके आसपास हमें बहुत-से लोग मिले, और बहुतों की साफ़-साफ़ और जीती-जागती तस्वीरें अबतक मन पर बनी हैं। फिर भी हरेक आदमी का महत्त्व तो उस बड़े दृश्य में ग़ायब हो गया, जो हमने वहाँ देखा। विद्रोह के शुरू के दिनों में, जैसा कि हमने पढ़ा और हमें बताया गया, सरकार और जनता बिल्कुल तैयार नहीं थी। हर जगह बदअमनी फैली थी। दफ़्तर बन्द थे। फ़ौज, जैसी कुछ वह थी, बिखर गयी थी। फिर भी इस बदअमनी के पीछे लोगों में मुक़ाबिला करने की भारी ख़्वाहिश थी। बिना हथियार लिये या फिर पूरी तरह हथियारबंद होकर ये दुश्मन पर झपटे और जनरल फ्रेंको के आसानी से फ़तहयाब होने के सपने को उन्होंने तोड़ दिया और कई जगह उसकी फ़ौजों को रोक दिया। बड़ी कोशिश के बाद मैड्रिड बचा लिया गया और उसकी बुर्जों पर दो बरस तक जनतंत्र का झण्डा शान के साथ उड़ता रहा, हालाँकि उसकी सरहदों पर दुश्मन ने क़ाबू कर लिया था और शहर पर क़रीब-क़रीब रोज़ ही बमबारी की जाती थी।

जबतक अच्छी फ़ौज और गोला-बारूद न हो, तबतक रोक-थाम थोड़ी देर को ही हो सकती है। आदमी के साहस और मनोबल की क़ीमत

बहुत होती है, लेकिन आजकल की लड़ाइयों में आदमी योग्य फ़ौजों और उनकी मशीनगनों, टैंकों और बमबारी की चालों का मुक़ाबिला नहीं कर सकते। इसलिए फ्रैंको की फौजें आगे बढ़ती गयीं। ज़्यादातर उनमें मूर की, इटली और जर्मनी की टुकड़ियाँ थीं और गोला-बारूद की उनकी ज़रूरत इटली और जर्मनी पूरी कर रहे थे। दो होशियार जर्मन और इटैलियन जनरल स्टाफ़ उन फ़ौजों की बड़ी हलचलों को चला रहे थे। स्पेन की प्रजातन्त्र सरकार के सामने एक समस्या यह थी कि वह ख़ास तौर से मुश्किल वक़्त में एक नयी फ़ौज तैयार करे, जबकि यह मुसीबतों में लड़ रही थी और इंग्लैण्ड और फ्रांस की हस्त-क्षेप न करने की नीति से सतायी जारही थी। सरकारी दफ्तरों को उसे नये सिरे से व्यवस्था करनी पड़ी और फ़ौज और आदमियों के लिए खाने और कपड़े का भी बन्दोबस्त करना पड़ा।

अमन के वक़्त भी यह एक बड़ी समस्या थी और ज़िन्दगी और मौत के सवाल के साथ वह आदमी की शक्ति से क़रीब-क़रीब बाहर दिखाई देती थी। पर प्रजातन्त्र के नेताओं ने उस समस्या को सुलझाने की कोशिश की और कठिनाइयों और नाउम्मीदों के बावजूद वे उस पर जमे ही रहे। अन्दरूनी झगड़ों ने उन्हें कमज़ोर कर दिया और उनकी प्रगति को रोक दिया। जब मैं स्पेन गया तो मैंने दो साल की कोशिश का नतीजा देखा और वह मेरे लिए एक आश्चर्यजनक दृश्य था। पुरानी बदअमनी और हँसी के लायक हालत अब न रही थी और उसकी जगह चतुर सरकार व्यवस्थित तरीक़े से काम कर रही थी और एक शानदार फ़ौज तैयार हो गयी थी।

मैं बहुत से सरकारी दफ्तरों में गया और मंत्रियों और महकमों के हाकिमों से मिला। बदक़िस्मती से मैं प्रधान-मन्त्री नैग्रिन से न मिल

सका, क्योंकि जब मैं बार्सीलोना में था, वह मैड्रिड गये हुए थे। इन दफ्तरों में व्यवस्थित रूप से काम चल रहा था जो कि कार्य-क्षमता का चिह्न है। कहीं भी सुस्ती या आलस दिखाई नहीं देता था और न काम में दौड़-धूप होती जान पड़ती थी। लोग अपना-अपना काम चुपचाप खामोशी व जोश-खरोश के साथ कर रहे थे। अक्सर नये काम उन्हें करने पड़ते थे और उनका ढंग पुराने सिविल नौकरों की बनिस्बत जो मशीन के ही पुर्जे बन गये थे, जुदा था और ज्यादा बेजाब्ता था। लेकिन बदलती परिस्थितियों में तो जरूरत काम के अनुकूल अपने को बनाने की थी। सिविल नौकरों में यह बात मुश्किल होती है, लेकिन वे लोग काम के साथ अपने को ठीक बिठा सकते थे। और उनके तजुर्बे में जो-कुछ कमी थी वह उनके काम की तत्परता और काम कर डालने के संकल्प से पूरी हो जाती थी। चन्द रोज तक ही उनके हाल देखने के बाद और उनके बारे में कुछ कहना मेरे लिए बेजा होगा। लेकिन मेरी राय यह बनी कि वहाँ आश्चर्यजनक कार्य-क्षमता थी और सहयोग था। झगड़े भी रहे होंगे और असल में झगड़े और त्रुटियाँ थीं भी लेकिन सतह पर वे दिखाई नहीं देती थीं।

खाने की समस्या गम्भीर थी। फौज थी जिसका पेट भरना था, और थी बड़े शहरों की आबादी और फैंको के प्रदेश के बहुत से पनाहगीर। दूध और मक्खन कहीं देखने को नहीं मिलता था। मांस, तरकारी और रोटी सबकी कमी थी। ऐसा हमने उस खाने से जाना जो सरकार के मेहमान होते हुए हमें बार्सीलोना के अच्छे-से-अच्छे होटल में मिला। नाश्ते में हमें एक प्याला काली कॉफी मिली और आधा रोटी का टुकड़ा। बस, और कुछ नहीं था। दोपहर के भोजन में और नाश्ते में भी मामूली चीजें व एक हरा शाक था। आलू तक नहीं मिलते थे।

खास आदमियों के लिए जब यह बात थी, तो दूसरों का तो कहना ही क्या ? हमारे सम्मान में स्पेन की पार्लमेण्ट के प्रधान या स्पीकर ने भोज दिया। जल-पान में मुख्यत: दो तरह की मिस्सी रोटियाँ थीं।

भले ही खाना कम था और कम होता जा रहा था, फिर भी फ़ौज को भूखा नहीं रखा जा सकता था। उसकी माँग सबसे पहले पूरी की जाती थी। उसके बाद बच्चे थे, जिन्हें जितना दूध वहाँ मिल सकता था, दिया जाता था। पनाहगीरों में बहुत-से बच्चे थे और सरकार ने उनके कुनबे बसा दिये थे। इनमें से एक कुनबे में हम गये। एक खूब-सूरत गाँव में वह बसा हुआ था। उसीसे मिला हुआ एक बाग़ था। वहाँ हमने एक बगीचे के पास खुशनुमा जगह में बच्चों को काम करते और खेलते हुए पाया। उनमें बहुत-से तो मुल्क के दूर-दूर के हिस्सों के अनाथ थे। उनके घर गिर गये थे और वे बरबाद हो गये थे। उस सबका डर उन बच्चों के मन में बना था। लेकिन उनकी संरक्षिका अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह से समझती थी और बड़ी नर्मी और मुहब्बत के साथ उस कुनबे में मेल-जोल का जीवन बिताने के लिए वह उन्हें तैयार करती थी। बच्चों को हर चीज़ के पीछे खूबसूरती दिखाने के लिए ज़रा-ज़रा-सी बात पर ध्यान दिया जाता था। कमरे सीधे-सादे थे, पर ऐसे तरीक़े से सजाये गये थे कि सजावट को देखकर खुशी होती थी और बिस्तर की चादर बच्चों को खुश करने के लिए होशियारी के साथ बनायी गयी थी।

बच्चों के कुनबों या घर के अलावा जहाँ बच्चे स्कूल-बोर्डिंग की तरह रहते थे, शहर के कुछ हिस्सों में बच्चों के लिए भोजनालय भी थे। जो भी बच्चा वहाँ आ जाता, उसीको खाना मिलता। हमें बताया गया कि ऐसे भोजनालय आमतौर से म्युनिसिपैलिटी की मदद से किसी

संस्था या फ़ौजी सिपाहियों द्वारा खोले गये हैं। इन या ऐसे ही [illegible] से नयी फ़ौज जनता के बहुत समीप आ जाती थी। [illegible] ने ऐसे ही एक बच्चों के भोजनालय के उद्घाटन के वक्त हम मौजूद थे। लिस्टर की फ़ौज के एक हिस्से ने उसे बनवाया था और उस हिस्से के प्रतिनिधि अफ़सर और आदमी मय अपने बैंड के उस समारोह में [illegible] लेने के लिए आये थे। सिपाही चाहते थे कि लोग उन्हें [illegible] बदले में वे उनके बच्चों को खिलाने में मदद देना चाहते थे। इस भोजनालय में तीन हजार बच्चों को रोजाना खाना [illegible] सकता था।

यह भोजनालय देखने में बड़ा खूबसूरत था। [illegible] अच्छी सजावट हो रही थी। नीली पोशाक में और [illegible] लिबास सफ़ाई के साथ पहने लड़कियों की कतारें [illegible] और बच्चों का स्वागत कर रही थीं। ये लड़कियाँ [illegible] धरने आयी थीं और उनका काम हॉल में बच्चों को [illegible] हॉल के भीतर और बाहर जोश से भरे बच्चों की [illegible] तेज़ी थी, उम्मीद थी।

इस समारोह से पहली रात को बार्सिलोना [illegible] हमले हुए थे और कुछ बम जहाँ आकर गिरे थे [illegible] भोजनालय से ज्यादा दूर नहीं थी कि [illegible]

३० जून, १९३९

२

बार्सीलोना मे दूसरे दिन [illegible] और शाम को बड़ी देर तक [illegible]

ज़्त का परवाना और एक स्पेनिश अफ़सर साथ होने की वजह से हम उन बहुत-से टिकट चैंक किये जानेवाले ठिकानों में कोई कठिनाई नहीं हुई, जिनसे आगे मामूली आवागमन नहीं हो सकता था। जिन-जिन गाँवों में होकर हम गुज़रे, उनमें लड़ाई के चिह्न साफ़ दिखाई देते थे। लेकिन इन चिह्नों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण चीज़ उन गाँवों का वायुमण्डल था। चारों ओर ऐसी खामोशी छायी थी कि जैसी लड़ाई के मैदान में हुआ करती है। जीवन वहाँ अब भी है, लेकिन रोज़मर्रा की तरह नहीं चल रहा था। लोग देखते थे कि कब वक़्त-वक़्त पर फूट पड़नेवाला दोज़ख का शोर फूट पड़े।

हम लोग लिस्टर के मुक़ाम पर गये। लिस्टर और मॉडेस्टो के बारे में हम बहुत-कुछ सुन चुके थे। वे दोनों फ़ौजी अफ़सर मामूली जगहों से तेज़ी से ऊपर उठे और अब प्रजातन्त्र के सबसे अधिक विश्वासपात्र सेनापतियों में से थे। मैड्रिड के बहादुर रक्षक जनरल मिआजा के बाद ही उनकी प्रसिद्धि और सर्वप्रियता दिखाई देती थी। मिआजा पुराने गार्ड का पेशेवर फ़ौजी अफ़सर था और उस समय में जबकि फ़ौज के अधिकांश भाग ने बग़ावत की थी, उसने प्रजातन्त्र का साथ नहीं छोड़ा था। लेकिन मॉडेस्टो और लिस्टर तो उस समय के सिविलियन थे। उनके पेशे भी फ़ौजी नहीं थे। एक तो दर्जी था; दूसरा राजगीरी करता था। विद्रोहियों से लड़ने के लिए जब नयी फ़ौज तैयार करने को आदमियों की माँग आयी, तो ये दोनों भर्ती हो गये और फ़ौरन् ही उन्होंने अपूर्व योग्यता दिखायी। एक-एक सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते वे सिपाहियों की पलटनों से ऊपर उठे और दो बरस के अर्से में, जब कि मैं स्पेन गया था, दोनों एक-एक लाख की फ़ौज के अफ़सर थे और लड़ाई में उनकी जीतों का भी बड़ा शानदार रिकार्ड था।

मोंडिस्टो से हम मिलते-मिलते चूक गये और इसका हमें अफ़सोस हुआ। लेकिन लिस्टर से हम मिले और दोपहरी का ज्यादातर वक्त उन्हीं के साथ खाना खाते बिताया। सीधा-सादा खाना था। लिस्टर रोबीला आदमी है। चेहरा सुन्दर और आकर्षक, उस लड़के की तरह जो जल्दी बढ़कर आदमी हो गया हो। लड़कपन और सयानपन का अजीब संगम था। गंभीरता की जगह थी उसकी खिला-खिली और दूसरों को भी हँसा देनेवाली हँसी। जिम्मेदारी उसके ऊपर बहुत थी और जो बोझ उसे उठाना पड़ रहा था, वह भारी था। आये दिन उसे मुश्किल हालतों का सामना करना पड़ता था और जहाँ कहीं खतरा ज्यादा-से-ज्यादा होता था या दुश्मन आगे बढ़ते आते होते थे, तो उसका मुकाबिला करने के लिए झटपट उसे या मोंडिस्टो को ही ले जाया जाता था। फिर भी [illegible] की खूबसूरती और चाल-ढाल में कोई अन्तर नहीं आया था और उसके तमाम ढंग में आत्म-विश्वास और निश्चय की झलक थी। वह [illegible] ऐसा बहादुर योद्धा था कि जो किसी भी बात से [illegible] दिखाई देता था और महान् संकट की परिस्थिति ने [illegible] भर आती थी।

नजदीक से मैंने उसे देखा क्योंकि मैं देखना [illegible] फ़ौज के ये नये अफ़सर कैसे हैं? पुराने [illegible] जानते हैं, जो कट्टर अनुशासनप्रिय होते हैं, [illegible] होती है, जैसे रोजमर्रा के काम में [illegible] बातों से जिन्हें घृणा होती है, क्योंकि वे [illegible] ही बदल डालती है। पिछले [illegible] साबित हुए। फिर भी उस तरह के [illegible] पर हुकूमत कर रहे हैं। [illegible]

अक्सर उनकी पुरानी सीखें हमें मिला करती हैं। वह तो कितनी बार हमसे कह चुके हैं कि हिन्दुस्तानियों के हम-जैसे बनने में (हाँ, यदि वे उतनी शानदार ऊँचाई पर कभी पहुँच भी सकें) और बड़े-बड़े अफ़सरों की जगह पाने में तो पुश्तें लग जायेंगी। अफ़सोस है इन पुराने फ़ौजी आदमियों के लिए, जो पोलो और ब्रिज के खेल में तथा परेड के मैदान में इतने तेज़ दिखाई देते हैं, लेकिन आज के लिए वे गये-गुज़रे हो गये हैं। अपना ज़माना वे देख चुके और अब उन्हें यंत्रकारों, इंजिनियरों और विशुद्ध राजनैतिक विचारोंवाले लोगों को जगह देनी पड़ी, जो मौजूदा अस्त्र-शस्त्रों की लड़ाई के तरीकों की वारीकियों को समझते हैं। उन्हें अपनी जगह उन सिपाहियों को देनी होगी जिनकी अन्य मामूली सिपाहियों से अलहदा कोई ऊँची श्रेणी नहीं है। वह तो जनता की फ़ौज का अफ़सर होगा। फ़ौज के लिए जो अनुशासन ज़रूरी है, उसे वह क़ायम रखेगा, लेकिन फिर भी अपने मातहत फ़ौज के साथ भाई-चारे का नाता रखेगा।

लिस्टर को मैंने इसी नये नमूने का पाया। उन्होंने बहुत से अफ़सरों से मेरी मुलाक़ात करायी और अफ़सरों के ट्रेनिंग स्कूल में मुझे ले गये। हर जगह मुझे घरेलूपन और भाई चारे का वायुमण्डल मालूम हुआ। और वहाँ उन सबको जोड़नेवाली मज़बूत कड़ी थी वह ध्येय, जिसकी रक्षा करने का संकल्प वे कर चुके थे। फिर भी अनुशासन वहाँ था। इस स्कूल में मैंने देखा कि अफ़सरों को राजनैतिक शिक्षा देने का खयाल रखा जाता है। अफ़सरों के स्कूल छोड़ देने और अपने पलटनों में जा दाखिल होने पर भी इस राजनैतिक शिक्षा की तरफ़ से लापरवाही नहीं होती, क्योंकि हरएक पलटन के साथ राजनैतिक कमिसर होता है, जिसकी राय किसी भी सवाल के राजनैतिक पहलुओं पर कमान्डर को हमेशा लेनी पड़ती थी। कमिसर का कर्त्तव्य होता था कि वह फ़ौज में दिलेरी बनाये रखे।

स्पेनिश जनतन्त्र की सबसे खास बातों में एक बात थी दो बरस के अर्से में एक बहुत ही अच्छी फ़ौज का तैयार करना, जिसमें हज़ारों सुयोग्य अफ़सर थे। जनतन्त्र की अन्त में हार हुई, उसका कारण इस फ़ौज की असफलता नहीं थी। भूख ने और इंग्लैण्ड और फ्रांस की दग़ाबाज़ी ने उसका ख़ात्मा किया। मिआज़ा जैसे अफ़सर को छोड़कर पुराने अफ़सर बेभरोसे के और अयोग्य साबित हुए, जैसा कि चीन में हुआ। बहुत-सी शिकस्तें तो इन पुराने अफ़सरों की वजह से हुईं; लेकिन चूंकि नये तरीक़े के अफ़सरों की तादाद बढ़ गयी, इसलिए फ़ौज में मज़बूती आगयी। नये अफ़सरों में एक बात की कमी थी। वह यह कि युद्ध-विद्या की उन्हें लम्बी ट्रेनिंग नहीं मिली थी। लड़ाई सीखने के उनके शिक्षालय तो अक्सर लड़ाई के मैदान ही थे। वहीं उन्होंने बहुत-कुछ सीखा और तेज़ी से तरक्की की। लेकिन ऊँचे अफ़सरों के लिए लड़ाई का तख़्ता पलट जाने और नयी हालतों के पैदा हो जाने की वजह से लोगों की भीड़-की-भीड़ को जल्दी से सँभाल लेने का आदी हो जाना बहुत मुश्किल था। इस बात में वे जर्मनी और इटली के सुरक्षित स्टाफ की बराबरी नहीं कर सकते थे, जो फ्रैंको की तरफ़ से लड़ रहे थे।

जनतन्त्र के रास्ते में यह एक भारी अड़चन थी; लेकिन बढ़ते-बढ़ते उसपर उसने विजय पायी और अफ़सरों की भीड़ में से मोंडेस्टो और लिस्टर जैसे योग्य व्यक्ति सामने आये। ऊपर की रुकावट के विरुद्ध जनतन्त्र का लवाज़मा कहीं ज्यादा लायक़ था, और मध्यमश्रेणी के उसके अफ़सर बड़े चतुर और तेज़ थे। अगर उन्हें काफ़ी रसद और गोला-बारूद मिल जाते, तो इसमें सन्देह नहीं कि जनतन्त्र की नयी फौज फ्रैंको के पेशेवरों और विशेषज्ञों से जीत जाती, भले ही उनके पास जर्मनों और इटालियनों की फ़ौजें और अस्त्र-शस्त्र और गोला-बारूद

बहुत ज़्यादा होता ।

इस नयी फ़ौज और उसकी ट्रेनिंग से मैं बड़ा प्रभावित हुआ । बाद में हमें अन्तर्राष्ट्रीय दल को देखने के लिए ले जाया गया, जिसने लड़ाई में बहुत नाम पैदा किया था । शुरू में उसमें सब-के-सब विदेशी सैनिक ही थे; लेकिन जब मैं वहाँ गया, तब उसमें ६० फ़ीसदी स्पेनिश थे । जनतन्त्र की सरकार विदेशी सैनिकों की भर्ती को रोक रही थी, क्योंकि उसका ध्येय यह बतलाना था कि वह स्पेन पर जर्मन, इटालियन, और मूर-जैसे विदेशियों के हमले की मुख़ालफ़त में लड़ रही है, उस घरेलू लड़ाई में नहीं कि जिसे विदेशी लोग महज़ मदद दे रहे हैं । लड़ाई के बारे में बार्सीलोना में हमेशा यही कहा जाता था कि वह तो एक विदेशी हमला है, घरेलू लड़ाई नहीं है ।

अन्तर्राष्ट्रीय दल का पता हमें आसानी से न मिल सका । यह एक अजीब बात थी कि पड़ोस में भारी फ़ौज पड़ी होने पर भी वह दिखाई नहीं देती थी, और देहात क़रीब-क़रीब बियाबान-सा दीख पड़ता था । हाँ, कहीं-कहीं सिपाहियों या संतरियों की टोलियाँ दीख पड़ती थीं, और एक फ़ौजी लॉरी इधर-उधर दौड़ रही थी । इसकी वजह हवाई जहाज़ थे और बमबारी का डर ही इतना था कि सब सार्वजनिक कार्रवाइयों को छोड़ देना पड़ा था । इसलिए फ़ौज की टुकड़ियाँ छिपी रहती थीं, और छिपकर ही काम करती थीं । उनकी तोपें पेड़ों की टहनियों से छिपा दी गयी थीं । पहाड़ियों पर ढेर-की-ढेर तोपें लगी थीं, लेकिन थोड़े से फ़ासिले से वहाँ पेड़ और झाड़ियाँ ही दिखाई देती थीं ।

अन्तर्राष्ट्रीय दल बहुत बड़े रक़बे में फैला हुआ था । उसके हरेक हिस्से को देखने का हमें वक़्त नहीं था । हम अंग्रेजी और अमरीकन पल-टन में गये और जब एक बार हमने उनका पता लगा लिया, तो हमें पहा-

ड़ियों पर और नीचे घाटी मे बहुत-से सिपाही दिखाई दिये। वे वहाँ बहुत पुरानी हालतों में पड़ाव डाले हुए थे। मिट्टी और झाड़ियों से उन्होने चदरोजा झोंपड़ियाँ बना ली थी, या छोटी खाइयाँ खोद ली थी। आराम की तो वहाँ कुछ भी चीज नहीं थी, फिर भी वे इतने मस्त थे कि जैसे मैंने कहीं भी नहीं देखे। उनका उत्साह दूसरो को भी उत्साहित करने-वाला था। और उनके जाश और निश्चय को देखकर यह खयाल करना भी मुश्किल था कि जिस ध्येय के लिए ये लड़ रहे थे, वह पूरा न होगा।

उनमें से बहुत से सिपाहियों से हमने बातचीत की। अपनी इच्छा से वे दूर जगहो से आ गये थे। उन्हे उस ध्येय के लिए जान जुटाने की कोशिश खीच लायी थी कि जिससे हरेक युग में स्त्री-पुरुषों को प्रेरणा मिली है। अपने घरबार, काम-काज और आरामो को उन्होंने छोड़ दिया था और अपनी पसंद से उन्होने खतरे से भरी मुश्किल की जिन्दगी को हर वक्त की अपनी साथिन बनाया था। मौत तो उनकी अवसर आने-वाली मेहमान थी। उन्हें हँसते और खेलते देखकर मुझे लड़ाई के पिछले दो बरसों की याद आयी। बदकिस्मती और बरबादी के खौफनाक बरसो का इस दल का शानदार रिकार्ड भी मेरे सामने आया। न जाने कितनी बार उन्होने जनतंत्र को बचाया, और उनमे से हजारों स्पेन की जमीन में सो रहे हैं। मैंने जितने खुश-दिल युवको को देखा, उनमे से कितने ऐसे होंगे जो कभी अपने घर न लौट सकेंगे, और उनके कुटुम्बी बेकार उनकी राह देखते रहेंगे?

कुछ ही दिन बाद मैंने देखा कि वे फिर लड़ाई के मैदान में आगये थे, और उसके कुछ ही अर्से बाद फ्रैंको की फौजो को रोकने के लिए उन्हे ईब्रो दौड़ आना पड़ा। उनमें से बहुत-से तो हमेशा के लिए वही रह गये। मुझे याद है कि उनमें से कई एक ने मेरे हस्ताक्षर लिये थे।

मर्जी न होते हुए भी मुझे अन्तर्राष्ट्रीय दल के इन बहादुर आदमियों के पास से चला आना पड़ा। मन में कुछ ऐसा था जो मुझे उस वीरान दीखनेवाले पहाड़ी देश में ठहरने को प्रेरित कर रहा था, जिसने इतने मनुष्योचित साहस और जीवन की इतनी अमूल्य चीज को आश्रय दिया। एक स्पेनिश दल के स्थान पर हमें ले जाया गया। मेरे खयाल से वह स्थान मॉडेस्टो का था, हालाँकि मॉडेस्टो उस समय वहाँ पर नहीं था। हमारे सम्मान में सब अफ़सर इकट्ठे हो गये थे, और हमने मिलकर खाना खाया। उस आनन्ददायक गोष्ठी में यह याद रखना मुश्किल था कि लड़ाई का मैदान वहाँ से दूर नहीं है, और कोई भी अनिष्ट बम हमारी शान्ति को भंग कर सकता है। एक स्पेनिश अफ़सर के सुन्दर भाषण के बाद हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए शुभ-कामनाएँ की गयीं। थोड़े से शब्दों में धन्यवाद देते हुए मैंने उनका जवाब दिया और जनतंत्र और उसकी अच्छी फ़ौज के प्रति मैंने अपनी सद्भावना प्रकट की।

और फिर बार्सीलोना की तारों की रोशनी में वापिस लौट आया।

७ जुलाई, १९३९

४

जो खास-खास लोग स्पेन में हमें मिले, लिस्टर उनमें से एक था। दूसरा आदमी था सीनर डेल वेयो जो उस वक़्त प्रजातन्त्र का विदेशी मंत्री था। बार्सीलोना पहुँचते ही हम उससे मिलने गये। बाद में भी कई मौक़ों पर हम उससे मिले। आमतौर पर कूटनीतिज्ञ जैसे एकान्त-प्रिय और सुशील हुआ करते हैं और कोई भी बात निश्चित रूप से कहने में घबराते हैं, और जिन्हें कूटनीति की चालों की लम्बी ट्रेनिंग मिली

होती है, वैसा वेयो नहीं था। वह तो एक पत्रकार और लेखक था। क्रांति ने उसे सार्वजनिक जीवन में आगे ला दिया था। अब भी उसमें पत्रकारपन कुछ मौजूद था। योग्यता उसकी असंदिग्ध थी; लेकिन उसके जिस गुण का असर मुझपर बहुत ज्यादा पड़ा, वह उसकी जीवट और उसका संकल्प था। मैड्रिड, बार्सीलोना और जैनेवा में उसने प्रजातन्त्र की तरफ से सभी मुश्किलों का मुक़ाबला किया, और 'अ-हस्तक्षेप' की पेचीदा चालबाजियों पर हावी होने की कोशिश की। मार्च १९३८ के संकट के दिनों में और जब १९३८ की गर्मियों में ईब्रो की लम्बी खिचती जाती लड़ाई जारी थी, तब वह प्रजातन्त्र के आदमियों के लिए आश्रयस्थान और प्रकाश-स्तम्भ बना।

प्रधान-मन्त्री डा० नैग्रिन के बाद वह सरकार का मुख्य व्यक्ति था। भारी-से-भारी बरबादी होने और बदक़िस्मती सामने आने पर इन दोनों में से किसीके हाथ-पैर कभी नहीं फूले और न कभी हिम्मत ही छोड़ी। किसी राष्ट्र के अध्यक्ष ने इतनी बड़ी दिलेरी कभी नहीं बतलायी होगी जितनी डा० नैग्रिन ने कि जो उस समय जब कि ईब्रो पर जोरों का हमला हो रहा था, ज्यूरिक में वैज्ञानिकों की एक कांग्रेस में शामिल होने चले गये।

डेल वेयो और मुझमें बहुत देर तक बातचीत होती रही। उसने बिना किसी छिपाव के स्पेन की स्थिति समझायी और अपनी कठिनाइयों की न तो अवगणना की, न उन्हें कम ही बतलाया। नयी फौज ने जो प्रगति की, उससे लड़ाई के खयाल से वह सन्तुष्ट था, लेकिन स्टाफ़ का काम अच्छा नहीं था। उनके बहुत-सी शिकस्तें पाने और पीछे हटने का कारण दुश्मनों का बमबारी के साधनों, हथियारों, बड़ी-बड़ी तोपों के मलावा यह भी था कि प्रजातन्त्र के सेनापतियों को बड़ी लड़ाइयों का

तजुर्बा न था और कभी-कभी प्रजातन्त्र के रखे हुए पुराने अफ़सर भी जानबूझकर काम बिगाड़ देते थे। यह काम बिगाड़ना नातजुर्बे-कारी से भी ज़्यादा हानिकारक था। लेकिन ज्यों-ज्यों फ़ौज के अफ़सर धीरे-धीरे इन अविश्वसनीय अफ़सरों की जगह लेते जाते थे, त्यों-त्यों वह हानि कम-से-कम होती जा रही थी। नये अनुभवहीन आदमियों का रखा जाना एक महँगे का सौदा था, लेकिन अनुभव तो वहाँ लड़ाई के मैदान में प्राप्त किया जा रहा था और ग़लतियाँ भी उसमें कम ही होती थीं। फ़ौज की योग्यता रोज़-ब-रोज़ बढ़ती जाती थी, और इस खयाल से प्रजातन्त्र के लिए अधिक वक़्त निकल जाना फ़ायदे-मन्द था।

मेरे स्पेन में जाने के कुछ ही हफ्तों बाद फ्रेंको की फ़ौजों ने जर्मन और इटेलियन मित्र-राष्ट्रों का पूरा सहयोग लेकर ईब्रो पर भयंकर हमला किया। ईब्रो की यह लड़ाई कई हफ्ते तक चलती रही। और वह मौजूदा समय की खास लड़ाइयों में से एक थी। लेकिन आज हमारे मापदण्ड बड़े हो गये हैं और यह लड़ाई मामूली लड़ाई की एक छोटी-सी घटना भर रह गयी है। इस लड़ाई में प्रजातन्त्र की फ़ौज ने अपना पूरी तरह से औचित्य दिखाया और फ्रेंको की फ़ौज से अपने को अधिक योग्य साबित किया। हवाई लड़ाई के साधनों और गोला-बारूद की कमी होते हुए भी उसने हवाई जहाजों औह भारी फ़ौज के हमलों को बार-बार रोका।

डेल वेयो को फ़ौज के बारे में कोई फ़िक्र नहीं थी। उसकी परेशानी तो यह थी कि गोला-बारूद कहाँसे आये? और उससे भी ज़्यादा फ़िक्र थी उसे रसद की। आगे आनेवाला जाड़ा रसद के लिए एक बड़ी मुश्किल का वक़्त था। रसद और गोला-बारूद का मिलना ज़्यादातर इंग्लैण्ड और फ्रांस की नीति पर निर्भर था और इन दोनों देशों की सरकारें बरा-

वर 'अहस्तक्षेप' के नाम पर प्रजातन्त्र का गला घोंटने और छिपे-छिपे फ्रेंको की ही मदद देने की नीति पर उतारू थे।

म्यूनिक और उसके तमाम पुछल्ले तो अब आने को थे और हमारी विवेक-बुद्धि बार-बार के धोखे और झूठ से उस वक्त तक जड नही हो पायी थी। लेकिन इस 'अहस्तक्षेप' का तमाशा तो एक अचम्भे में डाल देने की चीज थी और उसने जाहिर किया कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के मापदण्ड और साधन कितने खराब है! स्पेन के इस अहस्तक्षेप ने ही म्यूनिक को जन्म दिया।

डेल वेयो ने मेरे सामने फ्रेंको के बारे में एक भी कड़ा शब्द नहीं कहा। उसने बस इतना कहकर छोड़ दिया कि उसके मुल्क के असली दुश्मन और आक्रमणकारी तो नात्सी और फासिस्ट लोग हैं। फ्रेंको उनके हाथ की कठपुतली है। जर्मनी और इटली तक के बारे में भी उसमें कोई कटुता नहीं थी। लेकिन उसमें उस वक्त कटुता की कमी नहीं रही, जब उसने ब्रिटिश और फ्रेंच सरकारों की बात की कि जो मित्रता के बुर्के में प्रजातन्त्रीय स्पेन को खत्म कर डालने को इतना सब कर रही थी। खास तौर से मि० चेम्बरलेन की सरकार के तो वह बेहद खिलाफ था; क्योंकि उसका खयाल था कि फ्रेंच सरकार तो एकदम डाउनिंग स्ट्रीट के तावे है।

डेल वेयो ने मुझसे कहा कि चाहे यह खुले आम तो वह नहीं कह सकता था, पर उसे और उसकी सरकार को यह समझने पर विवश होना पड़ा कि ब्रिटिश सरकार दुश्मन है और दुश्मन को मदद दे रही है। हमारी इस बातचीत के कुछ ही दिन बाद फ्रेंच सरकार ने ब्रिटिश सरकार के कहने पर पिरेनीज सरहद को रोक दिया। मुसोलिनी को सतुष्ट करने के इरादे से यह एक बड़ी बुरी करतूत थी। इससे प्रजातन्त्र के

कराहट थी और फिर भी उस सबके पीछे अपने वर्ग और राष्ट्र के
ए असीम वेदना छिपी हुई थी। आराम के वक्त में उसका चेहरा
त था। लेकिन सतह के नीचे की हलचल की रेखा उसपर झलकती
। जब वह बोलने को मुंह खोलती तो जोशीले शब्द उसके मुंह से
कलने लगते थे, एक शब्द के ऊपर दूसरा शब्द टूट पड़ता हुआ।
दर की ज्वाला से उसका चेहरा दमक उठता था और उसकी खूबसूरत
खें ऐसी चमक उठती थीं कि आदमी को लुभा ले। एक छोटे-से कमरे
मैंने उसकी बात सुनी और स्पेनिश भाषा में जो कुछ वह रही थी,
सका कुछ हिस्सा ही मैं समझ पाया। लेकिन उसकी भाषा की संगीत-
य ध्वनि मुझे बहुत पसन्द आयी और उसके चेहरे और आँखों के हाव-
भाव भी अर्थपूर्ण थे। तब मैं समझा कि स्पेन की जनता पर उसका
इतना असर है। मैं नहीं कह सकता कि मुझ-जैसे आदमी पर, कि जिस-
र विशेष असर आसानी से पड नहीं पाता, जब उसने इतना असर
डाल दिया, तो अपने देश के लोगों पर तो न जाने उसका कितना असर
पड़ता होगा?

कोई एकाध महीने बाद मैं पैशनेरिया से पेरिस में मिला और देखा कि वह एक बड़ी सभा में भाषण दे रही है। वह स्पेन की भाषा में बोल रही थी और लोग वहां ज्यादातर फ्रांस के थे, इसलिए वे उसकी बात आसानी से नहीं समझ सकते थे। लेकिन उस भारी भीड़ को उसने वश में रखा। ऐसा थोड़े ही अच्छे बोलनेवाले कर सकते हैं। और जब मीटिंग ख़त्म हुई, तो औरतों पर औरतें, लड़कियों पर लड़कियाँ और कभी-कभी आदमी, अपने हाथों में उसके लिए फूल या स्पेन देश के लिए भेंट लेन्लेकर पास आने लगे। उनकी आंसूभरी आंखों में उसके लिए प्रेम भरा था और जब वह उन्हें छाती से चिपटाती थी या कहती

'लड़खड़ाती दुनिया'

में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। इस संग्रह से परिस्थिति को समझने और अपना मार्ग स्थिर करने में काफ़ी मदद मिलती है। पं० जवाहरलाल नेहरू अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के एक बड़े विद्वान् हैं। हमारे राजनीतिज्ञों में इस विषय में उनका मुकाबिला कोई नहीं कर सकता। उन्होंने इस विषय का केवल अच्छा अध्ययन ही नहीं किया है, बल्कि विभिन्न देशों के प्रगतिशील व्यक्तियों और संस्थाओं के निकट सम्पर्क में भी वह आये हैं। भारत के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहानुभूति हासिल करने में उनका खासा हाथ है। हिन्दुस्तान के सवालों पर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करना उन्हींसे हमने सीखा है।

आचार्य नरेन्द्रदेव

[प्रथम संस्करण की भूमिका में]

सचित्र : चौदह आना